कश्मीर की आचार्य परम्परा
और
शैवदर्शन

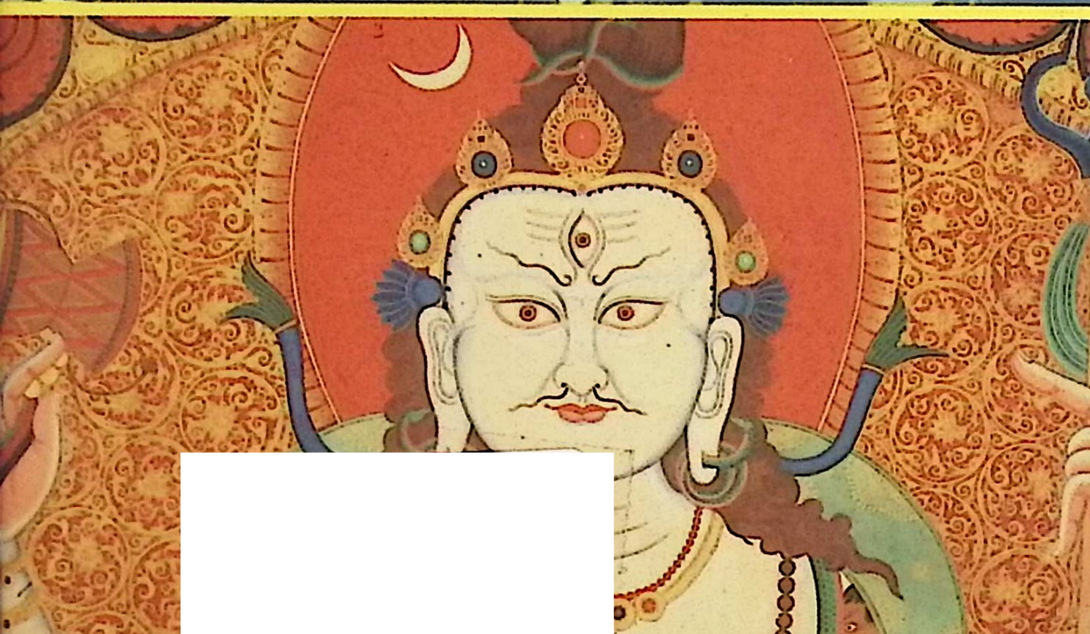

रीता तिवारी

कश्मीर की आचार्य-परम्परा
और
शैवदर्शन

लेखिका

डॉ० रीता तिवारी

प्रतिभा प्रकाशन

दिल्ली :: भारत

Q232:448253

प्रथम संस्करण 2016

ISBN : 978-81-7702-311-4

© लेखिका

मूल्य : 695.00

प्रकाशक :
डॉ० राधेश्याम शुक्ल
एम.ए., एम. फ़िल., पी-एच.डी.
प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या-प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता)
7259/23, अजेन्द्र मार्केट, प्रेमनगर
शक्तिनगर, दिल्ली-110007
दूरभाष : (O) 011-47084852, 09350884227
e-mail : pratibhabooks@ymail.com

टाईप सेटिंग : एस० के० ग्राफिक्स
दिल्ली-84

मुद्रक : एस० के० ऑफसेट, दिल्ली

समर्पण

मेरे श्वसुर

परम श्रद्धेय (स्व०) श्री राम आसरे दुबे जी

की

स्मृति में

सादर समर्पित

— रीता

प्रो० अमरनाथ पाण्डेय

राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित

पण्डितराज, विद्यारत्नाकर, विश्वाराध्य विश्वभारती
विभूषित, पूर्व अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशीविद्यापीठ,
वाराणसी

एन १/३०, ए-९
नगवा, वाराणसी-५

आशीर्वचन

डॉ० रीता तिवारी ने सौन्दर्य शास्त्र के ग्रन्थों का पर्याप्त अनुशीलन किया है। उनका डी० लिट्० का प्रबन्ध इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मौलिक योगदान है।

उनका प्रस्तुत कार्य कश्मीर के दार्शनिकों तथा काव्य शास्त्र के मर्मज्ञों की विशिष्ट समीक्षा से सम्बद्ध है। उन्होंने सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से सभी पक्षों का अनुशीलन प्रस्तुत किया है, जिससे दोनों क्षेत्रों में कश्मीर के योगदान का पूर्णतः उन्मीलन हो जाता है। उन्होंने अध्यवसाय पूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से इस प्रशस्त कार्य का सम्पादन किया है।

मेरी दृष्टि से डॉ० तिवारी का यह कार्य इस क्षेत्र में अनुसन्धान करने वालों के लिए मार्ग दर्शक बनेगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि डॉ० रीता की अनुशीलन की शैली भी अपेक्षित मार्ग दर्शन का आधार स्तम्भ बनेगी।

मैं आशा करता हूँ कि डॉ० तिवारी इस प्रकार के कार्यों से सारस्वत साधना में लगी रहेंगी। मेरा इन्हें शुभाशीर्वाद है।

– अमरनाथ पाण्डेय

तस्मै श्री गुरवे नमः

Dr. Vinod Kumar Dixit
M.A.,Ph.D, D.Litt.
Associate Professor
Deptt.Of Sanskrit and Prakrit Languages
(Post-Graduate and Research)
B.R.D.B.D Post-Graduate College, Ashram
Barahaj, Deoria U.P-274601
Affiliated to D.D.U.University of Gorakhpur
Mobile Phone- 09839715068
Email- ddixit28@gmail. com

डॉ० विनोद कुमार दीक्षित
एम०ए०,पी -एच०डी०,डी०लिट्,एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
(स्नातकोत्तर एवं शोध)
बी०आर०डी०बी०डी०पी०जी०कालेज,आश्रम,बरहज,
देवरिया (उ०प्र०)-274601
दी०द०उ०गो०वि०वि० से सम्बद्ध
मो०फो०- 09839715068
ईमेल : ddixit28@gmail. com

शुभाशंसा

भारतीय धर्म-दर्शन के इतिहास के पृष्ठों से शाम्भव मत की प्राचीनता सिद्ध है। पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक उभयविध प्रमाणों से यह पुष्ट है। यद्यपि सिन्धु घाटी सभ्यता तथा वैदिक सभ्यता के पौर्वापर्य को लेकर किञ्चित् मतभेद है, पुनरपि यह निर्विवाद है कि इन दोनों सभ्यताओं के युग में शाम्भव मत प्रचलन में था।

शाम्भव मत की एक धारा काश्मीर शैव मत के रूप में अस्तित्व में आई जिसके विकास का श्रेय अनेक आचार्यों को है। ऐसे ही आचार्यों में श्री क्षेमराज का नाम आता है जिन्होंने अपने विभिन्न ग्रन्थों के माध्यम से काश्मीर शैव मत के विकास में अपना अप्रतिम योगदान दिया।

डॉ० (श्रीमती) रीता तिवारी ने अपने शोध परक ग्रन्थ में काश्मीर शैव मत के सन्दर्भ में, विशेषतः क्षेमराज से सम्बन्धित, जो तथ्य-संकलन, विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। विभिन्न अध्यायों में इनके द्वारा प्रस्तुत सूचनाएँ विचारणीय एवं ग्राह्य हैं।

मैं परम ब्रह्म स्वरूप शिव से प्रार्थना करता हूँ कि डॉ० रीता को अधिकाधिक ऊर्जा, प्रेरणा एवं बौद्धिक सामर्थ्य प्राप्त हो ताकि संस्कृत वाङ्मय के प्रचार-प्रसार में इनका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सके। अन्त में आचार्य कुन्तक के शब्दों में —

जगत्त्रितयवैचित्र्यचित्रकर्मविधायिनम्।
शिवं शक्तिपरिस्पन्दमात्रोपकरणं नुमः।।

शारदीय नवरात्र

– विनोद कुमार दीक्षित

आत्म-निवेदन

संस्कृत वाङ्मय का काव्यशास्त्र तथा दर्शन-शास्त्र अत्यन्त समृद्ध है। संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्र के विविध पक्षों के मूल्याङ्कन के लिए अनेकों सिद्धान्तों की विवेचना विद्वानों द्वारा की गयी है। जो कि संस्कृत साहित्य के लिए पूर्णतः समीचीन है। इसी प्रकार दर्शनशास्त्र भी है। संस्कृत साहित्य में दर्शन-शास्त्र तथा काव्यशास्त्र के बहुत से आचार्य कश्मीर क्षेत्र से सम्बन्धित है लेकिन उनपर बहुत कम शोध हुआ है, अतः कश्मीर की आचार्य परम्परा को उद्घाटित करने वाला यह ग्रन्थ अपेक्षित और उपयोगी है।

इस ग्रन्थ को परिपूर्ण करने में अपने गुरुजनों, शुभचिन्तकों संस्थाओं तथा परिवार के सदस्यों के प्रति अभार व्यक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझती हूँ। जिनके आशीर्वाद तथा सहयोग से ही मैं अपने इस कार्य को सम्पन्न कर सकी।

इस ग्रन्थ रचना में मेरी पूज्या माता जी श्रीमती शारदा तिवारी तथा पूज्य पिताजी श्री मुरलीधर तिवारी जी का समानरूप से स्नेह, सहयोग तथा आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उनकी स्मृति मेरी धरोहर बनी रहेगी। इस सारस्वत कार्य में मेरे स्वर्गीय श्वसुर श्री रामआसरे दूबे जी का अमोघ आशीर्वाद हमारा पाथेय रहा है जो हमारी श्वश्रा श्रीमती सुशीला दुबे जी के माध्यम से सदैव हमारे ऊपर बरसता रहता है । पति कैप्टन सुप्रशान्त दूबेजी के सहयोग के बिना तो यह कार्य सम्पन्न हो पाना असम्भव था। इनकी सतत प्रेरणा तथा सहयोग से ही आज यह ग्रन्थ अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त हो रहा है । अतः आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मात्र औपचारिकता होगी।

मैंने अपने इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में विभिन्न पुस्कालयों का सहयोग लिया जिनपें प्रमुख रूप से शंकराचार्य विश्वविद्यालय, कालडी केरल; राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश); ऑडयार पुस्तकालय, मद्रास; टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय; आचार्य नरेन्द्रदेव पुस्तकालय, मोतीमहल, लखनऊ; उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ; उ० प्र० संस्कृत परिषद्, लखनऊ; गंगानाथ झा विद्यापीठ, इलाहाबाद; सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी;

इत्यादि हैं। उनके अधिकारियों व कर्मचारियों को मैं हृदय से धन्यवाद देती हूँ। इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में अनेक व्यवधान भी आये हैं। ईश्वर के अनुग्रह तथा गुरुजनों के आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण हुआ है। भक्ति के पुष्प उनके चरणों में अर्पित करते हुए उन्हें नमन करती हूँ और यही कामना करती हूँ कि उनका यह अनुग्रह हम पर सदैव बना रहे।

इस कार्य को पूर्ण करने में जिन आचार्यों के ग्रन्थों से मैंने सहायता ली उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। संस्कृत जगत के निष्णात् विद्वान् परम श्रद्धेय प्रो० अमरनाथ पाण्डेय जी के चरणकमलों में मैं प्रणाम करती हूँ जिनकी प्रेरणा तथा आशीर्वाद से ही यह ग्रन्थ आरम्भ हुआ और संपूर्णता को भी प्राप्त हुआ। मैं ऐसे ऋषि तुल्य गुरु को हृदय से बार-बार नमन करती हूँ।

प्रतिभा प्रकाशन के प्रतिष्ठित प्रकाशक आदरणीय डॉ० राधेश्याम शुक्ल जी जो कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता समान नहीं बल्कि ज्येष्ठ भ्राता ही है, आपने जिस उत्साह, लगन, तथा रुचि से इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया है, इसके लिए मैं आपकी हृदय से सदैव आभारी रहूँगी और ईश्वर से मैं यह कामना करूँगी कि शुक्ल जी आप सपरिवार उन्नति को प्राप्त करें तथा आपका यह प्रकाशन निरन्तर उच्च कोटि के साहित्य समाज को प्रदान करता रहे।

गुरुजनों तथा शुभचिन्तकों के निर्देशन और शुभकामनाओं से जिस रूप में यह ग्रन्थ सुधीजनों के सम्मुख प्रस्तुत है उससे विद्वज्जन कुछ सन्तुष्ट हो सकें तो मै अपने प्रयास को सफल मानूँगी। इस प्रसंग में कविकुलगुरु कालिदास की वाणी मेरे स्मृतिपटल पर प्रतिबिम्बित हो रही है—

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

चैत्र मास, शुक्ल पक्ष,
पंचमी तिथि

–रीता तिवारी

भूमिका

चूँकि मनुष्य बुद्धिप्रधान प्राणी है, इसलिए उसमें चिन्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। जो केवल भौतिक ही न होकर आध्यात्मिक भी होती है, जो कि जीव, ब्रह्म तथा आत्मापरक है, इसी का नाम दर्शन है। दर्शन का उद्भव संशय या जिज्ञासा से ही होता है। इसमें जीव और जगत का विवेचन किया जाता है। इसमें ज्ञान के द्वारा मनुष्य जीव और जगत के रहस्यों को समझ लेता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय कश्मीर की आचार्य परम्परा और शैवदर्शन से सम्बन्धित है। पुराणों से प्राप्त सन्दर्भों के अनुसार प्राचीनकाल में शैवों के कुल चार मत देश के विभिन्न भागों में विशेष रूप से फैले थे। ये हैं–शैव, पाशुपत, कापालिक तथा कालदमन। इनमें से शैव और पाशुपत का विशेष महत्व था। इनमें से शैव सम्प्रदाय अपने तीन रूपों में प्रचलित था और आज भी इसका अस्तित्व देश के विभिन्न भागों में देखने को मिलता है। ये है–

१. काश्मीर शैव मत,
२. वीर शैवमत,
३. शैव सिद्धान्त।

इनमें से काश्मीर शैव मत का सम्बन्ध कश्मीर क्षेत्र से माना जाता है। 'काश्मीर शैवदर्शन' दर्शन की सामान्य परम्परा से हट कर एक ऐसा दर्शन है जो कि वैदिक धर्म को स्वीकार करते हुए भी अपने शुद्ध आगमिक स्वभाव को अपनाये हुए है। काश्मीरशैवदर्शन को प्रत्यभिज्ञा, स्पन्द और त्रिक नाम से जाना जाता है। त्रिक समूह के अन्तर्गत तीन श्रेणियाँ मानी गयी है-पर, अपर तथा परापर।

परतत्त्व के अन्तर्गत शिवशक्ति को अवियुक्त माना गया है। कश्मीर की आचार्य परम्परा और शैव दर्शन का क्षेत्र विस्तार साहित्यिक तथा दार्शनिक दोनों है। इस दर्शन की आचार्य परम्परा वसुगुप्त से प्रारम्भ होती है। इस परम्परा का विकास करने वाले आचार्यों में आचार्य सोमानन्द, आचार्य उत्पलदेव, आचार्य

महेश्वरानन्द, आचार्य अभिनवगुप्त, आचार्य क्षेमराज, आचार्य वरदराज आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। शैवदर्शन के जिस अंकुर को अभिनवगुप्त ने अपनी प्रतिभा रूपी जल से सींचकर बढ़ाया उसे पल्लवित और और पुष्पित किया, उस ज्ञान रूपी वृक्ष का संरक्षण आचार्य क्षेमराज ने किया। आचार्य क्षेमराज स्पन्द तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन के उद्भट विद्वान् थे।

कश्मीर शैवदर्शन जो कि वैदिक परम्परा के साथ-साथ अपने शुद्ध आगामिक स्वभाव को भी अपनाये हुए है, यह विषय आज देश के बहुत ही कम विश्वविद्यालयों में अध्ययन का बिन्दु है। मुख्य रूप से इस पर अध्ययन-अध्यापन तथा शोधपरक कार्य कश्मीर क्षेत्र में हो रहा है। इसके साथ लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से सम्बद्ध अभिनवगुप्त शोध संस्थान में भी इस विषय पर कार्य हुआ है।

कश्मीर सदियों से विद्या का केन्द्र तथा संस्कृत वाङ्मय के अनेक उद्भट विद्वानों की जन्मस्थली तथा कर्मस्थली रहा है। जिसके कारण कश्मीर को भारत का सिरमौर कहा जाता है, लेकिन आज आतंकवाद जैसी घोर विभीषिका के कारण देश में जो भयाक्रान्त की स्थिति है उससे विशेष रूप से कश्मीर क्षेत्र प्रभावित है। कश्मीर जो कि धरती का स्वर्ग माना जाता रहा है जिसके मूल कारण में कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा तथा वहाँ के विद्वानों के ज्ञान का प्रकाश रहा है। इन दोनों ने मिलकर कश्मीर के बाह्य तथा आन्तरिक कलेवर को सौन्दर्य से परिपूर्ण कर दिया है।

ग्रन्थ का विषय कश्मीर के उन विद्वानों तथा उनकी रचनाओं से सम्बन्धित है, जिन्होंने संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया है तथा कश्मीर भूमि को अपने ज्ञान के प्रकाश से दैदीप्यमान किया है। संस्कृत वाङ्मय एक समृद्ध वाङ्मय हैं। इसमें कश्मीर क्षेत्र का क्या योगदान रहा है? साथ ही विश्व पटल पर विद्या के क्षेत्र में कश्मीर की क्या स्थिति रही है? इस बात को विशेष रूप से वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस ग्रन्थ के माध्यम से सम्पूर्ण विद्वत् समाज, विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों के मध्य रखना हमारा उद्देश्य है। इस ग्रन्थ द्वारा कश्मीर को लेकर जो आज हम सभी के मन में द्वन्द्व है, शंकायें हैं, उसका भी कुछ समाधान करना सम्भव हो सकेगा ऐसा मेरा प्रयास है।

संस्कृत साहित्य के बहुत से विद्वान् कश्मीर क्षेत्र से सम्बन्धित है, लेकिन उन पर कार्य बहुत कम हुआ है। इसका मुख्य कारण इस क्षेत्र विशेष की परिस्थिति हो सकती है। जिसके कारण वहाँ के विद्वानों की रचनायें प्रकाश में नहीं आ पा रही हैं,

फलस्वरूप आज ज्ञान का वह प्रकाश लुप्तप्राय सा हो रहा है। कश्मीर क्षेत्र की ज्ञान की उस धारा से पुनः इस विश्व को जोड़ना इस ग्रन्थ का एक लक्ष्य है।

इसके साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी संस्कृत साहित्य और कश्मीर यह बिन्दु विद्वानों में विचार-विमर्श का विषय रहता है। इस क्षेत्र में बहुत गम्भीर कार्य हुआ है और हो रहा है। वर्तमान समय के कुछ विद्वानों का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जिन्होंने कश्मीर के प्राप्त तथा अप्राप्त दोनों ही प्रकार के साहित्य पर अपनी लेखनी उठायी है। इनमें अभिनवगुप्त शोध संस्थान, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ के संस्थापक प्रो० कान्तिचन्द्र पाण्डेय, पी० वी० काणे, एस० सी० बनर्जी, के० एस० नागराजन, प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी आदि विद्वान् प्रमुख हैं।

प्रो० राधाबल्लभ त्रिपाठी जी ने 'संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास' नामक अपनी पुस्तक में प्राचीन कवियों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि प्रकृति के रमणीय अंचल में बसा हुआ कश्मीर देश की सांस्कृतिक गतिविधियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है। कश्मीर विशेष रूप से ज्ञान विज्ञान के संवर्धन तथा संरक्षण का केन्द्र रहा है। प्राचीन कवियों चिन्तकों तथा दार्शनिकों द्वारा कश्मीर को विद्या का केन्द्र कहा गया है। राजा अवन्तिवर्मन, ललितादित्य तथा हर्षवर्द्धन ने कश्मीर में कला और साहित्य को बढ़ावा देते हुए कश्मीर का मान बढ़ाया। काव्य शास्त्र तथा शैवदर्शन को कश्मीर का अद्वितीय योगदान मिला। कश्मीर में वामन, उद्भट, रुद्रट, आनन्दवर्द्धन, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, रुय्यक जैसे संस्कृत के अप्रतिम काव्यशास्त्री उत्पन्न हुए। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिन्तकों की श्रेष्ठ परम्परा में दण्डी और पंडितराज जगन्नाथ जैसे कुछ आचार्यों को छोड़कर शेष कश्मीर में ही स्थित थे।

काश्मीर शैव दर्शन में शिक्षा तथा शक्ति की सत्ता को एक माना गया है। अर्द्धनारीश्वर शिव-शक्ति का सामरस्य है जो कि अभेद दृष्टि का प्रतिपादक है। इस दर्शन की सांस्कृतिक तथा सामाजिक उपादेयता यह है कि सभी में भेद दृष्टि को समाप्त करना तथा अभेद दृष्टि को व्याप्त करना इससे देश में शान्ति हो सकेगी, विश्व में शान्ति होगी।

इसी प्रकार शैव दर्शन की परम्परा इसी धरती पर उत्पन्न हुई और अनवरत विकास को प्राप्त हुई। वसुगुप्त, सोमानन्द, जयरथ, उत्पल, राजानक रुय्यक, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, कल्लट, सुभट, जयरथ, भट्टवामदेव जैसे विद्वान् चिन्तकों ने कश्मीर की भूमि पर जिस विचार को जन्म दिया, वह चिन्तन तथा तत्त्वदर्शन

आज भारतीय संस्कृति के साथ-साथ विश्व संस्कृति की धरोहर है। बौद्ध तथा जैन दर्शन के आचार्य भी यहाँ हुए। ह्वेनसांग भी कश्मीर में कुछ वर्षों तक रहा। गुणाढ्य की बृहत्कथा के दो रूप कथा सरित्सागर तथा वृहत्कथामंजरी का निर्माण यही हुआ। प्राकृत का सुप्रसिद्ध काव्य सेतुबन्ध की रचना प्रवरसेन द्वारा कश्मीर में रहकर की गयी।

विक्रमांक देवचरित महाकाव्य में महाकवि विल्हण ने कश्मीर को ज्ञान और कला सौन्दर्य का अनुपम उदाहरण माना है और अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में कहा है—

सहोदरा कुंकुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।।

अर्थात् काव्य / कविता का सौन्दर्य केसर और कुंकुम का सौन्दर्य सहोदर भाव में है। प्राकृतिक सुषमा के साथ-साथ ज्ञान के सौन्दर्य में भी कश्मीर शीर्षस्थ रहा है। काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के चिन्तन की धारा भी कश्मीर से ही निकली ऋषि पिंगल नाट्यशास्त्र तथा छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य रहे। इन्हीं कश्पय ऋषि के नाम पर कश्मीर को काश्यपी भी कहा जाता है। काव्यादर्श की हृदयंगम टीका में काव्यशास्त्र के आचार्यों की सूची में इनकी गणना की गयी है। नाट्यशास्त्र के टीकाकारों, व्याख्याकारों की सूची में बहुत से आचार्य है, जिनका सम्बन्ध कश्मीर की पावन तथा सुन्दर धरती है। जैसे- भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, उद्भट, वामन, आनन्दवर्धन, क्षेमेन्द्र, रुद्रट, मम्मट, रुय्यक, जयरथ इत्यादि।

कश्मीर की यह पावन तथा अनुपम प्राकृतिक छटा बिखेरने वाली धरती आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यक उपलब्धियों की गरिमा के कारण प्राचीन काल से लेकर इस युग तक आज भी कवियों की कल्पना और इतिहासकारों की लेखनी का विषय बनती रही है। इस प्रकार कश्मीर भूमि के संस्कृत आचार्यों की रचनाएँ एक विश्वशान्ति का सन्देश देने वाली रचनाएँ हैं। यह ज्ञान हम सभी को होना चाहिए। साथ ही कश्मीर के साहित्य की सुरक्षा भी हो सकेगी। यही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है।

संक्षेप में इस ग्रन्थ का लक्ष्य देश में शान्ति स्थापित करना तथा विश्वशान्ति का सन्देश देना है। दूसरा समाज में व्याप्त भेद दृष्टि को दूर कर अभेद दृष्टि को स्थापित करना। तीसरा लक्ष्य कश्मीर क्षेत्र के आचार्यों के साहित्य की सुरक्षा करना है। कश्मीर के बहुत से विद्वानों की रचनाएँ लोगों की दृष्टिपथ से ओझल हैं। उसे सभी के सम्मुख लाने का एक प्रयास रहेगा, जिससे उस क्षेत्र विशेष तथा काल-विशेष के साहित्य की सुरक्षा हो सके।

लक्ष्य कश्मीर भूमि की ज्ञान परम्परा जो कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण आज आगे नहीं आ पा रही है, उसे सम्पूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना है जो कि शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगी। कश्मीर जो कि सदियों से ज्ञान और दर्शन का केन्द्र रहा है उसे पुनः आज के अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर उसी ज्ञान और दर्शन के सिरमौर के रूप में प्रतिष्ठित करना है ।

इतिहास लेखन की दृष्टि से नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर घाटी के इतिहास को प्रथम बार संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध करने वाले कश्मीरी विद्वान् कल्हण हैं। इस इतिहास को काव्यात्मक शैली में लिखने में इन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार आज का जो कश्मीर है वह प्राचीन समय का सूखा हुआ सतीसर है। ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि देवी सती ने कश्मीर घाटी में ही तपस्या की थी क्योंकि वह शिव के समीप पृथिवी पर रहना चाहती थी। ऐसा प्रसंग आता है कि यही सती वितस्ता के रूप में प्रकट हुई तथा झेलम नदी बन गयी। इस निर्मल नदी के जल से ही वह सूखी कश्मीर की भूमि तथा घाटियाँ हरी-भरी हो गयी। वितस्ता नदी की महत्ता वेदों में भी प्राप्त होती है। महाभारत काल में तो इसे 'तीर्थजल' का गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इस प्रकार कश्मीर उस काल में एक प.वन तीर्थ भूमि थी। कश्मीर की पावनता तथा उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कल्हण लिखते है कि 'कश्मीर की तिलभर भूमि भी तीर्थक्षेत्र से बाहर नहीं थी। अर्थात् कश्मीर का कण-कण तीर्थ-क्षेत्र था।' कल्हण ने तो अपनी काव्यात्मक शैली में कश्मीर की पावनता की अभिव्यञ्जना करते हुए उसे पार्वती स्वरूप तथा वहाँ के राजा को शिव का अंश कहा है—

कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः।

श्रीनगर को कश्मीर की आत्मा कहा गया है। कल्हण ने अपने ग्रन्थ में कश्मीर के निवासियों के चरित्र तथा आत्मबल की पवित्रता का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'कश्मीर के लोग शत्रुओं से नहीं डरते है, वह केवल परलोक से ही डरते हैं।

अशोक कश्मीर का आदर्श राजा था। सम्राट अशोक ने श्रीनगर को यज्ञ और सम्पदा से परिपूर्ण समृद्ध क्षेत्र बनाया था। वह श्रीनगर आज भी अपने नाम के अनुरूप शोभा तथा ऐश्वर्य को प्राप्त कर रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ ६ अध्यायों में विभक्त है तथा अन्त में एक समृद्ध सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची भी दी गयी है ।

प्रथम अध्याय में कश्मीर की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस अध्याय को तीन अवान्तर भागों में विभाजित किया गया। जिसमें क्रमशः कश्मीर के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें कश्मीर काल तक का वर्णन यथासम्भाव करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अवान्तर भेद में कश्मीर जो कि भारत का अति सुन्दर प्रदेश है। उसकी सांस्कृति विशेषताओं का परिचय देने का प्रयास किया गया है। इस सन्दर्भ में वहाँ का धर्म वहाँ की भाषा, खान-पान, पर्व ऐतिहासिक इमारतें, वेश-भूषा, मनोरंजन, संगीत आदि पर विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय के तृतीय अवान्तर भाग में कश्मीर क्षेत्र से सम्बन्धित संस्कृत साहित्य पर प्रकाश डालने से प्रयास किया गया है। इसमें स्तोत्रकाव्य, नाट्यशास्त्रीय, काव्यशास्त्रीय दार्शनिक आचार्यों तथा उनके द्वारा रचित साहित्य को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में कश्मीर के काव्यशास्त्र के आचार्यों का योगदान विस्तार से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उन आचार्यों का काल,उनका व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों इत्यादि का विवेचन विस्तारपूर्वक किया गया है। अधिकांश रूप से कश्मीर के संस्कृत-साहित्य काव्यशास्त्र तथा शैवदर्शन सम्बन्धित साहित्य प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। भामह, वामन उद्भट, रुद्रट, आनन्दवर्धन, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, कल्हण रुय्यचक इत्यादि अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान् काव्यशास्त्रियों ने कश्मीर में जन्म लिया और अपने वैदुष्य तथा सारस्वत साधना से भारत देश का गौरव बढ़ाया साथ ही सम्पूर्ण विश्व को भी चमत्कृत किया।

५००-७०० ई० के मध्य काव्यालंकार ग्रन्थ के रचयिता भामह के कश्मीरी होने में कुछ विद्वानों में मतभेद हैं आचार्य भामह को कुछ विद्वान् बौद्ध मानते हैं कुछ कश्मीरी तथा कुछ लोग वैदिकी भी मानते हैं। आचार्य भामह की काव्य-रचना उनका मौलिक चिन्तन है। उन्होंने काव्य रचना में कवित्व शक्ति तथा पाण्डित्य दोनों को आधार बताया है। अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने के लिए तार्किक आधार भी लेते हैं। इनके काव्यालंकार ग्रन्थ में छः परिच्छेद हैं जिसका विस्तार से विवेचन किया गया है।

आचार्य उद्भट कश्मीर के निवासी थे। इनका समय ८वीं तथा ९वीं शताब्दी के आस-पास का माना जाता है 'काव्यालंकार सार संग्रह' इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ७वीं तथा ८वीं शताब्दी के मध्य में माने जाते हैं इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यालंकार सूत्र है। इस ग्रन्थ में ५ अधिकरण

तथा १२ अध्याय है। इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य यह है कि इन्होंने अपने इस ग्रन्थ में उत्तररामचरित, हर्षचरित, अमरुशतक, रघुवंश, कुमार सम्भव, मृच्छकटिक तथा किरातार्जुनीयम् इत्यादि ग्रन्थों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

कश्मीर में ख्यातिलब्ध आचार्यों में 'रुद्रट' का भी नाम आता है इनका 'काव्यालंकार' अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें आचार्य रुद्रट ने वैज्ञानिक ढंग से अलंकारों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। ध्वनिसिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा रचित ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' संस्कृत काव्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। काव्याशास्त्र में ध्वन्यालोक का वही स्थान है जो व्याकरणशास्त्र में पाणिनि की अष्टाध्यायी का हैं आचार्य मुकुलभट्ट की रचना 'अभिधावृत्तिमातृका' है। आचार्य भट्टनायक ने भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या की है। इन्होंने अभिधा व्यापार के साथ भावकत्व तथा भोजकत्व नामक दो और व्यापारों की कल्पना की है। भट्टनायक के मतानुसार भावकत्व से विभावादि का साधारणीकरण होकर भोजकत्व नामक व्यापार से रसानुभूति होती है। इसके अतिरिक्त 'काव्यकौतुक' ग्रन्थ के रचयिता भट्टतौत का समय १०वीं शताब्दी है। आचार्य कुन्तक नवीं शताब्दी के बाद के आचार्य है वक्रोक्तिजीवित इनका एक मात्र ग्रन्थ है।

अभिनवगुप्त काश्मीरशैवदर्शन के मूर्द्धन्य आचार्य थे। साहित्यशास्त्र में आपका पहला ग्रन्थ ध्वन्यालोकलोचन प्राप्त होता है। दूसरा ग्रन्थ 'अभिनवभारती' है। यह भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर लिखी हुई टीका है। इसके अतिरिक्त भैरवस्तोत्र, परमार्थचर्चा, क्रमस्तोत्र, देवताचक्रस्तोत्र, रहस्यपंचदशिका आदि स्तोत्र साहित्य भी अभिनवगुप्त द्वारा लिखे गये।

११वीं शताब्दी के ध्वनिविरोधी आचार्य महिमभट्ट है। इनका एकमात्र ग्रन्थ व्यक्तिविवेक है। आचार्य क्षेमेन्द्र की 'औचित्यविचारचर्चा' सुप्रसिद्ध रचना है। ये औचित्य सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक रहे। आचार्य मम्मट भी ११वीं शताब्दी के मध्य के माने जाते हैं। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' साहित्य शास्त्र का शिरोमणि ग्रन्थ है। काव्यप्रकाश में ध्वनिसिद्धान्त को और अधिक पुष्ट रूप में प्रस्तुत करने के कारण 'मम्मट' को ध्वनिप्रस्थापक परमाचार्य कहा जाता है।

इस ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में कश्मीर क्षेत्र से सम्बन्धित दर्शनशास्त्र के आचार्यों का योगदान उनके काल का व्यक्तित्त्व तथा कृतित्त्व के आधार पर सविस्तार प्रस्तुत किया गया है। आचार्य वसुगुप्त शैवदर्शन के प्रथम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इनका समय ९वीं शताब्दी का आरम्भ माना जाता है।

शिवसूत्र तथा स्पन्दशास्त्र इनकी रचना है। शैवदर्शन के विकास में आचार्य वसुगुप्त की अद्वितीय भूमिका रही है।

प्रत्यभिज्ञानदर्शन की परम्परा के द्वितीय उत्कृष्ट आचार्य सोमानन्द है। इन्हें प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रवर्तक आचार्य भी स्वीकार किया गया है। **'शिवदृष्टि'** एकमात्र इनका प्राप्त ग्रन्थ है। आचार्य सोमानन्द प्रत्यभिज्ञा दर्शन के साथ-साथ 'कुल-क्रमदर्शन' के भी विद्वान् थे। आचार्य सोमानन्द को **'शिवदृष्टि'** ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा तथा इसका ज्ञान स्वप्न में 'शिव' द्वारा प्राप्त हुआ था जिसका उल्लेख उन्होंने अपने ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' में स्पष्ट रूप से किया है। वह लिखते हैं — **'शिवोदाताशिवो भोक्ता'**। इसी क्रम में आचार्य महेश्वरानन्द का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'महार्थमञ्जरी' है। महेश्वरानन्द ने अपने ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख किया है कि उन्होंने प्रत्यभिज्ञा मार्ग से ही आत्मज्ञान प्राप्त किया।

आचार्य उत्पलदेव की 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसे कश्मीर के शैवदर्शन साहित्य का मानदण्ड रूप आधार ग्रन्थ माना गया है। त्रिक् तथा क्रमदर्शन में प्रतिष्ठित आचार्य लक्ष्मणगुप्त है।

आचार्य अभिनवगुप्त एक शैवयोगी थे। आज भी इन्हें काश्मीर शैवदर्शन का श्रेष्ठ अधिकारी आचार्य माना जाता है। तन्त्रालोक तथा परात्रिशिंका ये दो ग्रन्थ शैवदर्शन के साधनात्मक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसी क्रम में क्षेमराज का **'प्रत्यभिज्ञाहृदय'** प्रतिष्ठा प्राप्त ग्रन्थ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में काश्मीर शैव दर्शन के उद्भव और विकास पर प्रकाश डाला गया है। काश्मीर शैवदर्शन अपने आगमिक चिन्तन धारा के साथ वैदिक विचार और परम्परा की भी रक्षा करता रहा है। शैवागम की इस अद्वैतवादी विचार धारा का विकास भारतवर्ष के कश्मीर क्षेत्र में ही हुआ और इस दर्शन के विद्वान् आचार्य भी इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रहे। कोई भी दार्शनिक सम्प्रदाय तभी पूर्ण माना जाता है, जब उसका व्यावहारिक पक्ष भी उतना ही सशक्त हो जितना उसका सिद्धान्त पक्ष है सिद्धान्तों की चर्चा विना व्यावहारिकता के मात्र कोरी कल्पना है। काश्मीर शैवदर्शन के सिद्धान्त पक्ष का पूर्ण परिचय हमें प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में देखने को मिलता है तथा व्यावहारिक पक्ष 'साधना-पद्धति' 'स्पन्दशास्त्र' में वर्णित है। इस प्रकार अपने सिद्धान्त तथा व्यवहार पक्ष के द्वारा काश्मीरशैवदर्शन अपने ज्ञान के प्रकाश से इस पृथिवी के मनुष्यों को आलोकित करता चला आ रहा है। काश्मीर शैवदर्शन के वाङ्मय को इन तीन रूपों में विभाजित किया गया है— आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। काश्मीर

शैवागमों की संख्या ६४ है जो गुरुशिष्य परम्परा से चला आ रहा है। इसमें प्रधानरूप से मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, स्वच्छन्दतन्त्र, मृगेन्द्रतन्त्र, विज्ञानभैरव, नेत्रतन्त्र, परात्रिंशिका तथा शिवसूत्र प्रमुख है। मालिनीविजयोत्तरतन्त्र सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन तन्त्र है यह सम्पूर्ण त्रिकदर्शन का मूलाधार हैं।

काश्मीरशैवदर्शन के विकास की एक आचार्य परम्परा भी रही है जिसमें आचार्य वसुगुप्त, आचार्य सोमानन्द, आचार्य महेश्वरानन्द, आचार्य उत्पलदेव, आचार्य लक्ष्मणगुप्त, आचार्य अभिनवगुप्त, आचार्य कल्लट, आचार्य क्षेमराज, आचार्य वरदराज, आचार्य जयरथ, आचार्य क्षितिकण्ठ, आचार्य शिवोपाध्यायादि प्रमुख रहे हैं।

पञ्चम अध्याय में प्रतिष्ठित शैवदर्शनिक आचार्य क्षेमराज के जीवन-वृतान्त का विस्तार से विवेचन हुआ है। आचार्य क्षेमराज का परिचय, उनके काल, व्यक्तित्व तथा उनकी रचनाओं पर आधारित है। आचार्य क्षेमराज आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य थे ऐसी मान्यता है। साथ ही स्पन्द तथा प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर क्षेमराज का समय १०वीं तथा ११वीं शताब्दी के मध्य का माना गया है। इनके पारिवारिक जीवन का संकेत अपने ग्रन्थों में इन्होंने कहीं पर भी नहीं दिया है। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा दिये गये कुछ संकेतों से ही इनके विषय में कुछ ज्ञात हो सका है। तन्त्रालोक में अभिनवगुप्त ने अपने शिष्यों की सूची में 'क्षेम' नाम को रखा है, इत्यादि।

व्यक्तित्व की दृष्टि से देखा जाये तो आचार्य क्षेमराज अपने समय के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी प्रतिभा अपने गुरु की भाँति सर्वतोन्मुखी थी। तन्त्रसाहित्य का कोई अंश उनके लिए अछूता नहीं रहा। शैवागमों के बीज से प्रस्फुटित जिस शैवदर्शन के अंकुर को अभिनवगुप्त ने अपनी प्रतिभा रूपी जल से अभिसिञ्चित कर एक विशाल वृक्ष का रूप दिया उस वृक्ष का संरक्षण तथा संवर्धन आचार्य क्षेमराज ने किया। आचार्य क्षेमराज की रचाओं की संख्या लगभग १८-२० के मध्य बतायी जाती है। आचार्य क्षेमराज ने अपने गुरु अभिनवगुप्त का अनुकरण करते हुए तीन विषयों पर ग्रन्थों की रचना की। ये विषय हैं —

(१) तन्त्र, (२) शैवदर्शन (३) साहित्य शास्त्र।

'प्रत्यभिज्ञाहृदय' आचार्य क्षेमराज का अत्यन्त सुबोध और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह सूत्र तथा वृत्ति शैली में लिखा गया है। इस ग्रन्थ के द्वारा प्रत्यभिज्ञा दर्शन को सरलता से समझा जा सकता है।

षष्ठ अध्याय में आचार्य क्षेमराज के शैवदार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना

प्रस्तुत की गयी है। जिसमें उनके प्रत्यभिज्ञा, स्पन्द, त्रिक तथा क्रम दर्शनों पर विस्तार से वर्णन किया गया है।

क्रमदर्शन में परमतत्त्व का नाम काली है। इसीलिए इस दर्शन को कालीनय, देवीनय तथा शिव के उत्तरमुख से कहे जाने के कारण यह औन्तराम्नाय नाम से जाना जाता है। क्रमदर्शन एक अद्वैतवादी दर्शन है। यह शक्ति दर्शन के अन्तर्गत एक विशिष्ट विचार धारा है।

प्रत्यभिज्ञा काश्मीरशैवदर्शन का आधार भूत सिद्धान्त है। यह मोक्ष का साधन भी है और मानवजीवन का परमलक्ष्य होने से स्वयं मोक्ष स्वरूप भी है। प्रत्यभिज्ञा का सामान्य अर्थ है— 'पहचान' 'अपने स्वरूप की पहचान'। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र यह बताता है कि जीव शिव ही है। व्याष्टि तथा समष्टि जगत का आत्मा एक ही है। इस प्रकार यह शास्त्र जीव को अपने यथार्थ स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा अर्थात् पहचान करवाता है। इसीलिए यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन है क्योंकि भारतीय दर्शन के चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य प्रमाता को उसके स्वरूप का अवबोधन कराना है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में ३६ तत्त्वों का विवेचन किया गया है इसमें सदाशिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थतत्त्व समाहित है।

त्रिकदर्शन इसी प्रत्यभिज्ञा दर्शन का ही दूसरा नाम है यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन की तत्त्वमीमांसा और साधनापक्ष से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। काश्मीरशैवदर्शन के साधना पक्ष से स्पन्दशास्त्र का सम्बन्ध है। स्पन्दकारिका इसका मूल ग्रन्थ है। स्पन्द शब्द का प्रयोग आगमशास्त्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया है। काश्मीर शैव दर्शन में शिव की इच्छा रूपी शक्ति को ही स्पन्द कहा गया है।

त्रिकदर्शन या त्रिकशास्त्र किसी एक ग्रन्थ का नाम नहीं है बल्कि यह कौल, वाम, प्रत्यभिज्ञा तथा स्पन्दादि सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले विभिन्न शैवागमों की मिली जुली सम्पत्ति है। त्रिकदर्शन में प्रथम आविष्कारक आचार्य त्र्यम्बक है। त्रिकदर्शन को त्र्यम्बकदर्शन, अद्वैतशैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, स्पन्दशास्त्र, कुलशास्त्रादि नामों से भी जाना जाता है। तत्त्व, ज्ञान तथा आचार मीमांसा इसके तीन आधार स्तम्भ हैं।

ग्रन्थ के अन्त में संदर्भ ग्रन्थ सूची से परिपुष्ट यह ग्रन्थ अध्येताओं, गवेषकों चिन्तकों तथा आलोचकों के समक्ष प्रस्तुत है।

—रीता तिवारी

विषय-सूची

आशीर्वचन (v)

शुभाशंसा (vi)

आत्मनिवेदन (vii)

भूमिका (ix)

प्रथम अध्याय

कश्मीर की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि १

द्वितीय अध्याय

काव्यशास्त्र के आचार्य और उनका योगदान ३०

तृतीय अध्याय

दर्शन शास्त्र के आचार्य और उनका योगदान ४१

चतुर्थ-अध्याय

काश्मीरशैवदर्शन का उद्भव और विकास ५६

पञ्चम अध्याय

आचार्य क्षेमराज ९४

षष्ठ अध्याय

क्षेमराज का शैव सिद्धान्त ११५

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची १६०

सङ्केताक्षर-सूची

ई० प्र०	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
ई० प्र० का०	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका
ई० प्र० विम०	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
ई० प्र० वि० विम०	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी
ईशा०	ईशावास्योपनिषद्
त० लो०	तन्त्रालोक
त० सा०	तन्त्रसार
तत्र० लो० वि०	तन्त्रालोकविवृत्ति
ने० त०	नेत्रतन्त्र
प्र० हृ०	प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
भा०	भास्करी
म० म०	महार्थमञ्जरी
मा० वि० त०	मालिनीविजयोत्तरतन्त्र
वि० भै०	विज्ञानभैरव
वि० भै० वि	विज्ञानभैरवविवृत्ति
शि० दृ०	शिवदृष्टि
शि० दृ० वृ०	शिवदृष्टिवृत्ति
शि० स्तो०	शिवस्तोत्रावली
शि० सू० वा०	शिवसूत्रवार्तिक
ष० त्रिं० सं०	षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह
स्प० का०	स्पन्दकारिका
स्प० वि०	स्पन्दविवृत्ति
स्प० नि०	स्पन्दनिर्णय
स्व० त०	स्वच्छन्दतन्त्र
सां० का०	सांख्यकारिका

प्रथम अध्याय

कश्मीर की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

(क) कश्मीर का इतिहास

कश्मीर घाटी के इतिहास को प्रथम बार संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध करने वाले कश्मीरी ब्राह्मण विद्वान् कल्हण है। काव्यात्मक शैली में इतिहास को उकेरना सम्भवत: शुद्ध साहित्यिक परम्परा पर खरा नहीं उतरता है तथापि वह कश्मीर के इतिहास को संयमित रूप से लिपिबद्ध करने में सफल रहे हैं। पूर्वकाल के ऐतिहासिक रचनाओं में सुव्रत भारती क्षेमेन्द्र की 'नृपावली' नीलमुनि द्वारा लिखित राजकथाओं से सम्बन्धित ग्रन्थों के अवलोकन तथा मन्दिर नगर, ताम्रपत्र, आज्ञापत्र व अन्य शिलालेखों को पढ़कर पूर्णत: सत्य तथा ऐतिहासिक घटनाक्रम को लिपिबद्‌घ करना कवि का प्रयोजन है।[1]

नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर राज्य के आरम्भ के प्रसंग को कल्हण ने अपनी भाषा में लिपिबद्ध किया है। वह लिखते हैं, वैवस्वत मन्वन्तर का आरम्भ था छ: मन्वन्तर बीत चुके थे। हिमालय के अन्दर जल से परिपूर्ण सतीसर नामक झील थी। जिसमें जलोद्भव नामक अत्यन्त क्रूर व पराक्रमी असुर निवास करता था।

महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवताओं से प्रार्थना कर उनका आह्वान किया। तदनुरूप तीनों देवताओं ने परस्पर विमर्श के उपरान्त बारामूला के समीप पर्वत काटकर उस झील का जल निकाला। जल निकलकर नदी के रूप में गान्धार और सिन्धु प्रदेश की यात्रा करते हुए समुद्र में मिल गया। जल समाप्त होते ही सुर, असुर सेना में युद्ध हुआ और देवों द्वारा असुरों का वध कर दिये जाने के उपरान्त कश्यप ऋषि के नाम पर इस स्थान का नाम कश्मीर रखा गया जो आज की कश्मीर घाटी पूर्व का सूखा हुआ सतीसर ही है।[2]

कश्मीर घाटी में ही देवी सती ने तपस्या की थी। शिव के समीप ही पृथ्वी पर रहना चाहती थी। भगवान शिव के त्रिशूल से भूमि पर प्रहार के फलस्वरूप

सती वितस्ता के रूप में प्रकट हुई और झेलम नदी बन गयी। इस नदी के निर्मल जल से कश्मीर की भूमि तथा घाटियाँ हरीतिमा से युक्त हो गयी। ऋग्वेद में भी वितस्ता नदी का गुणगान हुआ है। महाभारत काल में भी उसे तीर्थजल का गौरव प्राप्त है। कश्मीर की भूमि का कण-कण पवित्र गाथाओं से भरा पड़ा है। कश्मीर भूमि उस समय विजयेश, आदिकोश, इशान, चक्रभृत आदि तीर्थों से पावन थी।

चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूषिते।
तिलांशोऽपि न यास्ति पृथव्यास्तीर्थे बहिस्कृतः।[३]

अर्थात् तिलभर की भूमि तीर्थक्षेत्र से बाहर नहीं थी। कश्मीर की पावनता तथा सौन्दर्य के सम्बन्ध में कल्हण की ये पंक्तियाँ पूर्णतः यथार्थ है। इससे यह प्रमाणित होता है कि कल्हण को कश्मीर के भौगोलिक स्थिति का पूर्णतः ज्ञान था।

कलियुग के प्रथम चरण में जब महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी के राजा थे, उस समय कश्मीर में सुव्यवस्था थी। राजतरंगिणी में कल्हण ने उल्लेख किया है कि कश्मीर की भूमि पार्वती का स्वरूप है। वहाँ के राजा में शिव का अंश होता है।

कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः।[४]

कश्मीरी स्त्रियाँ पुरुषों के साथ युद्ध के मैदान में भी जाती थी। श्री कृष्ण ने अपनी गंभीर वाणी से कहा कि कश्मीर पर विजय पुण्य रूपी बल के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। कश्मीर के लोग शत्रुओं से नहीं डरते हैं, वह केवल परलोक से ही डरते हैं। कल्हण ने अपने ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है–

विजीयते पुण्यबलैर्बलैर्यन्तु न शस्त्रिणाम्।
परलोकात्ततो भीतिर्यस्मिन्नवसतां परम्।[५]

द्वितीय गोनन्द के बाद कश्मीर के पैंतीस महिपाल, हुए किन्तु उनका इतिहास आज भी प्राप्त नहीं है कि इस कारण आज उनकी कोई पहचान नहीं है। कल्हण ने लिखा है–

आम्नायभङ्गान्निर्नष्टनामकृत्यास्ततः परम्।
पञ्चत्रिशंन्महीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे।।[६]

श्रीनगर को कश्मीर की आत्मा कहा गया है। कल्हण ने इतिहास की रचना करते हुए बताया है। अशोक कश्मीर का आदर्श राजा था।[७] देवानाम प्रिय तथा प्रियदर्शी पदों से उसे सम्मानित ही नहीं किया गया बल्कि वह सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ तथा सत्यसंकल्प के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। अशोक ने शुष्क क्षेत्र और वितस्तात्र नामक दो स्तूप बनवाये।[८]

उस परम प्रतापी राजा अशोक ने धन-धान्य तथा जनसमुदाय से परिपूर्ण छियानबे लाख दिव्य भवनों से सुसज्जित "श्रीनगरी" नामक नगर की स्थापना कर उसे बचाया।

स षण्नवत्या गेहानां लक्षैर्लक्ष्मीसमुज्जवलैः।
गरीयसीं पुरीं श्रीमांश्चक्रे श्रीनगरीं नृपः।[९]

वर्तमान काल का बादामीबाग ही कश्मीर की प्राचीन राजधानी पुराधिष्ठान थी जहाँ आजकल सैनिक छावनी है। राजा अशोक ने श्रीनगर को यज्ञ और सम्पदा से परिपूर्ण समृद्ध क्षेत्र बनाया था। आज भी श्रीनगर अपने नाम के अनुरूप शोभा तथा ऐश्वर्य को प्राप्त कर रहा है। मुस्लिम काल में यह नाम बदल दिया गया, क्योंकि श्री शब्द का अर्थ "लक्ष्मी" होता है जो कि हिन्दू देवी का नाम है। अतः मुसलमानों द्वारा इसे कश्मीर नाम दिया गया, किन्तु श्रीनगर नाम आज भी इतिहास द्वारा भुलाया नहीं जा सका और आज भी अपने वैभव को प्राप्त यह नाम दैदीप्यमान है।

राजा दामोदर के पश्चात् शक जाति के हुष्क, जुष्क कनिष्क तथा तुरूष्क राजा हुए। इतिहासकार उन्हें कुषाणवंश के बताते हैं। ये पुण्यात्मा थे तथा अपने नाम पर नगर भी बसाये। उस समय कश्मीर में बौद्धभिक्षुओं का प्रभाव था। बोधिसत्वों के इस राज्य में 'नागार्जुन' को सर्वेश्वर बोधिसत्व माना जाता था। कल्हण की कालगणना के अनुसार भगवान बुद्ध के निर्वाण को १५० वर्ष हो गये थे।[१०]

कश्मीर की सीमा तुर्किस्तान की सीमा से मिलती है। दामोदर के पश्चात् कुषाणवंशीय राजाओं का कोई इतिहास कश्मीर के सन्दर्भ में नहीं मिलता है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ये तुषारगण सम्मिलित हुए थे। इस तरह ये तुरुक बाहर से आये थे। ये जाति मूलतः उत्तर दिशा में निवास करती है।

राजा मान्धाता तुषार थे, ये चक्रवर्ती राजा थे। कनिष्क के शासनकाल के पश्चात् निष्कण्टक सम्राट अभिमन्यु कश्मीर के राजा बने। वह धार्मिक थे। उस समय नागार्जुन द्वारा संरक्षित बौद्धधर्म सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचारित तथा प्रसारित हो चुका था जो प्रबल रूप से अपना प्रभाव स्थापित करता जा रहा था। तत्कालीन समाज में संस्कृत भाषा तथा साहित्य का पठन-पाठन प्रायः लुप्त होता जा रहा था। लोग पाणिनी तथा पतंजलि को भूलते जा रहे थे। तब सम्राट अभिमन्यु ने चन्द्राचार्य आदि प्रबुद्ध पण्डितों के सहयोग से संस्कृत भाषा का पुनः प्रचार-प्रसार

कराया। उस समय चन्द्राचार्य द्वारा एक 'चान्द्र' नामक व्याकरण के ग्रन्थ की भी रचना की गयी तथा जनसमाज में उस ग्रन्थ का पठन-पाठन भी कराया गया।

अभिमन्यु के पश्चात् तृतीय गोनन्द कश्मीर के राजा बने। राजा गोनन्द ने देश में नव-जागृति का सन्देश फैलाया। देश का नव-निर्माण किया। गोनन्द अपने वंश में ३५ वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया। गोनन्द की ख्याति रघुवंश के राज रघु की तरह थी। इसके बाद इसके पुत्र विभीषण ने राज्य किया। पुनः उसके बाद विभीषण के यशस्वी पुत्र इन्द्रजीत ने ३५ वर्ष तक कश्मीर पर शासन किया। इसके पश्चात् रावण जो कि शैवमतानुयायी था। भगवान शिव का अनन्य भक्त था। उसने कालान्तर में शिवलिंग चतुशालमठ में स्थापित कर पूरा कश्मीर राज्य अर्पित कर दिया था।

इस प्रकार कालक्रम से अनेक राजाओं ने कश्मीर क्षेत्र पर अपना शासन किया। बहुतों का समय बड़ा ही संघर्षपूर्ण भी रहा। इसमें राजा जय सिंह का राज्य शासनकाल महाराज हर्षदेव आदि से भी संघर्षपूर्ण रहा। राजा जयसिंह के जय-पराजय, उन्नति, अवनति का महाकवि कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में जितना विस्तार से वर्णन किया है तथा अपने कवित्व की प्रतिभा का जितना प्रकाशन किया है, उतना किसी अन्य राजा के वर्णन में नहीं।[११]

कल्हण आगे लिखते हैं कि जनता को सताकर एकत्रित किया हुआ राजाओं तथा नेताओं का धन शत्रु द्वारा उपभोग किया जाता है या हड़प लिया जाता है या उस धन को अग्नि जलाकर भस्म कर देती है-

सपत्नसादहितसाद्यति वा वह्निसाद्भवेत।
द्रविणं क्षोणिपालानां जनतोपद्रवार्जिमत्।।[१२]

इस प्रकार जयापीड शंकर वर्मा, यशस्कर आदि राजाओं द्वारा अनीतिपूर्वक अर्जित किया गया धन उनके पुत्रों तथा शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिया गया तथा दूसरे राजाओं द्वारा भी हड़प लिया गया।

इस प्रकार शुद्ध तथा अशुद्ध धन को व्यावहारिक रूप से उदाहरण देते हुए कल्हण ने आगे भी लिखा है कि जिन राजाओं ने न्यायोचित ढंग से धनार्जन किया था। उनके धन को कोई क्षति नहीं पहुँची।

उदाहरण के लिए अवन्तिवर्मा तथा चन्द्रापीडादि धर्मात्मा राजाओं का नाम लिया है।

निष्ठा न्याय्यस्य कोशस्य नावाप्यनुचिता, क्वचित् ।[१३]

ऐसा ज्ञान हो जाने पर राजा जयसिंह भी धार्मिक तथा जनसेवा के कार्यों में लगा रहने लगा। यज्ञ तीर्थ मन्दिर मठों का निर्माण के साथ-साथ तत्त्वज्ञानी विद्वानों की सेवा कार्य भी करने लगे थे। आगे चलकर अपने सत्कर्मों में राजा जयसिंह ने यशोराय, जयराम, पृथ्वीहर, पुत्र चतुष्क आदि राजाओं को जो कश्मीर के राज सिंहासन पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। उनको पराजित किया तथा कभी-कभी उनसे पराजित भी हुए, क्योंकि कल्हण ने लिखा है कि जीत और हार यह प्रकृति का नियम है जो जैसा शुभ-अशुभ कर्म करता है उसे वैसा ही परिणाम भी प्राप्त होता है, क्योंकि कर्म की गति उसके फल में कोई संदेह नहीं है। कर्मफल समस्त त्रिलोकी के मुख तक जाता है।

प्राप्तव्यं प्राप्तवान्सर्वो निजैःकृत्यैः शुभाशुभैः।
क्रियाति पत्तिर्लोकेऽत्र त्रैलोक्यं तु मुखेऽर्प्यति।।[१४]

ये कश्मीर का प्राचीन इतिहास था जो कि आदिकाल से ११४५ ई० तक का रहा। इसके उपरान्त मध्यकाल का कश्मीर का इतिहास जैसे कि ११४५-१५४० ई० का है। इसमें महाभारत काल से राजा जयसिंह के समय तक का वर्णन तथा इतिहास कवि कल्हण ने अपने काव्य राजतरंगिणी में लिखा है। उसके बाद दूसरे राजतरंगिणीकार ने कश्मीर के राजाओं के इतिहास को लिखा। ये दूसरे इतिहासकार जोनराज नाम से ज्ञाने गये। इनकी यही एकमात्र रचना है। इनके द्वारा हिन्दू कश्मीर का इस्लामीकरण प्रत्यक्ष देखा गया था। उस समय कश्मीर में मठ, मन्दिरों आदि के केवल ध्वंसावशेष रह गये थे। उनके स्थान पर कब्रिस्तान बना दिये गये थे।

कवि स्वयं लिखते हैं कि मुझे इन ग्रन्थ को लिखने की कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो जैनुलाबुद्दीन के सर्वाधिकारी शिर्यभट्ट की आज्ञा से नृपों की अवली को पूर्ण करने का प्रयास कर रहा हूँ।[१५]

महाराज जयसिंह के मृत्योपरान्त उसके अनेक पुत्रों में से उसका पुत्र परमाणुक कश्मीर का राजा घोषित किया गया। इसके उपरान्त वन्तिदेव, वोपदेव, जस्सक, जगदेव, राजदेव, संग्रामदेव, रामदेव, लक्ष्मदेव, सिंहदेव, सहदेवपून, रिंचन, उदयन, कोटारानी, शाहमीर (शमशुद्दीन) जमशेद, अलाउद्दीन, शहाबुद्दीन, कुतुबुद्दीन, सिकन्दर, कुतशिकन, अलीशाह, जैनुलाबुद्दीन, अलीशाह, हैदरशाह (हाजीख़ान) हस्सन, मुहम्मद शाह, फतेहशाह, मुहम्मद शाह तथा इस काल के

अन्त में शमशुद्दीन द्वितीय हुए, जिससे राजबल्लभ पामर आदि सन्तुष्ट हुए। इस बुद्धिमान राजा ने कुछ शत्रु राजाओं को बुलाकर उनसे सन्धि की, उनके साथ कुछ काल तक प्रेमपूर्वक रहकर समय व्यतीत किया। इस प्रकार इस मध्यकाल के कश्मीर के राजाओं का इतिहास तथा उनकी सूची पूर्ण हुई। (राजतरंगिणी-जोनराज, श्लोक ३९ उद्धृत-कश्मीर इतिहास और संस्कृति)

कश्मीर का वर्तमान काल का इतिहास १५४० ई० से वर्तमान समय तक का है। १५४० ई० तक शहंशाह शमशुद्दीन का शासनकाल रहा जिसका हमें ऐतिहासिक प्रमाण राजतरंगिणी ग्रन्थों के माध्यम से उपलब्ध होता है। अभी तक पाँच राजतरंगिणी प्राप्त हुई है, जिसमें सर्वाधिक जानी जाने वाली **कवि कल्हण की राजतरंगिणी है। इसके बाद कवि जोनराज की राजतरंगिणी तदोपरान्त जैन राजतरंगिणी श्रीवर द्वारा रचित हैं तथा एक शुक द्वारा रचित राजतरंगिणी प्राप्त होती है।**

मुगलशासन के अन्तर्गत सुल्तान जैनुलाबुद्दीन इस काल का प्रथम शासक माना जाता है। इतिहासकार श्रीवर ने अपने ग्रन्थ में इस शासक की प्रशंसा करते हुए कहा है कि इसकी शासन करने की रीति कलियुग में सतयुग की तरह उज्जवल तथा सद्गुणों से युक्त थी। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र अपने पिता का अनुकरण नहीं कर पाये, क्योंकि उनमें अनेक दुर्गुण थे। कश्मीर का लगभग १२० वर्षों का इतिहास षडयन्त्रों तथा कुचक्रों से भरा पड़ा है।

इसके पश्चात् मुगलवंशीय शासक हुमायूँ हुए। हुमायूँ के सेवक मिर्जा ने शीघ्र ही कश्मीर पर अपना पूरा अधिपत्य जमा लिया और हुमायूँ के नाम पर शासन करता रहा। उस समय कश्मीर की स्थिति ठीक नहीं थी। इस बीच गाजीचक्र भी कुछ दिन राज्य की शासन वयवस्था चलाता रहा। इसी बीच हुमायूँ की मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात् वैरमखां ने उसके उत्तराधिकारी अकबर का दिल्ली में राज्याभिषेक कर दिया। अकबर का शासन-१५६१-१६०५ ई० तक रहा। अकबर का ध्यान कश्मीर की ओर गया। उसने तत्कालीन राजा के प्रभाव से कश्मीर को पूर्ण अराजकता से मुक्त कर दिया और सन् १५८९ ई० में अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया। श्रीनगर के मध्य विशाल किले का निर्माण करवाया और अनेक बाग लगवाये तथा कश्मीर में मन्दिर मस्जिद भी बनवाये। साथ ही दीन-ए-इलाही नामक एक धर्म-सम्प्रदाय चलाया और जनमानस में शान्ति का सन्देश प्रसारित कराया। इस प्रकार १५८३ ई० में एक नवीन इलाही संवत् चलाया।

इसकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी के रूप में जहाँगीर का राज्याभिषेक हुआ। इनका शासनकान १६०५ से १६२७ ई० तक चला। जहाँगीर अपने शासनकाल में कई बार कश्मीर की घाटी गया। जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शाहजहाँ शासक बना। शाहजहाँ को कश्मीर ने बहुत आकर्षित किया। शाहजहाँ ने भी कश्मीर घाटी की कई यात्राएँ की थी।

श्रीनगर डल झील के किनारे शाहजहाँ ने निषाद बाग, शालीमार, चश्मेशाही आदि का निर्माण कराया। शाहजहाँ कलाप्रेमी था। कश्मीर में मुगलशासों ने लगभग ७०० बागों का निर्माण कराया था। इस प्रकार कश्मीर की पावन धरती इसे कभी भी भुला नहीं सकती।

इसके पश्चात् औरंगजेब ने कश्मीर की शासन व्यवस्था को सुचारू से चलाया। औरंगजेब ने अपने ४९वर्षों के शासनकाल में १४ सूबेदार कश्मीर भेजे। इनमें से एक इफ्तिकार खान था, वह बड़ा ही जलील था। उसने गौ हत्याएँ करायी तथा ब्राह्मणों पर अत्याचार किये। उसने एक दिन इतने ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत उतरवाकर उन्हें इस्लाम धर्म कबूल कराया, जिनके यज्ञोपवीत का वजन लगभग एक कुण्टल था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलों का पतन आरम्भ हुआ।

इसके पश्चात् औरंगजेब के बड़े पुत्र बहादुरशाह उत्तराधिकारी के रूप में राज्य सिंहासन पर आसीन हुए। इनके पश्चात् मुहम्मद शाह, अहमद शाह, आलमगीर, शाह आलम द्वितीय, अकबर द्वितीय तथा बहादुर शाह द्वितीय तक मुगलों का शासन भारतवर्ष पर रहा। ये शासक आपसी कलह के कारण आपस में ही मारे गये। कोई विशेष उपलब्धि इनके समय में नहीं रही।

इसके पश्चात् अफगानी शासकों का शासन चला। सभी ने लगभग धर्म में अन्धे होकर अनेक हिन्दू-मुस्मिल हत्यायें करवा डाली, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य ही क्षति पहुँचाना तथा सम्पत्ति पर अधिकार करना था। लगभग २८ पठानों ने शासन संभाला। पठानों का अन्तिम शासक जब्बार खान था यह भी हिन्दुओं पर अमानवीय अत्याचार करता रहा। मुसलमानों को भी प्रताड़ित करता था। उसके अत्याचार से तंग आकर कश्मीरवासी अपनी सहायता के लिए पंजाब के राजा रणजीत सिंह के पास गये। राजा ने जब्बार खान से युद्ध करने हेतु एक विशाल सेना अमृतसर से भेजी। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में जब्बार खाँ

मारा गया। इसके बाद कश्मीर की घाटी में कोई भी पठान नहीं आया। मुगलों का शासन समाप्त हुआ और सिक्खों का शासन आरम्भ हुआ।

महाराजा रणजीत सिंह का शासनकाल १७८० से १८३९ ई० तक रहा। जब्बार खॉं को पराजित कर कश्मीर विजय से राजा को इतनी प्रसन्नता हुई कि लाहौर और अमृतसर में तीन रात्रियाँ विशेष रूप से घी के दीपक जलाये गये। उन्हें कश्मीर देखने की हार्दिक इच्छा थी। सिक्ख शासन में कश्मीर में सिक्खों का पूर्ण प्रभाव था। इस प्रकार २७ वर्षों तक (१८१९ से ४९ ई०) सिक्खों का शासन रहा। सिक्ख शासन की नीतियों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि सिक्ख अफगानियों की तरह जंगली और बर्बर नहीं थे, परन्तु कठोर अनुशासन में रखकर खूब कार्य कराने वाले मालिक थे।

इसके पश्चात् डोगर राजवंश का आरम्भ हुआ। इसके संस्थापक गुलाब सिंह असाधारण प्रतिभा के धनी थे। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद रणजीत देव ने डोगरों के सेनानायकों को अपने अधीन किया। इसके शासनकाल में जम्मू अपने सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गया। डोगरा वंश के अन्तिम समय में दुग्गर क्षेत्र सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति के प्रभाव में आ गया।

राजा रणजीत सिंह और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की निहित सहमति से सन् १८३४ ई० में सबसे प्रतिभाशाली सेनापति जोरावर सिंह को लद्दाख पर विजय प्राप्त करने हेतु भेजा गया। जोरावर सिंह ने विजय प्राप्त कर ली। तदन्तर उसने अपने साहस और जोखिमपूर्ण अभियान द्वारा तिब्बत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

जोरावर सिंह की वीरता की समानता भारतीय इतिहास के पृष्ठों में कहीं नहीं मिलती। भारतवर्ष को उसकी वीरता पर गर्व है। इसके पश्चात् लद्दाख और तिब्बत की सीमा निश्चित हुई। गुलाब सिंह को लद्दाख मिल गया और लद्दाख डोगरा राज्य का अंग बन गया। गुलाब सिंह ने १८४६-५७ ई० तक अपनी कार्य कुशलता से लद्दाख, गिलगिट, कश्मीर और जम्मू को मिलाकर जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना की।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे राजनैतिक आन्दोलन आरम्भ हुए महाराजा हरिसिंह जब संवैधानिक सुधार कर रहे थे, उसी समय भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में जोर पकड़ रहा था। सन् १९४४ ई० में मुहम्मद अली जिन्ना जम्मू कश्मीर में अपना प्रभाव जमाने के लिए आये। जिन्ना

ने नेशनल कान्फ्रेन्स में अपने अध्यक्षीय भाषण में बड़े ही अशोभनीय वाक्यों का प्रयोग किया। जिन्ना शेख वाद-विवाद में पड़ गये। १० मई १९४७ ई० में मुस्लिम कान्फ्रेन्स के नेता चौधरी हमीदुल्लाह खान ने कहा कि यदि कश्मीरी अपने को सुरक्षित रखना चाहते है तो एक मजवूत और साहस्री नीति अपनाने में जरा भी देर नहीं करनी चाहिए। शनैः शनैः इन राजनैतिक गतिविधियों के साथ-साथ कश्मीर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षो और अन्तर्विरोधों के भंवर में फंसता चला गया।

१५ अगस्त १९४७ ई० में भारत देश स्वतन्त्र तो हुआ, लेकिन देश पुनः कश्मीर की समस्याओं से घिर गया। सन् १९४८ में कश्मीर की समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष रखा गया, जिसके कारण यह समस्या और भी विकराल रूप धारण कर चुकी थी। यह समस्या अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति और अन्तर्राष्ट्रीय कानून में फंसकर रह गयी और कश्मीर संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यसूची का स्थायी विषय बन गया।

इस प्रकार कश्मीर समस्या के अन्तर्राष्ट्रीय कानून की परिधि में आने पर कश्मीर के भीतर भी घटनाएं बढ़ती जा रही थी। इसी बीच १९६५ में पाकिस्तान ने कश्मीर पर कब्जा करने की योजना से अचानक आक्रमण कर दिया, लेकिन उस योजना को भारतीय सेना ने पूरा नहीं होने दिया। भारत-पाकिस्तान के बीच शान्ति कराने में सोवियत रूस ने विशेष रूचि ली और एक ईमानदार मध्यस्थ की भूमिका निभायी।

१९६६ में हुए ताशकन्द घोषणा के अनन्तर दोनों देशों का वातावरण कुछ शान्त हो गया, लेकिन आन्तरिक जनमत संग्रह मोर्चा की गतिविधियाँ उसी प्रकार चलती रही।१९७१ में बांगलादेश में मुक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया। दिसम्बर में पाकिस्तान ने उत्तरी कश्मीर पर आक्रमण शुरु कर दिया। युद्ध समाप्त होने पर एक नये देश के रूप में बंगलादेश का जन्म हुआ।

इसके बाद १९७२ में दोनों देशों ने शान्ति कायम हेतु शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किया। यही समझौता १९७२ के बाद भारत-पाक सम्बन्धों की आधार शिला बन गया, किन्तु कालक्रम में स्थिति गंभीर बनती चली गयी तथा पाकिस्तान ने कारगिल युद्ध शुरू कर दिया। इसमें जन-धन की अपार क्षति हुई। तदन्तर विधानसभा के चुनाव हुए, मुफ्ती मुहम्मद सईद मुख्यमंत्री बने। अपने तीन वर्ष के कार्यकाल में कश्मीर क्षेत्र का अधिक से अधिक विकास किया, फिर

गुलामनबीआजाद मुख्यमंत्री बने। इनके कार्यकाल में आतंकवाद में कमी आयी।

कश्मीरी जनसमाज भी शान्ति के प्रति अग्रसर हुए, लेकिन कुछ धार्मिक दलों के नेता आज भी कश्मीर की आजादी चाहते हैं, परन्तु अधिकांश लोग शान्ति चाहते हैं आज का कश्मीरी पढ़ा लिखा हुआ युवावर्ग विकास चाह रहा है। अपने जीवन को उन्नतिशील बनाना चाहता है और बना रहा है।[१६]

(ख) कश्मीर की सांस्कृतिक विशेषता

भारतदेश अपनी संस्कृति तथा सांस्कृतिक विरासत को संजोये रखने में विश्वपटल पर अपना एक अनुपम स्थान रखता है। कश्मीर भारत देश का सिरमौर है। इसे इस धरती का स्वर्ग कहा जाता है। इसे देव अर्थात् दिव्य भूमि भी कहा जाता है। भारतदेश विभिन्न संस्कृतियों तथा धर्म को मानने वाला देश है। यहाँ की बोली यहाँ की प्रथा यहाँ की भाषा यहाँ का खान-पान, रीति-परम्परायें, रहन-सहन, पहनावा आदि सदा से ही अन्य देशों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा कश्मीर क्षेत्र अपनी कुछ अलग ही सांस्कृतिक विशेषताओं से सुसज्जित है। इसका मुख्य कारण इसकी भौगोलिक स्थिति है। पृथ्वी तल से लगभग १० हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित पहाड़ों से घिरा घाटियों वाला कश्मीर एक ठण्डा प्रदेश है। कश्मीर अपने प्राकृतिक सुषमा के कारण सदैव सम्पूर्ण विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है।

कश्मीर एक अहिन्दी भाषी राज्य है जिसके कारण वहाँ का कश्मीरी पहली जुबान में कह देता है कि क्या आप हिन्दुस्तानी हैं। पुरानी पीढ़ी का कश्मीरी प्रत्येक भारतीय को कश्मीर से अलग समझता है। आज के समय में थोड़ी बहुत हिन्दी प्रत्येक कश्मीरी जानता और समझता है। हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य किसी भी भाषा से कश्मीरी प्रायः अछूते ही है। कश्मीर की सांस्कृतिक ख्याति उतनी ही समृद्ध है, जितनी उसकी प्राकृतिक सुषमा।

कश्यप ऋषि से सम्बद्ध होने के कारण जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य स्वर्गिक आभा से युक्त है, वहीं आत्मा की भी सरस अभिव्यक्ति है। रूप लावण्य के साथ-साथ आत्मा के उन्नयन का मधुर समन्वय हमें इस पुण्य धरती पर प्राचीनकाल से ही प्रेरणा प्रदान करने के साथ-साथ हमारी संस्कृति तथा साहित्य में चिरनवीनता का पुट बनाये रखकर ऐसी अनुपम अद्वितीय कृति का सृजन करता है कि जिस पर गौरवान्ति हुए बिना नहीं रहा जा सकता।[१७]

कश्मीर की वितस्ता नदी नाग-संस्कृति की वाहिनी है जो कि शिव तथा पार्वती का सूक्ष्म रूप धारण करके कश्मीर की समृद्धि को बढ़ाती है। इस नदी के गर्भ में असख्ंय इतिहास गुप्त रूप से पड़े है। इसी के तट पर कश्मीर के लोकजीवन की अनेक संस्कृतियाँ प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय संस्कृति में नदियों की पवित्रता का विशेष महत्व था और उनकी पवित्रता सर्वमान्य थी।

ऋग्वेद के "नदीसूक्त" में पवित्र नदियों की महिमा का विशुद्ध वर्णन हुआ है। ऋग्वेद के साथ महाभारत में भी गंगा यमुना के साथ वितस्ता का भी वर्णन मिलता है। वितस्ता नदी अपनी प्राचीनता तथा पवित्रता के लिए भारतवर्ष में जानी जाती है। "नीलमत" पुराण में ६० नदियों के वर्णन में सर्वप्रथम वितस्ता नदी का वर्णन आया है तथा नीलनाग की पुत्री होने के कारण यह नीलजा नाम से भी विख्यात है। इसकी चर्चा कल्हण ने भी किया है-

उद्यद्वैतस्तनिःस्यन्दण्ड कुण्डातपत्रिणा।
यत सर्वनागाधीशेन नीलेनपरिपाल्यते।।[१८]

नीलमत पुराण में वर्णन आता है कि ऋषि कश्यप की प्रार्थना को स्वीकार करके भगवान शिव ने पार्वती को वितस्ता नदी का रूप धारण कर प्रवाहित होने का आदेश दिया।[१९]

नीलनाग से निकलने वाली दूधगंगा श्रीनगर के नीचे वितस्ता में मिलती है। नीलनाग से निकला छोटा सा झरना अनन्तनाग के समीप अनेक नदियों से मिलता है। आगे चलकर लेदरी तथा हिमानी नदी भी इससे मिलती है। इसमें किश्तियाँ तथा नौका आदि चलने लगती है।

कश्मीर में आवागमन हेतु यही जलमार्ग सर्वसुलभ साधक रहा है। इसी कारण इसके तट पर नगर तथा तीर्थ बसाये गये। इसी के समीप अशोक द्वारा बनवाया गया विजयेश्वर तीर्थ आजकल ब्रयजबोर नाम से जाना जाता है।[२०]

आगे चलकर वितस्ता अवन्तिपुर के पास से निकलती है उस समय के मन्दिरों के भग्नावशेष आज भी जम्मू-श्रीनगर मार्ग पर देखने हेतु सुरक्षित है। राजा अवन्तिवर्मन ने अपने शासनकाल में इसकी स्वच्छता हेतु ऊँचे-ऊँचे सेतु बनवाये थे। यहाँ से ६ मील नीचे ललितपुर नाम का उपनगर है। कश्मीर में सिन्धु को गंगा और वितस्ता को यमुना के नाम से कहा गया है।

गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुनातथा।।[२१]

कश्मीर में इन दोनों नदियों का संगम पवित्र माना जाता है। आज भी यहाँ

श्राद्ध, तर्पण अस्थि विसर्जन आदि किये जाते हैं। संगम के तट पर विष्णु स्वामी तथा वैन्यस्वामी के मन्दिर थे। कल्हण ने वर्णन किया है कि सुरय ने यहाँ श्रद्धषिकेश स्वामी मन्दिर तथा सुन्दरी भवन का निर्माण कराया था।[२२]

वितस्ता के तट पर बने तीर्थस्थानों, मन्दिरों से यह अनुमान लगता है कि कश्मीर वर्णन वास्तव में पृथ्वी का स्वर्ग था। कश्मीर का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था, जिसे तीर्थ न कहा जा सके:-

तिलांशोऽपि न यत्रास्ति पृथव्यास्तीर्थैवहिष्कृतेः।[२३]

कालक्रम के प्रभाव से आज कश्मीर वह कश्मीर नहीं रहा, वे तीर्थ स्थान भी नहीं रहे। वे तोड़ फोड़ दिये गये। आज जो शेष हैं उनमें से अधिकांश बन्द पड़े रहते हैं। खुले मन्दिर सेना की देखरेख में हैं कश्मीर की पूर्व संस्कृति और आज की संस्कृति में जमीन आसमान का अन्तर है। आज कश्मीर के अधिकांश लोग मुस्लिम धर्मानुयायी हो गये, शेष हिन्दू धर्मावलम्बी आतंकवाद के डर से घाटी छोड़कर अन्य स्थानों पर चले गये। इस समय कश्मीर में जहाँ भी ब्राह्मण राज्य शासन के कर्मचारी या पदाधिकारी है, उनका आचार-विचार खान-पान इस्लाम से मिलता-जुलता है।

यहाँ ब्राह्मण शिवरात्रि में आज भी बकरे की बलि चढ़ाते हैं तथा उसे खाते भी है। वर्तमान समय में कश्मीर की नवीन प्रचलित संस्कृति का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार से है-कश्मीर में चाय की सबसे भिन्न प्रथा है। कश्मीरी चाय कों "काशिर" चाय, आसाम चाय और नुनुचाय कहा जाता है। यह सुबह की नामाज के बाद सभी पीते हैं। इसमें नमक और खाने का सोडा डाला जाता है। इसका रंग नारंगी होता है। इसे "नमकीन चाय" कहते है। एक अन्य मुगल चाय भी है जिसे "कहवा" कहा जाता है।

कश्मीर का मुख्य भोजन मांस और चावल है। इसका मुख्य कारण ठण्डा प्रदेश होना है। कश्मीर का "बाजवान" विश्व में प्रसिद्ध है। यहाँ मुख्यतः कश्मीरी भेड़े तथा बकरे का सेवन अधिक होता है। इसके अतिरिक्त मुर्गा, मुर्गी, गाय, बैल, मछली, खरगोश, कबूतर, बत्तख, हंस आदि भी खाया जाता है। मांस के साथ सब्जियाँ भी प्रयोग में लायी जाती है, जिसमें गांठ गोभी विशेष है, जो हर मौसम में उपलब्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त पालक, फूलगोभी, टमाटर, गाजर, मूली, शलजम, प्याज, आदि सब्जियों का उपयोग किया जाता है। यहाँ दालों में "राजमा" विशेष रूप से खाया जाता है। इसके अतिरिक्त मूंग, मसूर, छोला, चना, मटर, मशरूम आदि भी भोज्य पदार्थों में प्रयुक्त होता है।

कश्मीर की वेशभूषा अरब देशों से मिलती-जुलती है जो कि भारत के अन्य राज्यों से बिल्कुल भिन्न है। महिलायें सलवार सूट के ऊपर बुरका (काला पोशाक) पहनती है। मुँह के ऊपर भी बुरका होता है। पुरुष पठानी सूट तथा सिर पर टोपी पहनते है। सभी दाढ़ी रखते हैं। कश्मीर में कांगड़ी का प्रचलन बहुत प्रचीन है यह झीलों से उठाने वाली घास (सिवार) से बनायी जाती है। बीच में मिट्टी का कुण्ड होता है जिसमें आग जलती है। इसमें आग लगाने के लिए चिनार के पत्तों का कोयला डाला जाता है। कांगड़ी कश्मीर की लोककला का सुन्दर नमूना है। डल झील की सिवार घास से चटाइयाँ, टोकरियाँ कुर्सियाँ आदि वस्तुएँ बनायी जाती है, जो सुन्दर तथा कश्मीर की कला का सुन्दरतम रूप हैं। शाल, कम्बल, फिरन के गले आदि पर चाँदी के धागे से बने फूल बार्डर आदि कश्मीरी कला के नमूने हैं। बारीक सूक्ष्मकला पाण्डुलिपियों पर भी देखने को मिलती हैं।

कश्मीर की प्राचीनकला का एक सुन्दर नमूना चरखा है। इससे लोइयां बनायी जाती है। यहाँ महिलाओं का शृंगार तथा आभूषण कानों में लम्बे लटकते कुण्डल, नथनी, सिर पर दुपट्टा आदि है। केश सज्जा के भी कई नमूने देखते को मिलते हैं। घुंघरू वाली खड़ाऊ को भी विवाह के समय दिया जाता है। सर्दियों में ठण्ड से बचाव हेतु तम्बाकू का अधिक सेवन होता है। इसे हुक्के के रूप में भी पीते हैं। नशवार वृद्ध स्त्री पुरुष सभी सूंघते हैं।

कश्मीर में मकान बहुत ही शानदार आलीशान बनाये जाते हैं। अधिकांश मकान दो मंजिला होते हैं लकड़ी का प्रयोग अधिक होता है। इसमें चीड़ तथा देवदार की लकड़ी से खिड़कियाँ, दरवाजे तथा सीढ़ियाँ बनायी जाती है। घास पुआल तथा ईट पत्थर के मकान भी देखने को मिलते हैं। यहाँ घरों में पलंग का प्रयोग कम होता है। बर्फ से बचाव के लिए छत टीन की होती है। ये लोग जमीन पर टिककर बैठना पसन्द करते हैं!

कश्मीर में प्राचीन संस्कृति के परिचायक तांगे हैं जो अभी भी दिखायी पड़ती है । घाटी के जीवन में मांझियों का जीवन सबसे अलग हैं। डूंग/किश्ती ही इनके जीवन का सहारा है। छोटी-छोटी नावों पर घर बनाकर हाउसबोट का भी आनन्द मिलता है। कश्मीर के ग्रामीण क्षेत्र दो भागों में बंटे हैं, कामराज तथा मराज। कामराज के लिए काम करना चाहिए तथा मराज में उसका उपभोग करना चाहिए।

कश्मीर में लोकगीत गाने की प्रथा प्रचलित है। महिलायें उच्च स्वर से गाती है। लोकगीत गाते समय ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे वेदपाठी ब्राह्मण यजुर्वेद का पाठ

कर रहा हो। ये लोकगीत धार्मिक कार्यक्रमों, त्यौहारों तथा हज करते समय गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बालक/बालिकाओं के जन्मोत्सव तथा अन्य सभी संस्कारों पर गाये जाते हैं। जन्मोत्सव संस्कार को कश्मीर में सोन्दर कहते हैं। यहाँ बालक को मुसलमान बनाने हेतु खतना संस्कार किया जाता है।

कश्मीरी पण्डितों में यज्ञोपवीत संस्कार जो कि प्राचीनकाल से चला आ रहा है, उसे बड़े धूमधाम से वैदिक पद्धति से मनाया जाता है। यहाँ विवाह के अवसर पर **'मेंहदी रात'** महत्वपूर्ण होती है, इसमें दूल्हा-दुल्हन के हाथ में मेंहदी लगायी जाती है। विवाह के प्रत्येक अवसर पर लोकगीत गाया जाता है।

कश्मीर में शैव धर्म का प्रचार-प्रसार था। इसी के आधार पर शैव दर्शन का भी विकास हुआ। शैव धर्म उतना ही प्राचीन धर्म है, जितना परम शिव का स्वरूप। इसका सीधा सम्बन्ध भगवान शिव से होने के कारण है। भारतीय संस्कृति में इसकी गणना वैदिक काल से होती है। उपनिषद् तथा पुराणों में भी शैव धर्म की चर्चा की गयी है। शैव धर्म की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए **मोहजोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन** नामक पुस्तक में **सर जॉन मार्शल** ने लिखा है कि शैव धर्म का इतिहास ताम्र तथा पाषाण युग से भी प्राचीन है। इस प्रकार यह संसार का सबसे प्राचीन धर्म माना गया है।[२४]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन कश्मीर का दर्शन माना जाता है। इसे शैव दर्शन तथा त्रिक दर्शन नाम से भी जाना जाता है। कश्मीर का क्षेत्र होने के कारण काश्मीर शैव दर्शन भी कहा जाता है। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार शैव धर्म का प्रचार कश्मीर में सम्राट अशोक से पूर्व था और आगे चलकर विभिन्न राजाओं के संरक्षण में यह पुष्पित और पल्लवित हुआ। आज इस समय अद्वैत शैव दर्शन का प्रचार कश्मीर में है जो कि प्राचीन काल में पाशुपत शैव धर्म पर आधारित था। अभिनवगुप्त ने तंत्रालोक में इसका विस्तृत वर्णन किया।

(ग) संस्कृत-साहित्य और कश्मीर

कश्मीर सदियों से विद्या का केन्द्र रहा है। कश्मीर संस्कृत वाङ्मय के अनेक उद्भट विद्वानों की जन्मस्थली तथा कर्मस्थली रहा है। जिसके कारण कश्मीर को भारत का सिरमौर कहा जाता है, लेकिन आज आतंकवाद जैसी घोर विभीषिका के कारण देश में जो भयाक्रान्त की स्थिति है उससे विशेष रूप से कश्मीर क्षेत्र प्रभावित है। कश्मीर जो कि धरती का स्वर्ग माना जाता रहा है जिसके

कारण कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा तथा वहाँ के विद्वानों के ज्ञान का प्रकाश रहा है। इन दोनों ने मिलकर कश्मीर के बाह्य तथा आन्तरिक कलेवर को सौन्दर्य से परिपूर्ण कर दिया।

संस्कृत साहित्य के बहुत से विद्वान् कश्मीर क्षेत्र से सम्बन्धित है, लेकिन उन पर कार्य बहुत कम हुआ है। इसका मुख्य कारण इस क्षेत्र-विशेष की परिस्थिति हो सकती है जिसके कारण वहाँ के विद्वानों की रचनायें प्रकाश में नहीं आ पा रही है, जिसके कारण आज ज्ञान का वह प्रकाश लुप्तप्राय सा हो रहा है। कश्मीर क्षेत्र की ज्ञान की उस धारा से पुनः इस विश्व को जोड़ना ग्रन्थ का एक लक्ष्य है।

संस्कृत साहित्य और कश्मीर यह बिन्दु विद्वानों में विचार-विमर्श का विषय रहता है। इस क्षेत्र मे बहुत गम्भीर कार्य हुआ है और हो रहा है। वर्तमान समय के कुछ विद्वानों का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जिन्होंने कश्मीर के प्राप्त तथा अप्राप्त दोनों ही प्रकार के साहित्य पर अपनी लेखनी उठायी है। इनमें अभिनवगुप्त शोध संस्थान, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ के संस्थापक प्रो० कान्तीचन्द्र पाण्डेय, पी० वी० काणे, एस० सी० बनर्जी, के० एस० नागराजन, प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी आदि विद्वान् प्रमुख हैं।

प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने 'संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास' नामक अपनी पुस्तक में प्राचीन कवियों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि प्रकृति के रमणीय अंचल में बसा हुआ कश्मीर देश की सांस्कृतिक गतिविधियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है। कश्मीर विशेष रूप से ज्ञान विज्ञान के संवर्धन तथा संरक्षण का केन्द्र रहा है। प्राचीन कवियों चिन्तकों तथा दार्शनिकों द्वारा कश्मीर को विद्या का केन्द्र कहा गया है। राजा अवन्तिवर्मन, ललितादित्य तथ हर्षवर्द्धन ने कश्मीर में कला और साहित्य को बढ़ावा देते हुए कश्मीर का मान बढ़ाया। काव्यशास्त्र तथा शैवदर्शन को कश्मीर का अद्वितीय योगदान मिला। कश्मीर में वामन, रुद्रट, रूद्र , आनन्दवर्द्धन, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, रूय्यक जैसे संस्कृत के अप्रतिम काव्यशास्त्री उत्पन्न हुए। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिन्तकों की श्रेष्ठ परम्परा में दण्डी और पंडितराज जगन्नाथ जैसे कुछ आचार्यो को छोड़कर शेष कश्मीर में ही स्थित है।

काश्मीरशैवदर्शन में शिव तथा शक्ति की सत्ता को एक माना गया है। अर्द्धनारीश्वर शिव शक्ति का सामरस्य है जो कि अभेद दृष्टि का प्रतिपादक है। इस

दर्शन की सांस्कृतिक तथा सामाजिक उपादेयता यह है कि सभी भेद-दृष्टि को समाप्त करना तथा अभेद-दृष्टि को व्यापक करना इससे देश में शान्ति हो सकेगी, विश्व में शान्ति होगी।

इस प्रकार शैव दर्शन की परम्परा इसी धरती पर उत्पन्न हुई और अनवरत विकास को प्राप्त हुई। वसुगुप्त, सोमानन्द, जयरथ, उत्पल, राजानक रूय्यक, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, कल्लट, सुभट, जयरथ, भट्टवामदेव जैसे विद्वान् चिन्तकों ने कश्मीर की भूमि पर जिस विचार को जन्म दिया, वह चिन्तन तथा तत्त्वंदर्शन आज भारतीय संस्कृति के साथ-साथ विश्व संस्कृति की धरोहर है। बौद्ध तथा जैन दर्शन के आचार्य भी यहाँ हुए। ह्वेनसांग भी कश्मीर में कुछ वर्षो तक रहा। गुणाढ्य की बृहत्कथा के दो रूपान्तर कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी का निर्माण यही हुआ। प्राकृत का सुप्रसिद्ध काव्य सेतुबन्ध की रचना प्रवरसेन द्वारा कश्मीर में रह कर की गयी। विक्रमांक देवचरित महाकाव्य में महाकवि विल्हण ने कश्मीर को ज्ञान और कला-सौन्दर्य का अनुपम उदाहरण माना है और अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में कहा है-

सहोदरा कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।।[२४]

अर्थात् काव्य/कविता का सौन्दर्य केसर और कुङ्कुम का सौन्दर्य सहोदर भाव में है। प्राकृतिक सुषमा के साथ-साथ ज्ञान के सौन्दर्य में भी कश्मीर शीर्षस्थ रहा है। काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के चिन्तन की धारा भी कश्मीर से ही निकली । ऋषि पिंगल नाट्यशास्त्र तथा छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य रहे। इन्हीं कश्पय ऋषि के नाम पर कश्मीर को काश्यपी भी कहा जाता है। काव्यादर्श की हृदयङ्म टीका में काव्यशास्त्र के आचार्यो की सूची में इनकी गणना की गयी है। नाट्यशास्त्र के टीकाकारों व्याख्याकारों की सूची में बहुत से आचार्य हैं, जिनका सम्बन्ध कश्मीर की पावन तथा सुन्दर धरती से है। जैसे-भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, उद्भट, वामन, आनन्दवर्धन, क्षेमेन्द्र, रूद्रट, मम्मट, रूय्यक, जयरथ इत्यादि।

कश्मीर की यह पावन तथा अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरने वाली धरती आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उपलब्धियों के गरिमा के कारण प्राचीन काल से लेकर इस युग तक आज भी कवियों की कल्पना और इतिहासकारों की लेखनी का विषय बनती रहती है।

बौद्ध साहित्य तथा बौद्ध दर्शन की स्थापना में कश्मीर का विशेष योगदान रहा है। बौद्धों का सर्वाधिक साहित्य कश्मीर में ही लिखा गया। इसके साथ ही पूरे एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार का श्रेय कश्मीर को ही जाता है। यहाँ से बौद्धों ने **'सर्वास्तिवाद'** को भारतवर्ष में प्रचलित किया। इसके बाद पूरे देश में उसको मान्यता प्राप्त हुई। इसके माध्यम से ही हीनयान का प्रचार पूरे एशिया में हुआ।

इसके अतिरिक्त बौद्धों के अन्य मतों का विस्तार भी इसी भूमि से हुआ तथा बौद्ध आचार्य बोधिक द्वारा लिखित बौद्धग्रन्थ **'तत्त्वसंग्रह'** भी कश्मीर में ही है। कश्मीर में लिखा दूसरा बौद्ध साहित्य तत्त्वसिद्धिशास्त्र प्राप्त होता है जो २५३ ई० में आचार्य हरिवर्मन द्वारा रचित है। इसकी मूल पोथी चीन में सुरक्षित है।

कश्मीरी विद्वानों तथा भिक्षुओं के नाम की पाण्डुलिपियाँ चीन तथा तिब्बत आदि देशों में भी प्राप्त होती है। कश्मीर के संस्कृत बौद्ध साहित्य में दो प्राचीन तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, इनमें प्रथम है-**कप्फिनाभ्युदय** तथा द्वितीय ग्रन्थ **बोधिसत्त्ववदान कल्पलता** है। पहला ग्रन्थ राजा अवन्तिमवर्मन के समय के (८५५-८८३) आचार्य शिवस्वामी द्वारा रचित है, जिनकी चर्चा इतिहासकार कवि कल्हण ने भी अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी में करते हुए कहा है कि आचार्य शिवस्वामी राजा अवन्तिवर्मन के शासनकाल के चार प्रसिद्धि प्राप्त कवियों में से एक थे।[२५]

कवि ने भगवान बुद्ध के इस उपदेश को अपनी काव्य कौशल से संजोकर बौद्ध धर्म तथा हिन्दू-धर्म का बहुत ही सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

धर्मेश्रद्धासम्मतिः सत्यसारे दाने वीर्यं सम्प्रदानं दयायाम्।
क्षान्तौ क्षोभः प्रेमपुण्ये च येषां मुक्तास्ते गृहस्थाश्रमेऽपि।। [२६]

अर्थात् जिनकी धर्म में श्रद्धा है सत्य में बुद्धि है, जो दान देने में अग्रणी है, क्षमा करेन के लिए उत्सुक रहते हैं, जिन्हें क्षान्ति में क्षोभ और पुण्य करने में रूचि होती है, वे लोग गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी मुक्त हो जाते हैं।

इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन १९३७ में पं० गौरीशंकर द्वारा किया गया। इसकी पाण्डुलिपियाँ जो कि उड़िया, तेलगू, देवनागरी लिपि में आज भी सुरक्षित है। इसका दूसरा प्रकाशन १९९० में जर्मन विद्वान् प्रो० माईकल हान ने टोक्यों जापान से किया। कश्मीर का दूसरा प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ **बोधिसत्त्वादान कल्पलता** है। इसके रचयिता कश्मीर के प्रतिष्ठित विद्वान् क्षेमेन्द्र है। यह भगवान बुद्ध के

पूर्वजन्म तथा वर्तमान जीवन की घटनाओं का काव्यात्मक संग्रह है। यह बौद्ध काव्य ग्रन्थ है जो अवदान साहित्य पर आधारित है। क्षेमेन्द्र बहुआयामी लेखक थे। उन्होंने और बौद्ध साहित्य लिखे, लेकिन वह प्राप्त नहीं है। दशावतारचरित में उन्होंने भगवान बुद्ध को विष्णु के १० अवतारों में से एक बताया है।

इसके बाद भी अनेक बौद्ध ग्रन्थों की रचना होती रही। आठवीं शताब्दी में कवि सर्वज्ञमित्र ने कुछ स्तोत्र साहित्य की रचना की, जिनमें स्रग्धरा स्तोत्र साहित्य प्रमुख रहा। इसमें देवी तारा की स्तुति की गयी है। इस प्रकार इन बौद्ध ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि कश्मीर क्षेत्र का बौद्ध साहित्य तथा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान रहा है।

इतिहास लेखन में कश्मीरी विद्वानों को ख्याति प्राप्त है। इतिहासकारों में कश्मीरी पण्डित कल्हण तथा उनकी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति राजतरंगिणी का कोई परिचय देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यह एक ख्यातिलब्ध ग्रन्थ है। कल्हण से पूर्व नीलमुनि द्वारा विरचित नीलमत पुराण प्राप्त होता है। इसका समय छठीं से आठवीं सदी ई० का है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो कश्मीर का प्राचीन इतिहास उसकी संस्कृति तथा धर्मादि विषयों की जानकारी प्रदान करता है।

कश्मीर के इतिहासकारों में कल्हण का स्थान द्वितीय है, लेकिन कल्हण की **राजतरंगिणी** को जो ऐतिहासिक ग्रन्थों में ख्याति मिली है, वह विश्व प्रसिद्ध तथा अद्वितीय है। कल्हण ने सन् ११४८-५० में राजतरंगिणी की रचना की। कश्मीर के इतिहास में १२वीं शताब्दी का समय बहुत की दुःखद अव्यवस्थित, उथल-पुथल तथा गृहयुद्ध से आक्रान्त था। कल्हण की राजतरंगिणी कश्मीर के राजनैतिक ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथा भौगोलिक स्थितियों, परिस्थितियों को तथ्यपरक जानने समझने का एक अद्वितीय स्रोत है। पश्चिमी विद्वानों ने भी यह स्वीकार कर लिया कि भारत का साहित्य चिन्तनपरक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों से भी ओतप्रोत है।

संस्कृत साहित्य के विकास में कश्मीर के राजाओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है। कश्मीर के काव्य शास्त्रियों में भट्टोद्भट का नाम शीर्षस्थ है। इन्होंने **काव्यालंकारसारसंग्रह** नामक ग्रन्थ की रचना की। अलंकारों के विवेचन के सम्बन्ध में भट्टोद्भट की अपनी कुछ मौलिक उद्भावनायें है। इन्होंने पुनरूक्तवदाभास, काव्यलिंग, छेकानुप्रास, दृष्टान्त और संकर इन पाँच अलंकारों की स्थापना की।

इन्होंने उत्प्रेक्षा उपमा, रूपक तथा यमक अलंकारों को दण्डी के समान उत्प्रेक्षा के अन्तर्गत समायोजित नहीं किया है, बल्कि इनकी स्वतंत्र सत्ता बतायी है।

कश्मीर के अलंकार शास्त्र के आचार्यों में वामन का महत्वपूर्ण स्थान है। वामनाचार्य रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं। ये राजा जयादित्य के सभापति थे, ऐसा कल्हण के राजतरंगिणी में उल्लेख मिलता है।

मनोरथः शंखदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा।
वभुवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्चमन्त्रिणः।।[२७]

वामन का यह अलंकार ग्रन्थ सूत्र शैली में है। इसके बाद रुद्रट भी साहित्य शास्त्र में ख्यातिलब्ध आचार्य रहे। आचार्य रुद्रट के अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ का नाम काव्यालंकार है। यह ग्रन्थ आर्या छन्द में रचित है। आचार्य रुद्रट ने वैज्ञानिक ढंग से अलंकारों का वर्गीकरण किया है। श्लेषादि चार अलंकार को अलंकारों का विभाजक तत्त्व माना है और सभी अलंकारों को चार भागों में विभाजित किया है। **आचार्य वामन** ने **मत, साम्य, पिहित** और **भाव** नामक चार नवीन अलंकारों की कल्पना की है।

आचार्य रुद्रट के बाद ध्वनि सम्प्रदाय की स्थापना करने वाले आचार्य **आनन्दवर्धन** का नाम आता है। आपने साहित्यशास्त्र में अपना अलग स्थान बनाया। आनन्दवर्धन राजा अवन्तिवर्मन के समकालीन थे। इनका **ध्वन्यालोक** नामक ग्रन्थ महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनकी दो अन्य रचनाएँ भी है। विषमबाणलीला, अर्जुनचरित्र,

आचार्य अभिनवगुप्त का नाम कश्मीरी साहित्याचार्यों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने साहित्य और दर्शन पर बराबर लेखन कार्य किया है। इनकी ४१ रचनाएँ प्राप्त होती है, जिसमें से ३ साहित्य से जुड़ी हुई है तथा शेष शैवदर्शन की रचनाएँ है। आनन्दवर्धन के **ध्वन्यालोक** ग्रन्थ पर लोचन नाम की टीका प्राप्त है। इस टीका में आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्तों का अभिनवगुप्त ने खण्डन किया है। दूसरा ग्रन्थ **अभिनवभारती** है, जो कि भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र की टीका है। जिसमें इन्होंने नाट्यशास्त्र की सरल, विस्तृत और समुचित व्याख्या कर नाट्यशास्त्र को नया स्वरूप प्रदान किया है।

अभिनवगुप्त के बाद आचार्य मुकुलभट्ट का नाम आता है। यह भी कश्मीरी विद्वान् थे। ये मीमांसक थे। इनका व्याकरण-दर्शन और साहित्यशास्त्र पर पूर्ण

अधिकार था। मुकुलभट्ट उद्भट के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज के गुरु थे। इनका एकमात्र ग्रन्थ **अभिधावृत्तिमात्रिका** है। यह ग्रन्थ कारिका तथा वृत्ति में लिखा गया है। यह ध्वनि सिद्धान्त तथा व्यंजना सिद्धान्त का विरोधी ग्रन्थ है।

दसवीं शताब्दी में भट्टनायक नामक आचार्य प्रसिद्ध रहे, इनका एकमात्र ग्रन्थ **हृदयदर्पण** है, जो अप्राप्य है। भट्टनायक ध्वनिविरोधी आचार्य हैं। इन्होंने ध्वन्यालोक के सिद्धान्तों का खण्डन किया और अपने सिद्धान्त की स्थापना की। अभिनवगुप्त ने आगे चलकर इनके मतों का भी खण्डन किया है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य कुन्तक का साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इनका एकमात्र ग्रन्थ **वक्रोक्तिजीवित** प्राप्त है। यह अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के तीन भाग है–कारिका, वृत्ति और उदाहरण। कुन्तक अभिधावादी आचार्य है। ये लक्ष्य और व्यंग्य का भी अन्तर्भाव वाच्य में ही कर देते है।

इनके बाद आचार्य महिमभट्ट हैं, जो कि ध्वनि विरोधी आचार्य हैं। कश्मीरी विद्वानों की श्रेणी में इनका भी नाम आता है। इनका एकमात्र ग्रन्थ **व्यक्तिविवेक** है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय ध्वनि का अन्तर्भाव अनुमान में करना हैं, जिसका कि उल्लेख उन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में ही कर दिया है-

अनुमानेऽतरर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम्।। [२८]

व्यक्तिविवेक तीन विमर्शों में विभाजित है। तीसरे विमर्श में ध्वनि के ४० उदाहरणों का अनुमान में अन्तर्भाव किया गया है, यही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।

इस प्रकार आनन्दवर्धन ने ध्वनि सम्प्रदाय, आचार्य वामन ने रीति सम्प्रदाय तथा आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति सम्प्रदाय की स्थापना की। इसके बाद आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य सम्प्रदाय की स्थापना की। इनका ग्रन्थ **औचित्यविचारचर्चा** अलंकार-शास्त्र से सम्बन्धित है।

आचार्य मम्मट साहित्य-शास्त्र के सम्राट माने जाते हैं। ये मूलतः कश्मीरी है जो कि इनके नाम से स्पष्ट है। इनके जन्म का कोई प्रमाण नहीं मिला है। आचार्य भीमसेन के अनुसार मम्मट कश्मीरवासी जैयट के पुत्र है, इसका उल्लेख उन्होंने काव्यप्रकाश की टीका में किया है। इनका एकमात्र ग्रन्थ **काव्यप्रकाश** साहित्य-शास्त्र का शिरोमणि ग्रन्थ है। काव्यप्रकाश की साहित्य जगत में जितनी प्रशंसा की जाय, उतना कम ही है।

मम्मट के बाद ११वीं शताब्दी में आचार्य रूय्यक का नाम आता है। इन्होने **काव्यप्रकाश** पर टीका लिखी है। कश्मीरी राजाओं ने इन्हें **राजानक** की उपाधि से सम्मानित किया है। **अलंकारसर्वस्व** इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में रसध्वनि, वक्रोक्ति, रीति आदि सभी सम्प्रदायों का विवेन प्राप्त है। इसके अतिरिक्त सहृदयलीला तथा व्यक्तिविवेचक टीका नामक दो ग्रन्थ और है । कश्मीरी विद्वानों में अपनी अद्वितीय प्रतिभा के कारण संस्कृत कवियों में आचार्य क्षेमेद्र, आचार्य विल्हण तथा कल्हण का नाम प्रथम श्रेणी में आता है।

आचार्य विल्हण वैदर्भी रीति के प्रबल समर्थक थे। उनकी प्रथम कृति **विक्रमांकदेवचरित** प्राप्त है। इनमें उनकी मौलिकता तथा नवीनता का दर्शन होता है। कल्हण ने संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक ग्रन्थ **राजतरंगिणी** को लिखकर कश्मीर के संस्कृत-साहित्य में अपना सराहनीय योगदान दिया। इस प्रकार कवियों, अलंकारशास्त्रियों की लम्बी परम्परा का कश्मीर की पवित्र भूमि में प्रभाव रहा।

ज्योतिष के क्षेत्र में भी अद्वितीय कार्य कश्मीर भूमि में प्राप्त होता है। आचार्य **भाष्कराचार्य** जो कि गणित और विज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान् रहे हैं, उनका **लीलावती** नामक ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त आर्यभट्ट तथा रत्नकण्ठ आदि आचार्यों की भी रचनाएँ प्राप्त होती है, जो कि विश्वप्रसिद्ध हैं। इस प्रकार ज्योतिष भी कश्मीर की ही देन है। इसके अतिरिक्त कश्मीर क्षेत्र में अनेक प्रकार के स्तोत्र काव्यों छोटे-छोटे धर्मशास्त्र ग्रन्थों, व्रत, उपवास, उत्सव आदि से सम्बन्धित अनेक छोटे ग्रन्थों की रचना पण्डितों ने की और संस्कृत साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया जो कि एक कश्मीर के पण्डितों का मौलिक चिन्तन रहा है।

काश्मीरशैवदर्शन वह दर्शन है जो कि वैदिक धर्म को स्वीकार करते हुए भी अपनी आगमिक स्वभाव को अक्षुण्ण बनाये रखता है अथवा इस तरह से भी कहा जा सकता है कि जो अपने आगमिक चिन्तन धारा के साथ वैदिक विचार और परम्परा की भी रक्षा करता रहा है।

शैवागम की इस अद्वैतवादी विचारधारा का विकास भारतवर्ष के कश्मीर क्षेत्र में ही हुआ और इस दर्शन के विद्वान् आचार्य भी इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रहे तथा वहीं के निवासी रहे। इसी कारण शैवावागम की इस अद्वैतवादी विचारधारा

को कश्मीर से बाहर देश-विदेश में काश्मीरशैवदर्शन के ही नाम से जाना गया।

दर्शन की इस विचारधारा ने इसी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त किया, जिसका उल्लेख अपने **काश्मीर शैविज्म** नामक ग्रन्थ में जे० जी० चटर्जी जी ने किया है। कोई भी दार्शनिक सम्प्रदाय तभी पूर्ण माना जाता है, जब उसका व्यावहारिक पक्ष भी उतना ही सशक्त हो, जितना सशक्त उसका सिद्धान्त पक्ष है। सिद्धान्तों की चर्चा बिना व्यवहारिकता के मात्र कोरी कल्पना है। यही कारण है कि प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा या सम्प्रदाय किसी न किसी व्यावहारिक मार्ग का उपदेश अवश्य देता है। ये व्यावहारिक मार्ग है। **साधना, उपासना** तथा **भक्ति,** जिसे **ज्ञान, भक्ति** तथा **कर्म** भी कहा जाता है।

काश्मीरशैवदर्शन के सिद्धान्त का पूर्ण परिचय हमें **प्रत्यभिज्ञाशास्त्र** में देखने को मिलता है तथा व्यावहारिक पक्ष साधना पद्धति **स्पन्दशास्त्र** में वर्णित है। इस प्रकार अपने सिद्धान्त तथा व्यवहार पक्ष के द्वारा काश्मीरशैवदर्शन अपने ज्ञान के प्रकाश से इस पृथिवी के मनुष्यों को आलोकित करता चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति जिस प्रकार निगम का आश्रय लेती है उसी प्रकार आगम का भी अवलम्बन करती है। इसी कारण भारतीय संस्कृति को निगमामूल कहा गया है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय आगम तथा निगम के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "भारतीय संस्कृति के यथार्थ बोध के लिए वेद का ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही आगम का भी। दोनों के सुन्दर समन्वय पर ही भारतीय संस्कृति आधारित है।"

निगम शब्द वेद का वाचक है जिसका अर्थ ज्ञान होता है। आगम शब्द, तन्त्र का पर्यायवाची कहा गया है। आगम शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र ने लिखा है-

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति अभ्युदय निःश्रेयसोपायाः सो आगमः।

अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् उन्नति और कल्याण के मार्गों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र आगम है।

तन्त्र शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ है-तन् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय के योग से तन्त्र शब्द निष्पन्न होता है—

तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्।[२९]

इस प्रकार तन्त्र आगम-शास्त्र, सिद्धान्त विज्ञान तथा अनुष्ठान आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। कहा गया है कि सतयुग में श्रुति, त्रेता में स्मृति, द्वापर में पुराण तथा कलियुग में आगम की प्रधानता है-

कृते श्रुत्युक्त आचारः त्रेतायां स्मृति सम्भव।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः।[३०]

इस दर्शन का सीधा सम्बन्ध शिव से है जो कि अनादि और नित्य है। इस दृष्टि से शैव धर्म और दर्शन उतना ही प्राचीन है जितना सत्-चित्-आनन्द स्वरूप भगवान शिव। वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति में शिव की उपासना होती है। शुक्ल यजुर्वेद शतरूद्रीय, रुद्राष्टाध्यायी और इसकी पद्धति के अनुसार परमशिव की पूजा शैवधर्म की प्राचीनता को स्पष्ट करता है।

आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र इन तीन रूपों में काश्मीर-शैव-दर्शन के वाङ्मय को विभाजित किया गया है। कश्मीर शैवागमों की संख्या ६४ है जो गुरुशिष्य परम्परा से चला आ रहा है।[३१] शैवागमों में मालिनीविजयोत्तर तन्त्र, स्वच्छन्द-तन्त्र, मृगेन्द्रतन्त्र, विज्ञान-भैरव, नेत्रतन्त्र, परात्रिंशिका और शिवसूत्र प्रमुख है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण एवं प्राचीन मालिनीविजयोत्तरतन्त्र है जो सम्पूर्ण त्रिकदर्शन का मूलाधार है।

रुद्रयामलतन्त्र का भाग विज्ञान भैरव तथा परात्रिंशिका को माना गया है। कामिक आगम के भेद नेत्रतन्त्र तथा मृगेन्द्रतन्त्र है जो द्वैत सम्प्रदाय से सम्बन्धित है।

मालिनीविजयोत्तर तन्त्र

इस तन्त्र का मूलाधार सिद्धयोगेश्वरी तन्त्र है। इस ग्रन्थ का शैवतान्त्रिक सम्प्रदायों में महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ण विज्ञान के क्रम विचार से इसके दो नाम प्रसिद्ध है-पूर्वमालिनी उत्तरमालिनी। वर्णो की स्वाभाविक अभिव्यक्ति तथा ध्वनि विचार से संस्कृत वर्णमाला के शुद्ध वैज्ञानिक उदय क्रम का नाम पूर्वमालिनी है। जब इस दृष्टि से विचार न करके केवल स्वरों और व्यंजनों को क्रम-रहित तथा अस्त-व्यस्त रूप से लिया जाता है तब उसे उत्तरमालिनी कहा जाता है। इसमें वर्णो के क्रम में **न** आदि में और **फ** अन्त में होता है। अतः उत्तरमालिनी को **नादिफान्ता** कहा जाता है। देवी और परमेश्वर का संवादरूप यह ग्रन्थ है।[३२]

साधकों के शरीर में मन्त्रशक्ति द्वारा दिव्य प्राण संक्रमित करने में मालिनी सर्वाधिक उपादेय है। तन्त्रालोक में इसकी व्याख्या इस प्रकार से है-

श्री मालिनीविजयोत्तरे इति नादिफान्तया मालिन्या विजयेन सर्वोत्कर्षेण उत्तरति सर्वस्रोतोभ्यः प्लवते, सारभूतवात्सर्वशास्त्राणाम्। [३३]

इस ग्रन्थ में तेईस अधिकार है। इसमें आगम के महत्वपूर्ण अंग योग और उसकी क्रियाओं का विस्तृत निरूपण है। उपलब्ध मालिनी विजयोत्तर तन्त्र सिद्धयोगेश्वरी तन्त्र का उत्तरभाग प्रतीत होता है-

शृणु देवि प्रवयामि सिद्धयोगीश्वरीमतम्। [३४]
यन्न कस्यचिदाख्यातं मालिनीविजयोत्तरम्।।

स्वच्छन्दतन्त्र

अद्वैतरूप भैरव तन्त्रों में स्वच्छन्द-तन्त्र मुख्य है। इसकी प्रधानता स्वच्छन्द-तन्त्र के चौथे भाग में वर्णित है-

समुद्धूतभैरवतन्त्रजातमध्ये प्रधानभूतं दिव्यं सर्वभोगाय वर्गप्रदं तन्त्रं, तत्त्वया गूहनीयं ज्येठाशक्तिपातमेव प्रकाश्यं नेतरेषाम्। [३५]

यह शास्त्र शैव-दीक्षा का सर्वाधिक प्रामाणिक शास्त्र है। उपासना और कर्मकाण्ड इसका वर्ण्य विषय है। काश्मीरशैवदर्शन के स्वातन्त्र्य स्वभाव भैरव अर्थात् शिव का पर्यायवाची ही स्वच्छन्द नाम है । इसकी उत्पत्ति भी देवी और भैरव के दार्शनिक संवाद से हुई।

मुदितं भैरवं दृष्टा देवीवचनमब्रवीत्। [३६]

आचार्य क्षेमराज ने इस पुस्तक को खोजकर उसकी अशुद्धियों का निराकरण किया है।[३७] साथ ही पूर्ववर्ती टीकाकार भुल्लक का भी अनेक बार उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ पर आचार्य क्षेमराज ने अपनी **उद्योत** टीका की भी रचना की है।[३८] इस ग्रन्थ में सभी प्रकार के भोग और मोक्ष का निरूपण करने के साथ ही पौराणिक शैली में अनेक स्थानों पर आख्यानों जैसे-प्रजापति, दक्ष, स्वयाम्भुवमनु आदि का तथा पर्वतों, नदियों, द्वीपों आदि का भी वर्णन मिलता है।

स्वच्छन्दतन्त्र में १५ अध्याय हैं। इसमें अधिवास, दीक्षा, अभिषेक, मन्त्रोद्धार, मुद्रा आदि विषयों का सविस्तार विवेचन किया गया है। यह अद्वैततन्त्रों में प्रधान शास्त्र है। डॉ० के० सी० पाण्डेय ने इसका समय ईसा पू० द्वितीय शताब्दी स्वीकार किया है। इसे शिव के दक्षिण मुख से उत्पन्न कहा गया है। अतः

साक्ष्यों के आधार पर यह तन्त्र अन्य तन्त्रों से अधिक अर्वाचीन माना जाता है क्योंकि इसमें पाशुपत दर्शन, कामशास्त्र, त्रिक़शास्त्र, लकुलीश तथा व्यास वाल्मीकि आदि के भी वर्णन मिलते है।

विज्ञान-भैरव

रुद्रयामल का अन्तिम भाग विज्ञान-भैरव को माना जाता है। इसका उद्भव भी भैरव और देवी के संवाद रूप में हुआ है। इसे रुद्रयामल का सार कहा गया है। इसमें परमतत्त्व का निरूपण किया गया है तथा उसे प्राप्त करने के उपायों का वर्णन ११२ धाराओं के रूप में किया गया है। विज्ञान भैरव पर आनन्दभट्ट ने कौमुदी टीका लिखी है और भी अनेक टीकाएँ लिखी गयी है। इसकी २४ वीं कारिका तक आचार्य क्षेमराज ने विवृत्ति टीका लिखी है। विज्ञान-भैरव को सर्वशक्ति प्रभेदों का हृदय कहा गया है।

> **रुद्रयामलतन्त्रस्य सारमद्यावधारितम्।**
> **सर्वशक्ति प्रेभेदानां हृदयं ज्ञातमद्य च।।**[३९]

स्वायम्भुवतन्त्र

इस तन्त्र का प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका है।

नेत्रतन्त्र

काश्मीर-शैवागम के साधना पक्ष से सम्बन्ध रखने वाला यह तन्त्र है। इस ग्रन्थ का भी अवतरण भैरव तथा भैरवी के संवाद रूप में ही हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रथम पटल में भैरव-भैरवी की जिज्ञासा के समाधान हेतु अपने अभेद स्वरूप को प्रकट करता है। इस ग्रन्थ में मोक्ष, यजनविधि, दीक्षा, अभिषेक विधि, साधनविद्या आदि का विस्तार से विवेचन किया है। आचार्य क्षेमराज ने इसके अद्वैतमूलक रहस्य के उद्घाटन हेतु उद्योग वृत्ति की रचना की।[४०]

साधक को महान भय से छुटकारा दिलाते हुए उसे मुक्ति तक ले जाने के कारण इस तन्त्र का नाम नेत्रतन्त्र है।

> **नयते मोक्षभावं तु तारयेन्महतो भयात्।**
> **नयनाच्च तथा त्राणान्नेत्रमित्यभिधीयते।।**[४१]

रुद्रयामल तन्त्र

विज्ञानभैरव, भवानीनामसहस्र, परात्रिंशिका आदि इसी रुद्रयामल तन्त्र के खण्ड हैं। इस तन्त्र की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि अभी तक अप्राप्य है।

शिवसूत्र

भगवान शिव ही शिवसूत्रों के रचनाकार माने जाते हैं। शिवसूत्र वार्तिक में उल्लिखित है कि-

शिवः सूत्रमरीरचत्। सूत्रमाह महेश्वरः।[४२]

वसुगुप्त को स्वयं भगवान शिव ने ही स्वप्न में शिवसूत्रों का ज्ञान कराया। इस बात का उल्लेख वसुगुप्त के शिष्य भट्टकल्लट ने अपने स्पन्दसर्वस्व ग्रन्थ में क्रिया है।[४३]

शिवसूत्रविमर्शिनी ग्रन्थ में आचार्य क्षेमराज ने उल्लेख किया है कि वसुगुप्त को शिवसूत्र महादेव पर्वत पर शिला पर उट्टंकित मिले थे।[४४]

भट्टकल्लट का समय अभिनवगुप्त और क्षेमराज से पूर्व माना जाता है। अतः उसके कथन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है, क्योंकि आत्मसाक्षात्कार कर लेने वाले शैवसिद्धों के लिए स्वप्न में शिव से ज्ञान प्राप्त करना कोई विशेष आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार की चर्चा **सोमानन्द**[४५] तथा **महेश्वरानन्द**[४६] ने भी की है। इसके साथ ही आत्मगी-ज्ञान को प्राप्त अर्थात् प्रत्यभिज्ञा प्राप्त शैव योग तत्त्वतः शिवस्वरूप ही होता है। अतः उसके विषय में स्वप्न में होने वाली अन्तः प्रेरणा या ज्ञान का रहना अनुचित भी नहीं है और निराधार भी नहीं है। शिवसूत्रों में प्रमुख व्याख्याकारों में अचार्य भास्कर, क्षेमराज तथा वरदाज है। भास्काराचार्य ने शिवसूत्रों के रहस्योद्घाटन हेतु ३९० श्लोको में वार्तिक की रचना की थी।[४७]

ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में आचार्य अभिनवगुप्त ने भास्कराचार्य का उल्लेख किया है अतः यह अभिनवगुप्त से पूर्ववर्ती आचार्य माने गये है जिसका समय ९५५ ई० के आस-पास ठहराया जाता है।[४८]

आचार्य क्षेमराज ने विमर्शिनी टीका के माध्यम से शिवसूत्रों के अर्थ को विस्तार प्रदान किया। आचार्य वरदराज ने भी वार्तिक द्वारा शिवूसत्रों की व्याख्या की। आचार्य कल्लट ने भी तत्त्वार्थ चिन्तामणि नामक टीका के द्वारा शिवसूत्रों के अन्तिम खण्ड की व्याख्या प्रस्तुत की थी।[४९]

स्पन्दशास्त्र

यह शास्त्र काश्मीरशैवदर्शन के साधना पक्ष से सम्बन्धित है इसके कारिकाओं की भाषा अत्यन्त सरल है। इसमें तीन निःष्पन्दों (अध्याय) में निबद्ध

इक्यावन कारिकायें है। प्रथम अध्याय की पच्चीस कारिकाओं में स्पन्द के स्वरूप का निरूपण किया गया है। द्वितीय अध्याय में सात कारिकाओं द्वारा सहज विद्योदय स्पन्द का विवेचन किया गया है तथा तृतीय अध्याय के उन्नीस कारिकाओं द्वारा विभूतिस्पन्द का निरूपण किया गया है। आचार्य क्षेमराज ने इस इक्यावन कारिकाओं में निबद्ध सिद्धान्तों को ही **स्पन्दशास्त्र** संज्ञा से अभिहित किया है[५०] इस शास्त्र में दार्शनिक शैली का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें केवल आगम की तरह सिद्धान्त का निरूपण किया गया है।

स्पन्दकारिका

इस ग्रन्थ के रचयिता के विषय में काश्मीरशैवदर्शन के आचार्यों में थोड़ा मतभेद रहा है। आचार्य क्षेमराज के स्पन्दनिर्णय के अनुसार वसुगुप्त को ही स्पन्दकारिका ग्रन्थ का रचनाकार माना जाता है[५१]

स्पन्दशास्त्र का नामकरण भी कारण सहित है। परमेश्वर की स्वातन्त्र्यशक्ति सम्पूर्ण सर्ग संहार के विलास को दर्पणनगर के समान स्वभित्ति पर स्वयं ही दिखाती हुई किञ्चित् चञ्चलात्मक होने के कारण **स्पन्द** कही गयी है। यह **स्पन्द** या **विमर्श** परमशिव का नित्य स्वभाव है और इस स्पन्दस्वरूप आत्मभाव में विश्रान्ति ही जीवनमुक्ति है। यह स्पन्द-तत्त्व सभी प्राणियों में स्थित है[५२] सभी मनुष्य अपने भीतर अनुस्यूत इस शिव-तत्त्व की अनुभूति करें। इसी साधना या उपासना का प्रतिपादन करने के कारण वसुगुप्त के इस शास्त्र को **स्पनदशास्त्र** कहा गया है।[५३]

प्रत्यभिज्ञाशास्त्र

प्रत्यभिज्ञाशास्त्र काश्मीरशैवदर्शन का दार्शनिक शास्त्र है। इस ग्रन्थ के द्वारा ही सर्वप्रथम अद्वैत शैवमत का दार्शनिक शैली में विवेचन हुआ है।

आचार्य सोमानन्द ने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ शिवदृष्टि में इस दार्शनिक शैली का आविष्कार किया है। **शिवदृष्टि** ग्रन्थ का **दृष्टि** शब्द दर्शन का द्योतक है। तन्त्रालोव के टीकाकार आचार्य जयरथ ने इसी दर्शनशास्त्र की विशिष्ट शैली का प्रतिपादन किया जिसमें पूर्वपक्ष का खण्डन तथा शास्त्रानुमोदित सबल तर्कों के आधार पर स्वपक्ष की स्थापना की जाती है। इसका कर्ता और व्याख्याता आचार्य सोमानन्द को माना है।

अपने **शिवदृष्टि** ग्रन्थ में जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना आचार्य सोमानन्द ने की, उसी की विस्तारपूर्वक व्याख्या प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में की गया है।

स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में सिद्धान्त रूप से तत्त्वतः कोई भेद तथा विरोध नहीं है

सन्दर्भ

१. राजतरंगीणी-कल्हण, श्लोक १/१०
२. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/२६,२७
३. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/३८
४. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/७२
५. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/३९
६. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/३८
७. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/३८
८. उद्धृत्-कश्मीर इतिहास और संस्कृति द्वारा-कुसुम भूरिया दत्ता,
९. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/१०४
१०. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/१७२
११. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक ८/१६१५
१२. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक ८/१९५१
१३. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक ८/१९६१
१४. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक ८/२५४७
१५. राजतरंगिणी-जोनराज, श्लोक ११,१२
१६. उद्धृत कश्मीर इतिहास और संस्कृति-द्वारा डॉ० कुसुम भूरिया
१७. उद्धृत-कश्मीर इतिहास और संस्कृति, पृष्ठ २५३, द्वारा-कुसुम भूरिया,
१८. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/२८
१९. नीलमत पुराण-प्रो० वेदकुमारी घई-भूमिका से
२०. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/१०५
२१. नीलमत पुराण, श्लोक ६१०
२२. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक ५/९९, १००
२३. राजतरंगिणी-कल्हण, श्लोक १/१६
२४. राजतरांगिणी विल्हण
२५. राजतरंगिणी ५/३४)
२६. कप्फिनाभ्युदय महाकाव्य २०/३२
२७. राजतरंगिणी ४/४९७
२८. व्यक्तिविवेक१/१
२९. भारतीय दर्शन आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० ४३२

३०. भारतीय दर्शन-आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० ४३५
३१. शिवदृष्टि आ० ७/११२
३२. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र, अधिकार १/१-१३
३३. तन्त्रालोक, भाग-१, पृ० ३५
३४. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र १/१३
३५. स्वच्छन्द तन्त्र, भाग ४, पृ० २६
३६. वही, पटल १/४-७
३७. वहीं, भाग-६ १४/पृ० १२०
३८. वही, प्रारम्भ
३९. विज्ञानभैरव, श्लोक-१६२
४०. नेत्रतन्त्र, भाग-२, उपसंहार पृ० ३४३
४१. वही भाग-२, अधिकार २२/१२
४२. शिवसूत्रवार्तिक (भास्करार्य), पृ०५
४३. स्पन्दवृत्ति, कल्लट, उपसंहार, पृ० ४०
४४. शिवसूत्रविमर्शिनी, पृ० २-३, स्पन्दनिर्णय, पृ०२
४५. शिवदृष्टि अ० ७/१०६
४६. महार्थमञ्जरी, प० १९१
४७. शिवसूत्रवार्तिक, पृ० ८८।
४८. ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-१, पृ० १०।
४९. शिवसूत्रवार्तिक, भूमिका। पृ० ३
५०. स्पन्दनिर्णय पृ०२
५१. स्पन्दनिर्णय ४/२।
५२. स्पन्दनिर्णय, पृ० ३०
५३. वही पृ० ३०।

द्वितीय अध्याय

काव्यशास्त्र के आचार्य और उनका योगदान

संस्कृत वाङ्मय को कश्मीर का उल्लेखनीय योगदान प्राप्त हुआ है। अधिकांश संस्कृत-साहित्य की रचना कश्मीर में ही हुई है। मुख्य रूप से काव्यशास्त्र तथा शैवदर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना यही हुई। भामह, वामन, उद्भट्, रुद्रट, आनन्दवर्धन, भट्टनाटयक, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, कल्हण, रूय्यक आदि अनेक काव्यशास्त्रियों ने कश्मीर में जन्म लिया और अपने वैदुष्य तथा सारस्वत साधना से भारत के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत किया। कश्मीर क्षेत्र से जुड़े हुए आचर्यों का काव्यशास्त्र में आज तक जो योगदान रहा है, उसका विवेचन प्रस्तुत है–

१. भामह

भामह का समय ५००-७०० ई० के मध्य का है। उनका अभी तक मात्र एक ही ग्रन्थ प्राप्त है जिसका नाम है **काव्यालंकार**। भामह के कश्मीरी होने में मतभेद है। कुछ इतिहासकार इन्हें कश्मीरी मानते हैं तो कुछ इन्हें बौद्ध कहते हैं। **'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास'** के लेखक पी० वी० काणे ने इन्हें अनेक प्रमाणों के आधार पर वैदिक कहा है। आचार्य भामह ने काव्य रचना में कवित्त्व शक्ति तथा पण्डित्य दोनों को आधार बताया है। यह उनका मौलिक चिन्तन है। भामह तार्किक आधार पर अपने अभिप्राय को व्यक्त करते हैं। इसी सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने काव्यालंकार की रचन। की। आचार्य भामह कृत काव्यालंकार ग्रन्थ एक गम्भीर तथा उत्कृष्ट रचना है। ग्रन्थ रचना में आचार्य भामह की कुछ अपनी मौलिक मान्यताएँ है। भामह का मानना है कि काव्य में गूढ़ शब्दों की योजना होने से विद्वानों का कोई उपकार नहीं होता। अत: इससे बचना चाहिए। काव्य निर्माण एक वैचारिक प्रक्रिया है। तत्काल घटित होने वाली नहीं है। काव्य में शुद्धता को विशेष स्थान देते है। काव्यालंकार ग्रन्थ में छ: परिच्छेद है।

प्रथम परिच्छेद इसमें काव्य का प्रयोजन, उत्तम कवि की प्रशंसा, निम्न कवि की निन्दा, काव्य का लक्षण, प्रस्तुत क़रते हुए विभिन्न आधारों पर काव्य

का विभाजन किया गया है, जिनमें गद्य तथा पद्य दोनों है। भाषा के आधार पर तथा विषयवस्तु आदि के आधार पर काव्य का विभाजन किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद में गुण, अलंकारादि का विवेचन किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में भी प्रेम, रसवत्, पर्यायोक्त, समाहित, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव आदि का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में काव्य के दोषों का वर्णन किया गया है।

पंचम परिच्छेद में प्रतिज्ञा हीन, हेतुहीन, दृटान्तहीन का विवेचन करते हुए न्याय के प्रभाव का वर्णन किया गया है तथा भामह द्वारा यह भी निर्देशित किया गया है कि कवि को विविध शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए।

षष्ठ परिच्छेद में अपाणिनीय प्रयोगों का निर्देश करते हुए भामह यह कहना चाहते हैं कि काव्य की रचना करने वाले विद्वानों को व्याकरण का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

अतः काव्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भामह मौलिक विचारक थे। इनके बाद के आचार्यों दण्डी, उद्भट, वामनादि पर भामह का प्रभाव दिखाई पड़ता है तथा उद्धरण स्वरूप भामह की कारिकाएँ बाद के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में भी उद्धृत की है। **'भामह-विवरण'** के नाम से आचार्य उद्भट ने काव्यालंकार पर टीका ग्रन्थ लिखा है।

उद्भट

भट्टोद्भट कश्मीर के निवासी थे। ये राजा जयापीड की राजसभा के सभापति थे। इनका प्रतिदिन का वेतन एक लाख दीनार था। कल्हण की राजतरंगिणी में इसका वर्णन हुआ-

विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
भट्टोभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तु सभापतिः।। [१]

उद्भट का समय ८वीं तथा नवीं शताब्दी के आसपास का माना जाता है। इनका **काव्यालंकारसारसंग्रह** महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह छः वर्गो में विभक्त है। इसमें ४१ अलंकारों की विवेचना की गयी है। आचार्य उद्भट ने कुछ नये अलंकारों की उद्भावना की है, जिनका निरूपण भामह ने नहीं किया था। इनमें पुनरुक्तावदाभास, संकर, छेकानुप्रास आदि। है। इसके अतिरिक्त उद्भट ने यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षावयव आदि अलंकारों का विवेचन नहीं किया है। अलंकार

शास्त्र पर उद्भट का अत्यधिक प्रभाव है, बाद के आचार्यों ने भी उनके मतों का उल्लेख किया है।

वामन

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन को सातवीं तथा आठवीं शताब्दी का माना जाता है। वामन कश्मीर के राजा जयापीड के राजकवि थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ **काव्यालंकारसूत्र** है। इस ग्रन्थ में ५ अधिकरण तथा १२ अध्याय है। अपने इस ग्रन्थ में इन्होंने उत्तररामचरित, हर्षचरित, अमरुशतक, रघुवशं, कुमारसंभव, मृच्छकटिक तथा किरातार्जुनीयम् आदि ग्रन्थों के उदाहरण प्रस्तुत किये है।

आचार्य वामन का **काव्यालंकारसूत्र** यह ग्रन्थ अलंकार ग्रन्थ है तथा यह सूत्रशैली में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में काव्यप्रयोजन, परीक्षा विवेचन, वाक्य-वाक्यार्थदोष का निरूपण, गुणलंकारभेदनिरूपण, शब्द गुण का निरूपण, अर्थगुण का निरूपण, शब्दालंकार, उपमा निरूपण, शब्दशुद्धि आदि विषयों का विस्तार से विवेचन किया है।

आचार्य वामन राजा जयादित्य के सभापति थे, ऐसा कल्हण के राजतरंगिणी में उल्लेख मिलता है-

मनोरथः शंखदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा।
वभुवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्चमन्त्रिणः।।[२]

वामन ने **रीतिरात्मा काव्यस्य** कहकर रीति को काव्य की आत्मा के रूप में उपस्थापित किया है। रीति के सम्बन्ध में कहते हैं कि विशिष्ट पदरचना ही रीति है।

विशिष्टा पदरचना रीतिः[३]

विशेष पद की परिभाषा करते हुए लिखते हैं।- **विशेषोगुणात्मा**[४] अर्थात् गुण ही विशेष है। वामन ने रीति के तीन भेद किये हैं, वैदर्भी, गौडी तथा पांचाली। वैदर्भी में सभी गुण रहते है, ये शब्द के गुण है। वैदर्भी की प्रशंसा करते हुए आचार्य वामन कहते हैं कि वैदभी रीति दोषों से रहित, गुणों से युक्त तथा वीणा के स्वर के समान कर्णप्रिय होती है।

अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता।
विपञ्चीस्वरसौभाग्या वैदर्भीरीतिरिष्यते।।[५]

वामन ने गौडी तथा पांचाली रीति के स्वरूप का भी निरूपण किया है, किन्तु विशेष रूप से उन्हें वैदर्भी ग्राह्य है। वे कहते हैं अर्थगुण सम्पत्ति वैदर्भी में रहने के कारण ही यह रीति वैदर्भी नाम से जानी जाती है।[६]

जिसमें ओजस् और कान्ति गुण विद्यामान रहते हैं, वह गौडीरीति है।

ओजः कान्तिमती गौडीया।[७]

माधुर्य तथा सुकुमार गुणों से युक्त रीति का नाम पांचाली है।

माधुर्यसौकुमार्योपन्ना पाञ्चाली[८]

इसके अतिरिक्त वामन ने गुणों तथा अलंकारों का भेद निरूपित करते हुए सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत किया है।

रुद्रटः

काश्मीर के साहित्यशास्त्र में आचार्य रुद्रट का नाम ख्यातिलब्ध है। इनका **काव्यालंकार** नाम अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ मिलता है। यह ग्रन्थ आर्याछन्द में रचित है। रुद्रट ने वैज्ञानिक ढंग से अलंकारों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। दसवीं शताब्दी के बाद के आचार्यों ने अपने ग्रन्थ में उदाहरण स्वरूप आचार्यो रुद्रट के काव्यालंकार को उद्घृत् किया है। काव्यालंकार के अतिरिक्त रुद्रट द्वारा **शृंगारतिलक** नामक रचना प्राप्त होती है। इसमें इसका नाम रुद्रभट्ट आया है। कुछ विद्वानों का मानना है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति है। काव्यालंकार ग्रन्थ कारिका तथा उदाहरण में लिखा गया है। इसमें १६ अध्याय है। इस पर **नेमिसाधु** द्वारा रचित टीका काव्यालंकार की टीका है, इसका प्रकाशन कई स्थानों से हुआ है।

काव्यालंकार ग्रन्थ वामन द्वारा गौरी गणेश के मंगलाचरण से आरम्भ होता है। तत्पश्चात् काव्य के प्रयोजन, काव्य के हेतु की चर्चा हुयी है। दूसरे अध्याय में शब्दों के भेद का निर्देश करते हुए रीति, वृत्ति, वाक्य के लक्षण, वाक्य के भेद, शब्दालंकारों का निरूपण किया गया है।

तृतीय अध्याय में यमक अलंकार का निरूपण हुआ है। चतुर्थ अध्याय में श्लेषालंकार का विवेचन हुआ है। पाँचवें अध्याय में आचार्य वामन ने चित्रकाव्य के विषय में बताया है। छठां अध्याय काव्य के दोषों से सम्बन्धित है। सातवें अध्याय में अर्थ का लक्षण बताते हुए वाचक शब्दों का भेद प्रस्तुत किया गया है। साथ ही वास्तव, औपम्य, अतिशय, श्लेष आदि अलंकारों का वर्णन प्राप्त है। नवें अध्याय में अतिशयात्मक अलंकार का वर्णन प्राप्त है। दसवें अध्याय में श्लेषात्मक अलंकारों का विवेचन किया गया है। ग्यारहवें अध्याय में अर्थ दोषों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही नायक-नायिका भेद तथा शृंगार रसादि का

निरूपण अध्याय १२ से १५ में किया गया है। शान्त रस को प्रेयान् रस कहकर सम्बोधित किया है।

स्नेहप्रकृतिः प्रेयान।[९]

आचार्य मम्मट रुद्रट से बहुत प्रभावित थे। इन्होंने रुद्रट की बहुत सी मान्यताओं को स्वीकार किया है।

आनन्दवर्धन

आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य रहे है। आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा रचित **ध्वन्यालोक** संस्कृत काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। काव्यशास्त्र में ध्वन्यालोक का वही स्थान है जो व्याकरण शास्त्र में पाणिनी की अष्ठाध्यायी का है और वेदान्त में शाङ्करभाष्य का। आनन्दवर्धन राजा अवन्तिवर्मन के राज्यकाल के समय के माने जाते हैं। कल्हण ने अपनी **राजतरंगिणी** में उद्धृत किया है कि मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मन के शासनकाल में विद्यमान थे।[१०]

इस प्रकार इन प्रमाणों के आधार पर आचार्य आनन्दवर्धन का समय नवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है।

आानन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक की रचना कारिका तथा वृत्ति में की है। यह ग्रन्थ चार उद्योत में विभाजित है। साहित्यशास्त्र में ध्वन्यालोक के लिए अन्य कई नामों का प्रयोग मिलता है, जैसे-काव्यालोक, सहृदयालोक, सहृदयाहृदयालोक अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक ग्रन्थ के लिए सहृदयालोक तथा काव्यालोक इन दो नामों का प्रयोग किया है।

ध्वन्यालोक के अतिरिक्त विषमबाणलीला, अर्जुनचरित तथा देवीशत नामक ग्रन्थ आनन्दवर्धन के मिलते हैं। देवीशतक में देवी की स्तुति प्रस्तुत की गयी है। यह चित्रकाव्य का सुन्दर उदाहरण है। यद्यपि आनन्दवर्धन चित्रकाव्य की निन्दा करते हैं, फिर भी उन्होंने चित्रकाव्य की रचना करके विद्वानों के बीच अपनी काव्य-रचना की निपुणता को स्थापित किया।

आनन्दवर्धन एक उत्कृष्ट कोटि के काव्यशास्त्र के ज्ञाता, प्रौढ दार्शनिक, तार्किक तथा श्रेष्ठ कवि थे। संस्कृत के प्राकृत भाषा पर भी इनका अधिकार था। विषमबाणलीला प्राकृत भाषा में लिखित ग्रन्थ है।

ध्वन्यालोक पर अभिनवगुप्त की **लोचनटीका** प्राप्त है। यह सभी टीकाओं में महत्वपूर्ण टीका है। अभिनवगुप्त एक महान् दार्शनिक और लेखक के रूप में

प्रसिद्ध है। ध्वन्यालोक पर लोचनटीका लिखकर उन्होंने साहित्य जगत को एक शक्ति प्रदान की, अन्यथा ध्वन्यालोक के रहस्य को समझ पाना आसान नहीं होता। आर्चाय आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ध्वनि को काव्य की आत्मा कहा है।

काव्यस्यात्मा ध्वनिः।

मुकुलभट्ट

मुकुलभट्ट कल्लट के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम प्रतिहारेन्दुराज था। **अभिधावृत्तिमातृका** मुकुलभट्ट की रचना है। यह कारिकावृत्ति में लिखी गयी है। इसमें १५ कारिकाएँ है। मुकुलभट्ट व्याकरण, तर्कशास्त्र, मीमांसा तथा साहित्य शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे।

इन्होनें अपने ग्रन्थ वाक्यपदीय, कुमारिलभट्ट, महाभाष्य तथा ध्वनि आदि का उल्लेख किया है। इससे यह अनुमान लगता है कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल नवीं शताब्दीं के प्रथम चरण में रहा होगा। मम्मट ने भी अपेन ग्रन्थ में अभिधा तथा लक्षणा का विवेचन करते समय मुकुलभट्ट के ग्रन्थ को आधार बनाया है।

भट्टनायक

कश्मीरी आचार्य भट्टनायक का समय ध्वनालोककार आनन्दवर्धन के पश्चात् तथा अभिनवगुप्त के मध्य का माना जाता है। भट्टनायक ने भरतमुनि के **रससूत्र** की व्याख्या की है, जिसका उल्लेख आचार्य मम्मट ने अपने **काव्यप्रकाश** नामक ग्रन्थ के चतुर्थ उल्लास में किया है

> **''न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणी-करणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्वोद्रेकप्रकाशा-नन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायकः।''**[११]

भट्टनायक ने **अभिधा** व्यापार के साथ **भावकत्व** तथा **भोजकत्व** नामक दो और व्यापार माने है। भट्टनायक कें मतानुसार **भावकत्व** से विभावादि का साधारणीकरण होकर **भोजकत्व** नामक व्यापार से रसानुभूति होती है।

भट्टनायक का **हृदयदर्पण** नामक एकमात्र ग्रन्थ है, किन्तु आज यह उपलब्ध नहीं है। भट्टनायक एक ध्वनिविरोधी आचार्य है। इन्होंने ध्वन्यालोक के सिद्धान्तों का खण्डन किया है।

भट्टतौत

भट्टतौत का समय दसवीं शताब्दी है। भट्टतौत अभिनवगुप्त के गुरु थे। इसका उल्लेख अभिनवगुप्त ने अपनी **लोचनटीका** में किया है।

यदुक्तमस्मदुपाध्यायभट्टतौतेन-नायकस्य कवेः श्रोतुःसमानोऽनुभवस्ततः।[१२]

भट्टतौत ने मोक्ष प्रदान कारक होने के कारण शान्त रस को भी माना है। भट्टतौत का एक ही ग्रन्थ प्राप्त है जिसका नाम है **काव्यकौतुक**। इस ग्रन्थ पर अभिनवगुप्त ने **विवरण** नामक टीका लिखी है। **काव्यकौतुक** ग्रन्थ में **काव्यशास्त्र** तथा **नाट्यशास्त्र** इन दोनों ही विषयों का विशद विवेचन करते हुए विशेष रूप से रस पर अधिक प्रकाश डाला गया है।

कुन्तक

कुन्तक नवीं शताब्दी के बाद के आचार्य है। इनका साहित्यशास्त्र में प्रमुख स्थान है। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक के रूप में ख्याति प्राप्त है। **वक्रोक्तिजीवित** इनका एकमात्र ग्रन्थ चार उन्मेषों में लिखा गया है। ग्रन्थ का आरम्भ शिवशक्ति के मंगल श्लोक से होता है।

जगत्त्रितयवैचित्र्यचित्रकर्मविधायिनम्। शिवं शक्तिपरिस्पन्दमात्रोपकरणं नमः।

आचार्य कुन्तक ने काव्य में शब्द की वक्रता तथा अर्थ की वक्रता की स्थिति को लोकोत्तर माना है। वक्रोक्तिजीवित ग्रन्थ के प्रथम उन्मेष में काव्यप्रयोजन, काव्यलक्षण, वक्रोक्ति का स्वरूप, वक्रता के भेद आदि का निरूपण किया है।

आचार्य कुन्तक द्वाराद्वितीय उन्मेष में वर्णविन्यासवक्रता, पर्यायवक्रता, विशेषणवक्रता, उपचारवक्रता, रूढ़िवैचित्र्यवक्रता आदि के विषय में विचार किया गया है।

तृतीय उन्मेष में वक्रता विवेचन के साथ-साथ दीपक, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

चतुर्थ उन्मेष में प्रबन्धवक्रता तथा प्रकरणवक्रता का निरूपण किया गया है।

कुन्तक की दृष्टि में वक्रता काव्य का सर्वस्व है। उन्होंने वक्रोक्ति को ही काव्य का जीवन तथा उसकी आत्मा कहा है। जैसे-प्राण के बिना शरीर व्यर्थ है और स्पन्दन के बिना जीवन, उसी प्रकार वक्रतारूप कवि व्यापार के बिना विद्वानों की उक्ति निष्प्राण हो जाती है-

शरीरं जीवितेनेव स्फुरितेनेव जीवितम्।
विना निर्जीवतां येन वाक्यं याति विपश्चिताम्।।[१३]

अभिनवगुप्त

अभिनवगुप्त काश्मीरशैवदर्शन के आचार्य थे। आनन्दवर्धन के बाद कश्मीरी साहित्याचार्यों में आचार्य अभिनवगुप्त का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। अभिनगुप्त कश्मीर के विद्वानों में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त रहे। अभिनवगुप्त के पूर्वज कन्नौज उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे, किन्तु इनका जन्म कश्मीर में ही हुआ था। आचार्य अभिनवगुप्त का साहित्य और दर्शन पर एक समान अधिकार था। अभी तक इनकी ४१ रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिसमें ३ साहित्य से सम्बन्धित है, शेष सभी शैवदर्शन के ग्रन्थ है।

साहित्यशास्त्र में आपका पहला ग्रन्थ **ध्वन्यालोकलोचन** प्राप्त होता है। यह आनन्दवर्धन के **ध्वन्यालोक** पर लिखी गयी **लोचन** नाम की टीका है। दूसरा ग्रन्थ **अभिनवभारती** है जो कि आचार्य भरतमुनि के **नाट्यशास्त्र** पर लिखी हुयी टीका है। इसमें नाट्यशास्त्र की सरल तथा समुचित विस्तृत व्याख्या की गयी है। तीसरा ग्रन्थ मेघदूत के समान एक दूतकाव्य पर लिखी गयी टीका है जो कि अप्राप्त है। इस प्रकार **लोचन टीका** तथा **अभिनवभारतीय** आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा साहित्यशास्त्र को दी गयी एक अमूल्य भेंट है।

अभिनवगुप्त आजीवन ब्रह्मचारी रहे तथा वह शिव के भक्त थे। शैवदर्शन पर आपके द्वारा तन्त्रालोक, तन्त्रसार, परमार्थसार, वार्तिक, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी आदि ग्रन्थों की रचना की गयी। अभिनवगुप्त का मानना था कि प्रत्यभिज्ञादर्शन का सम्बन्ध केवल मनुष्य मात्र से है, किसी धर्म सम्प्रदाय आदि का उस पर कोई प्रभाव नहीं है।

यस्य कस्यचिज्जन्तोरिति नात्र जात्याद्यपेक्षा
काचित् इति सर्वोपकारित्वमुक्तम्।[१४]

अभिनवगुप्त ने **गीतार्थसंग्रह** नाम से गीता पर भी एक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त भैरवस्तोत्र, परमार्थचर्चा, क्रमस्तोत्र, देवताचक्रस्तोत्र, रहस्यपंचदशिका आदि स्तोत्र ग्रन्थों की भी रचना की।

महिमभट्ट

महिमभट्ट ग्यारहवीं शताब्दी के ध्वनिविरोधी आचार्य रहे हैं। इनका एकमात्र ग्रन्थ **व्यक्तिविवेक** है। इस ग्रन्थ में उन्होंने ध्वनि का अन्तर्भाव अनुमान में किया है, जिसका उल्लेख उन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में ही किया है।

अनुमानेऽन्तर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेकं कुरूते प्रणम्य महिमा परां वाचम्।। [१५]

व्यक्तिविवेक में तीन विमर्श है, प्रथम विमर्श का नाम ध्वनिलक्षणाक्षेप है। द्वितीय विमर्श का नाम शब्दानौचित्यविचार है। इसमें मुख्य रूप से काव्यदोषों को बताते हुए अनौचित्य के भेदों का निरूपण किया गया है।

तृतीय विमर्श में ध्वनि का अनुमान में विभिन्न उदाहरणों द्वारा अन्तर्भाव दिखाया गया है। **तत्त्वोक्तिकोष** नामक महिमभट्ट की एक और रचना है, किन्तु वह उपलब्ध नहीं है।

व्यक्तिविवेकव्याख्यान नामक रूय्यक द्वारा रचित **व्यक्तिविवेक** पर एक टीका है जो केवल द्वितीय विमर्श के मध्य तक ही लिखी गयी है। दूसरी टीका **मधुसूदनीविवृत्ति** है। यह मधुसूदन शास्त्री द्वारा विरचित है।

मम्मट

मम्मट का समय ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य माना जाता है। मम्मट मूलतः कश्मीरी हैं। इनके जन्म का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, किन्तु **काव्यप्रकाश** के टीकाकार भीमसेन के अनुसार मम्मट कश्मीरवासी जैयट के पुत्र थे। मम्मट का एकमात्र ग्रन्थ **काव्यप्रकाश** साहित्यशास्त्र का शिरोमणि ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने मम्मट को साहित्य जगत में जो ख्याति प्रदान की, वह अन्य किसी ग्रन्थ को तथा ग्रन्थकर्ता को नहीं मिल पायी है। आज पूरे विश्व में साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों में अध्ययन, अध्यापन का आधार **काव्यप्रकाश** है।

काव्यप्रकाश में ध्वनि सिद्धान्त और अधिक पुष्ट रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस आधार पर मम्मट को **ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य** कहा जाता है। काव्यप्रकाश की रचना मम्मट ने अकेले नहीं की है, काव्यपकाश को पूरा करने नें किसी अन्य कवि का भी सहयोग है। मम्मट ने परिकर अलंकार तक काव्यप्रकाश की रचना स्वयं की है, उसके आगे **अल्लट** नामक कवि ने इस ग्रन्थ को पूरा किया। इसका उल्लेख काव्यप्रकाश की राजानक आनन्दकृत व्याख्या में हुआ है।

कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः।
प्रबन्धः पूरितोऽशेषो विद्यायाल्लटसूरिणा। [१६]

काव्यप्रकाश तीन भागों है, कारिका, वृत्ति तथा उदाहरण। उदाहरण कवि द्वारा अनेक ग्रन्थों से लिया गया है। काव्यप्रकाश १० उल्लास में लिखा गया है।

प्रथम उल्लास में काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यलक्षण, काव्यभेद आदि का विवेचन है। द्वितीय उल्लास में शब्दार्थ स्वरूप का विवेचन किया गया है। इसके साथ ही अभिहितान्वयवाद, अन्विताभिधानवाद, तथा लक्षणा इत्यादि उसके भेदादि का वर्णन मिलता है। तृतीय उल्लास में आर्थीव्यंजना का विवेचन हुआ है। चतुर्थ उल्लास में ध्वनि तथा उसके भेद, रसस्वरूप, भट्टलोलट, भट्टनायक श्रीशंकुक तथा अभिनवगुप्त द्वारा भरत के रससूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इसके साथ ही रसों का निरूपण तथा ध्वनि के भेदों का भी विवेचन किया गया है।

पंचम उल्लास में गुणीभूव्यंग्य के भेद तथा व्यंजना का विवेचन किया गया है। षष्ठ उल्लास में शब्दार्थचित्र का निरूपण हुआ है। सप्तम उल्लास में काव्य के दोषों का विस्तार से विवेचन किया गया है। अष्टम उल्लास में काव्य गुणों का निरूपण हुआ है। नवम उल्लास में शब्दालंकार तथा दशम उल्लास में अर्थालंकार का विवेचन हुअ है।

काव्यप्रकाश की लगभग अभी तक ७५ टीकाएं लिखी जा चुकी है, जिसमें कश्मीर निवासी आनन्दराजानक के द्वारा **निदर्शन** नामक टीका लिखी गयी है।

रूय्यक

रूय्यक का दूसरा नाम रूचक था। रूय्यक कश्मीर के निवासी थे, इनके पिता का नाम तिलक था। ये **नीलकण्ठचरित** के लेखक मंखक के गुरु थे। मंखक का समय १२वीं शताब्दी है, क्योंकि ये राजा जयसिंह के सभा में विद्यमान थे।

रूय्यक की रचना **अलंकारसर्वस्व** प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त १२ ग्रन्थों की सूचना प्राप्त होती है, जिनमें कुछ ग्रन्थ प्रकाशित है तथा कुछ अप्राप्त है। प्रकाशित तथा प्राप्त ग्रन्थों की सूची में अलंकारसर्वस्व, सहृदयलीला, काव्यप्रकाशसंकेत, साहित्यमीमांसा तथा व्यक्तिविवेकव्याख्यान आदि है।

अलंकारसर्वस्व में अलंकारों का निरूपण किया गया है। यह ग्रन्थ सूत्र, वृत्ति तथा उदाहरण में लिखित है। रूय्यक ने स्वयं दो नये अलंकारों-**विचित्र** तथा **विकल्प** का निरूपण किया है।

अलंकारसर्वस्व पर जयरथ की **अलंकारविमर्शिनी** नामक टीका प्रसिद्ध है।

सन्दर्भ

१. राजतरंगिणी ४/४९५

२. राजतरंगिणी, ४/४९७
३. काव्यालंकारसूत्र १.२.७
४. काव्यालंकारसूत्र (१.२.८
५. काव्यालंकारसूत्र १.२.११ की वृत्ति
६. काव्यलंकारसूत्र १.२.२२।
७. काव्यालंकारसूत्र १.२.१२
८. काव्यालंकारसूत्र १.२.१३
९. काव्यालंकार, १५/१७।
१०. राजतरंगिणी-कल्हण-५/३४।
११. काव्यप्रकाश, मम्मट, चतुर्थ उल्लास
१२. ध्वन्यालोक, लोचन
१३. वक्रोक्ति, १/१७, उद्धृत् संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, प्रो० अमरनाथ पाण्डेय, चौ० सं० भवन, वाराणसी
१४. ई० प्र० वि० भाग २
१५. व्यक्ति० १/१
१६. उद्धृत् संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०१२२, प्रो० अमरनाथ पाण्डेय

तृतीय अध्याय

दर्शन शास्त्र के आचार्य और उनका योगदान

धर्म और दर्शन एक दूसरे पर आधारित है। इनकी उपपत्ति और स्थिति एक दूसरे के बिना सम्भव ही नहीं है। मनुस्मृति कहता है कि जो अध्यात्म जानता है वही धर्म के स्वरूप को जानता है। अध्यात्मबोध के बिना कर्मों का अनुष्ठान व्यर्थ है–

न हि अनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते।

इस प्रकार भारतीय दर्शन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय के आधार पर यह निश्चित हो गया है कि भारत में सहस्रों वर्षो से चिन्तन की धारा अनवरत रूप से आगे बढ़ती रही है और उससे भारत की वीर भूमि सदैव से ही उर्वर रही है।

कदाचित् शैव-धर्म संसार का सबसे प्राचीन धर्म है 'मोहनजोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन' नामक अपनी पुस्तक में सर जान मार्शल ने लिखा है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से यह पता चलता है कि शैव-धर्म का इतिहास ताम्र-पाषाणयुग का अथवा उससे भी पूर्व का है। इस प्रकार यह संसार का अत्यन्त प्राचीन धर्म है।[१]

भारतवर्ष में इसकी तीन धाराएँ या विधाएँ विकसित हुई। प्रथम कर्नाटक का वीर-शैवमत, द्वितीय तमिलनाडु का शैव-सिद्धान्त तथा तृतीय कश्मीर का अद्वैत-शैव-धर्म। कुछ विशेष अन्तर के साथ तीनों में कुछ सामान्य लक्षण भी है।

भारत में दर्शन एक जीवन सरणि है। यह निरर्थक कौतूहल से उत्पन्न बुद्धि विलास की वस्तु कभी भी रहा और न ही केवल बौद्धिक व्यायाम है। इस देश में प्रत्येक दर्शन का धर्म है और प्रत्येक धर्म का एक दार्शनिक आधार है।

कश्मीर के अद्वैत-शैव-दर्शन का भी कुछ ऐसा ही आधार है। वर्षो तक इस दर्शन का एक रहस्यमय सिद्धान्त के रूप में साधक को ज्ञान कराया जाता है जिसके अनुसार वह अपने जीवन को ढालता था और आध्यात्मिक दृष्टि से उसका परीक्षण भी करता था। इसके बाद धीरे-धीरे केवल उसकी उपासना और अनुष्ठान पद्धति ही रह गयी उसके दार्शनिक पक्ष को मनुष्य भूलने लगा। कुछ साधक ही थे जो इसे मौखिक परम्परा द्वारा जानते थे। इस सिद्धान्त को लिखित रूप में

प्रतिष्ठित करने के श्रेय महान चिन्तक तथा दार्शनिक आचार्य वसुगुप्त को जाता है, जिनका समय विद्वानों के मतानुसार ८ वीं तथा नवीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। इन्होने 'शिवसूत्र' ग्रन्थ की रचना की। तब से लेकर अनवरत रूप से कश्मीर में दार्शनिक ग्रन्थों की रचना हो रही, जिससे काश्मीरशैवदर्शन का वाङ्मय बहुत समृद्ध हो गया है। इस दर्शन के अभी बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित भी नहीं हुए है।

काश्मीरशैवदर्शन के प्रायः दार्शनिक कश्मीर के ही निवासी है। अतः कश्मीर से बाहर देश-विदेश में इसे काश्मीरशैवदर्शन के नाम से जाना जाता है।[२]

सर्वदर्शन संग्रह में माधवाचार्य ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से इसका परिचय दिया है। काश्मीरशैवदर्शन का विकास प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त के आधार पर होने के कारण इसका यह नामकरण हुआ। इस दर्शन के नाम से ही उत्पलाचार्य ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका की सूत्ररूप में रचना की। इसमें साधक या मनुष्य को आत्मस्वरूप का बोध हो जाता है। अतः आत्मसाक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्ति का यह सरल मार्ग अपनी विशेषता के कारण ही शैवदर्शन में प्रत्यभिज्ञादर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शिवसूत्रविमर्शिनी ने इस अभेदवादी दार्शनिक सम्प्रदाय को रहस्यात्मक साधना के कारण रहस्य-सम्प्रदाय कहा गया है।

'जीवलोके रहस्य सम्प्रदाया मा विच्छेदि'।[३]

काश्मीरशैवदर्शन का एक नाम कुलागम भी है। आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार कुल तथा त्रिक शब्द पर्यायवाची है। भगवान् शिव का नाम ही शैवदर्शन में कुल है। समस्त भेदों का लय इस कुल में हो जाता है।

तस्य यत्तत् परं प्राप्यं धाम तत् त्रिक संज्ञितम्।
सर्वाविभेदानुच्छेदात् तदेव कुलमुच्यते।।[४]

त्रिक अथवा कुल उसी प्रकार समस्त सृष्टि में व्याप्त रहता है जिस प्रकार शरीर के समस्त अंगों में प्राणतत्त्व व्याप्त रहता है।

तिलों में तेल, पुष्पों में गन्ध, शरीरों में जीवात्मा के समान यह कुल-तत्त्व समस्त शैवागमों में प्रतिष्ठित है-

'पुष्पे गन्धस्तिले तैलं देहे जीवो जलेऽमृम्।
यथा तथैव शास्त्राणां कुलमन्तः प्रतिष्ठितम्।।[५]

काश्मीरशैवदर्शन को त्रिकशास्त्र या त्रिकदर्शन भी कहा जाता है, क्योंकि

सिद्धान्ततन्त्र, नामकतन्त्र तथा मालिनीतन्त्र ये इस दर्शन के मुख्य आगम है, जिनके आधार पर त्रिकदर्शन का विकास हुआ। काश्मीरशैवदर्शन का नाम शिवशास्त्र तथा शिवशासन (तन्त्रालोक, अ० ११/३) भी है।

सिद्धानामकमालिन्याख्यखण्डात्रयात्मकत्वातित्रिविधम्।[६]

यह दर्शन भेद, भेदाभेद तथा अभेद रूप ज्ञान के तीनों प्रकारों की व्याख्या करता है। इसमें पर, अपर तथा परापर नामक तीन 'त्रिक' भी स्वीकार किये गये है। इन तीनों के आधार पर प्रतिष्ठित होने के कारण शैवदर्शन को **त्रिकमत** कहा जाता है।[७]

महार्थमञ्जरी में भी इसे **'त्रिकदर्शन'**[८] के नाम से जाना जाता है। आचार्य सोमानन्द ने इसे 'शैवदर्शन' नाम से प्रतिष्ठित किया है। **'शिवदृष्टि'** की अपनी वृत्ति लिखते समय उत्पलाचार्य ने इसे **'ईश्वराद्वयवाद'** की संज्ञा से अभिहित किया है।[९] स्पन्दसन्दोह ग्रन्थ में आचार्य क्षेमराज ने इसे शिवाद्वय-दर्शन कहा है[१०] त्रिकदर्शन को षड्कर्म विज्ञान तथा षड्धर्मशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है।[११] इस षड्र्धशास्त्र अ आ इ ई उ ऊ में ह्रस्वत्रय ही प्रधान है।[१२] जो चित् इच्छा और ज्ञान कहलाता है। इसी प्रधानता के कारण पाणिनि ने भी इसे अपने प्रथम सूत्र अइउण् के रूप में अष्टाध्यायी में निर्दिष्ट किया है।[१३] आचार्य क्षेमराज ने **'स्पन्दशास्त्र'** नाम से इस दर्शन का विवेचन किया है।[१४] प्रकाशविमर्शात्मक स्वभावरूप परमशिव अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव के कारण स्वयं ही प्रकाशित होता रंहता है। इस कारण इस दर्शन को 'स्वातन्त्र्यवाद' की भी संज्ञा प्राप्त है।[१५]

शैव-दार्शनिक शैवागमों का उद्भव भी वेदों के समान अनादिकाल से ही मानते हैं। इनका भी काल निर्णय नहीं हो सकता है क्योंकि यह भगवान शिव द्वारा उपदिष्ट है। काश्मीरशैवदर्शन के आचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि में शैवशास्त्रों के अविर्भाव का उल्लेख किया है। कलियुग के प्रारम्भ होने पर तत्त्वेत्ता ऋषि सामान्य जनों से दूर दुर्गम स्थानों पर चले गये तब लोग अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुए दुःखी होने लगे। उस समय भगवान शिव जो भूतल पर श्रीकण्ठनाथ के रूप में अवतरित थे, वे लोगों के दुःखों से अपार करूणा से भर गये। तब उन्होंने इस रहस्यमय शास्त्र के पुनः प्रचार के लिए दुर्वासा ऋषि को आदेश दिया। उनके आदेश से दुवार्सामुनि ने त्रयम्बकादित्य नामक मानसपुत्र को उत्पन्न किया और शैवागम का समस्त रहस्य उसे प्रदान कर उसे इस दर्शन का प्रचार करने के लिए नियुक्त किया। **शिवदृष्टि** ग्रन्थ में इस दर्शन के प्रादुर्भाव का वर्णन इसी रूप में प्राप्त है।

दर्शनशास्त्र में काश्मीरशैवदर्शन के आचार्यों का योगदान संक्षेप में इस प्रकार से हैं–

आचार्य वसुगुप्त शैवदर्शन के प्रथम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित है। कश्मीर में राजा अवन्तिवर्मा के समकालीन भट्टकल्लट इनका शिष्य था। जिसके आधार पर वसुगुप्त का समय नवीं शताब्दी का आरम्भ स्वीकार किया है।

शिवसूत्र तथा स्पन्दशास्त्र वसुगुप्त की रचना है। इसमें सूत्रों की संख्या ७७ है, जिसे आणव, शाक्त तथा साम्भव तीन उपायों में विभाजित किया गया है। आचार्य क्षेमराज, वरदराज तथा भाष्कर ने सूत्रों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। स्पन्दशास्त्र पर आचार्य भट्ट कल्लट की स्पन्दसर्वस्य-वृत्ति, रामकण्ठ की स्पन्दविवृत्ति, उत्पलवैष्णव की स्पन्ददीपिका और आचार्य क्षेमराज की स्पन्दसन्दोह तथा स्पन्दनिर्णय वृत्ति प्राप्य है।

शैवदर्शन के विकास में आचार्य वसुगुप्त की अद्वितीय भूमिका है। भट्टकल्लट कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के समकालीन थे। वह एक सिद्ध पुरुष थे। राजतरंगिणी में ऐसा प्रसंग उद्धत् है।

'अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः।
अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन्।।'[१६]

शिवसूत्रों पर आचार्य कल्लट कृत 'मधुवाहिनी' नामक एक अन्य वृत्ति का भी उल्लेख आता है जो कि सम्पूर्ण शिवसूत्रों पर लिखी गयी वृत्ति है जो अप्राप्य है। (**ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शविवृत्ति**) निःसन्देह आचार्य वसुगुप्त कश्मीर के संस्थापक आचार्य थे। 'शिवसूत्र' तथा 'स्पन्दशास्त्र' काश्मीरशैवदर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

सोमानन्द

प्रत्यभिज्ञादर्शन की परम्परा के द्वितीय उत्कृष्ट शैवदर्शन के आचार्य सोमानन्द हैं। इन्होंने अपने जीवनकाल तथा रचनाओं के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं दिया है। बहिः साक्ष्य के आधार पर इनके काल का निर्धारण किया गया है। राजानक रामकण्ठ के काल के द्वारा सोमानन्द का समय बताया जा सकता है। रामकण्ठ अवन्तिवर्मा के समकालीन थे। उसी काल के भट्टकल्लट भी थे। अवन्तिवर्मा का शासनकाल ८५५-८८३ ई० रहा। अतः सोमानन्द का समय भी नवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध या आठवीं शताब्दी का उत्तराद्ध माना जा सकता है।

कल्लट के गुरु वसुगुप्त और रामकण्ठ के गुरु उत्पलदेव थे। उत्पलदेव ने वसुगुप्त के स्पन्दशास्त्र ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[१७] अत: उत्पलदेव वसुगुप्त से छोटे होते हुए भी अवस्था में वसुगुप्त अवश्य बड़े रहे होंगे। सोमानन्द और वस्तुगुप्त के जीवनकाल के सामीप्य को देखकर उनमें शिष्य और गुरु सम्बन्ध की संभावना व्यक्त की गयी है,[१८] लेकिन सोमानन्द ने 'शिवदृष्टि' में अपनी गुरु परम्परा में अपने पिता आनन्द को ही अपना गुरु कहा है। यह वंश परम्परा शैवशास्त्र के आचार्य के अवतार की परम्परा है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रवर्तक आचार्य निर्विवाद रूप से सोमानन्द माने जाते हैं। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' ही प्राप्त है। सोमानन्द के पिता का नाम आनन्द था। सोमनन्दाचार्य ने शिवदृष्टि ग्रन्थ में जिस आधारभूत सिद्धान्त की स्थापना की, वही प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से ख्याति प्राप्त हुआ। आचार्य सोमानन्द प्रत्यभिज्ञा दर्शन के साथ-साथ कुल-क्रमदर्शन के विद्वान् थे।

यद्यपि सोमानन्द ने स्पन्दकारिका तथा शिवसूत्र का उद्धरण अपने किसी भी ग्रन्थ में नहीं दिया, फिर भी ऐसा लगता है कि उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की शैली तथा विषयवस्तु का प्रभाव उन पर था, क्योंकि आचार्य सोमानन्द की 'शिवदृष्टि' तथा वसुगुप्त की 'स्पन्दकारिका' में बहुत साम्य दिखता है। यह साम्यता ही सिद्ध करती है कि सोमानन्द की 'शिवदृष्टि' स्पन्दकारिका से प्रभावित हुई है।,[१९] क्योंकि स्पन्दकारिका तथा शिवसूत्र 'शिवदृष्टि' से पूर्व की रचनायें हैं।

कुछ विद्वानों ने आचार्य सोमानन्द की अनेक रचनाओं का वर्णन किया है ये है-शिवदृष्टि, शिवदृष्टि वार्तिक, परात्रिशिंकाविवृत्ति।

उपर्युक्त सभी रचनाओं में शिवदृष्टि ही महत्वपूर्ण रचना है। इस ग्रन्थ ने न केवल कश्मीर में ही बल्कि कश्मीर से बाहर के क्षेत्रों में भी अद्वैतशैव सिद्धान्त का प्रचार किया है। शिवदृष्टि अनुष्टुप छन्द में लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें सात सौ श्लोक हैं। विषयानुसार सात आह्निक में लिखा गया है।

प्रथमाह्निक में परदशा से लेकर घटपदादि पर्यन्त 'शिवता' स्थिति कैसे और क्यों रहती है इसका निरूपण किया गया है। दूसरे में अद्वैत शब्द की व्याकरण की दृष्टि से विवेचना की गयी है। तीसरे में शाक्तों, द्वैतवादी शैवों तथा पातञ्जल मतानुयायियों के मतों का खण्डन किया गया है, चौथे आह्निक में इस दर्शन के सम्बन्ध में कां जाने वाली शंकाओं का समाधान करते हुए शिवद्वैत स्वरूप का

तार्किक विवेचन किया गया है, सातवें आह्निक का विषय सभी प्राणियों में अनुस्यूत अपनी शिवात्म भाव की अनुभूति का रहस्य और उससे प्राप्त होने वाली आनन्दावस्था है।

आचार्य सोमानन्द को इस ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा तथा इसका ज्ञान स्वप्न में 'शिव' द्वारा प्राप्त हुई था[२०] तथा सोमानन्द ने अपने ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' में स्पष्ट लिखा भी है-

'शिवोदाता शिवो भोक्ता'[२१]

इसके अतिरिक्त रुद्रयामल के एक अंश पर संक्षिप्त वृत्ति लिखी थी, जिसका नाम परात्रिंशिकावृत्ति है जो अप्राप्य है। जिसका उल्लेख उन्होंने ग्रन्थ परात्रिंशिका विवरण में कई बार किया है।

तदुक्तं सोमानन्दपादैः स्वविवृत्तौ।[२२]

महेश्वरानन्द

महेश्वरानन्द माधव के पुत्र थे तथा इनके गुरु का नाम महाप्रकाश था। (**महार्थ मंजरी, पृ० २०२ तथा ४**) महेश्वरानन्द यह नाम इनके गुरु द्वारा दिया गया था। इसके अतिरिक्त गोरक्ष इनका लोक प्रचलित नाम था।

'गोरक्षो लोकधिया देशिकदृष्ट्या महेश्वरानन्दः।
उन्मीलयामि परिमलमन्तर्ग्राह्यं महार्थमञ्जर्याम्।।'[२३]

उन्होंने स्वयं को देवपाणि सम्प्रदाय का बताया है।

श्री देवपाणि सम्प्रदायानुप्रविष्टैरस्माभिरनुसन्धीयते ।[२४]

महेश्वरानन्द ने प्रत्यभिज्ञा मार्ग से ही आत्मज्ञान प्राप्त किया। अपने ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है।

महेश्वरानन्द के अर्विभाव-काल के विषय में यह अनुमान है कि इनका समय सोलहवीं ई० से पूर्व रहा होगा, क्योंकि कश्मीर-काल-परम्परा में साहिब कौल का समय १६२९ ई० निर्धारित है और कश्मीर के वर्तमान कौल यह मानते हैं कि महेश्वरानन्द उनके पूर्वज थे।

महार्थमञ्जरी' महेश्वरानन्द का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त लगभग ग्यारह ग्रन्थों की रचना की है जिसमें केवल महार्थमंजरी तथा उस पर लिखी परिमल टीका ही प्राप्त होती है। शेष ग्रन्थों का संकेतमात्र परिमल में प्राप्त होता

है। आर्य महेश्वरानन्द ने साठ प्राकृत गाथाओं में त्रिकदर्शन के प्रतिपाद्य विषयों का विवेचन किया है। सिद्धयोगिनी के स्वप्न में दर्शन देकर उन्हें इस शैवदर्शन ग्रन्थ रचना की प्रेरणा दी, जिसके परिणामस्वरूप महार्थमंजरी की रचना की। इन प्राकृत गाथाओं की संस्कृत छाया तथा टीका लेखक ने ही की है।[२५] इस ग्रन्थ माध्यम से महेश्वरानन्द ने दर्शन के दुरुह विषय को अलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया है। इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादि अनेक अलंकारों का भी प्रयोग किया है।[२६] महार्थमंजरी के त्रिवेन्द्रम तथा काश्मीर नाम से दो संस्करण प्राप्त होती हैं।

उत्पलदेव

आचार्य उत्पलदेव के पिता का नाम उदयाकर तथा पुत्र का नाम विभ्रमाकर था। उत्पलदेव आचार्य सोमानन्द के शिष्य थे। पद्मानन्द उत्पल के सहपाठी थे।[२७] उत्पलदेव का निवास स्थान गुप्तपुर था जो श्रीनगर में स्थित है।[२८]

'ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकारिका' आचार्य उत्पलदेव की सबसे महत्वपूर्ण रचना है। अभिनवगुप्ताचार्य के मतानुसार यह सोमानन्द के ज्ञान का प्रतिबिम्ब हैं।[२९]

यह रचना छन्दोबद्ध है जिसे सूत्र कहा गया है कश्मीर के शैवदर्शन साहित्य का यह मानदण्ड रूप आधार ग्रन्थ है जिसके कारण काश्मीरशैवदर्शन आज कश्मीर में तथा कश्मीर से बाहर 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के नाम से ख्याति प्राप्त है। इस ग्रन्थ पर आचार्य अभिनवगुप्त ने महत्वपूर्ण टीका लिखी है जिसका नाम 'विमर्शिनी' है।

इस ग्रन्थ में चार अध्याय है जिनके नाम हैं- ज्ञानाधिकार, क्रियाधिकार, आगमाधिकार तथा तत्त्वार्थसंग्रहाधिकार। तत्त्व के अवबोध के लिए काश्मीर शैवदर्शन में ईश्वर प्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ से श्रेष्ठ कोई ग्रन्थ नहीं है। इस ग्रन्थ की शैली तार्किक शैली है तथा इसकी भाषा स्पष्ट और तथ्यपूर्ण है। अपने इस ग्रन्थ पर स्वयं उत्पलदेव ने भी एक टीका लिखी है जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने किया है साथ ही आचार्य **अभिनवगुप्त**[३०] तथा **क्षेमराज**[३१] ने भी किया है। उत्पलदेव ने शिवदृष्टि पर भी वृत्ति लिखी है जो अपूर्ण रूप में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त शिवस्तोत्रावली नामक कृति उत्पलदेव के दार्शनिक होने के साथ-साथ उनकी काव्य-प्रतिभा का भी परिचय कराती है।

आचार्य उत्पलदेव के समय के सम्बन्ध में कोई सटीक जानकारी तो प्राप्त नहीं है लेकिन यह सोमानन्द के शिष्य थे इसलिए इनके समय निर्धारण में विशेष बाधा नहीं है। अतः सोमानन्द के आसपास के समय का ही इन्हें स्वीकार किया जाता है।

आचार्य लक्ष्मण गुप्त

आचार्य लक्ष्मणगुप्त आचार्य अभिनवगुप्त के गुरु तथा त्रिकदर्शन और क्रमदर्शन के प्रतिष्ठित विद्वान थे।[३१]

लक्ष्मणगुप्त आचार्य उत्पलदेव के पुत्र थे। अपने पिता से ज्ञान प्राप्त करने के कारण उनके शिष्य भी थे।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी ग्रन्थ में एक स्थान पर इन्हें **श्रीशास्त्र** का रचयिता बताया गया है।

श्रीशास्त्रकृद्घटितलक्ष्मणगुप्तपादसत्योपदर्शितशिवाद्वयवाद....।[३२]

इससे यह अनुमान लगता है इनकी कोई रचना अवश्य रही होगी। आचार्य अभिनवगुप्त के समय ९५० से ९७५ ई० के आसपास ही इनका समय निर्धारित होता है। आचार्य अभिनवगुप्त का गुरु होने के कारण काश्मीर शैवदर्शन के इतिहास में आचार्य लक्ष्मणगुप्त को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है।

आचार्य अभिनवगुप्त

अभिनवगुप्त नरसिंह गुप्त के पुत्र थे तथा लक्ष्मण गुप्त अभिनवगुप्त के प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के गुरु थे।[३३] अभिनवगुप्त का समय ९५० ई० से ९७५ ई० के बीच माना गया है। अभिनवगुप्त एक शैवयोगी थे आज भी उन्हें काश्मीरशैवदर्शन का श्रेष्ठ अधिकारी आचार्य माना जाता है। आचार्य उत्पलदेव की ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका पर अभिनवगुप्त की विमर्शिनी टीका सर्वश्रेष्ठ टीका है जो इस ग्रन्थ के तत्त्वावबोधन का अत्यन्त साधन है। इसके अतिरिक्त काश्मीरशैवदरर्शन के साधनात्मक क्षेत्र में तन्त्रालोक और परात्रिंशिंका विवरण ये दो ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अभिनवगुप्त ने इसके अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थों की रचना की है, जैसे-परमार्थसार, बोधपंचदशिका, परमार्थचर्चा आदि कोमलबुद्धि वालों के लिए तो उन्होंने तन्त्रसार ग्रन्थ की रचना की जो तन्त्रालोक ग्रन्थ का गद्य रूप में संक्षिप्त विवेचन है।

अभिनवगुप्त काव्यप्रतिभा से भी सम्पन्न थे। उनके भी अपने गुरु के समान दार्शनिक गीत मिलते हैं। जैसे-क्रमस्तोत्र, भैरवस्तोत्रादि। ध्वनि और रस से सम्बन्धित काव्यपरक ग्रन्थ ध्वन्यालोकलोचन टीका प्रसिद्ध है।

आचार्य अभिनवगुप्त के अनेक गुरु थे जिनसे उन्होंने ब्रह्मविद्या, द्वैताद्वैत शैवदर्शन, त्रिकदर्शन, द्वैताद्वैततन्त्र, ध्वनिशास्त्र, व्याकरणशास्त्र तथा नाट्यशास्त्रादि विषयों की शिक्षा ग्रहण की जिनका नाम्ना उल्लेख इस प्रकार से है—

१. **नरसिंह गुप्त**-ये आचार्य अभिनवगुप्त के पिता थे। इनसे उन्होंने व्याकरणशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की

२. **भूतिराजतनय**–ये द्वैतवादी शैव प्रम्प्रदाय के गुरु थे। इनसे शैवदर्शन की शिक्षा प्राप्त की।

३. **लक्ष्मण गुप्त**–इनसे इन्होंने प्रत्यभिज्ञादर्शन, त्रिकदर्शन और क्रमदर्शन की शिक्षा प्राप्त की।

४. **वोमनाथ**–इन्होंने अभिनवगुप्त को द्वैताद्वैत की शिक्षा दी।

५. **इन्दुराज**–ये ध्वनिशास्त्र के विद्वान् थे। इनसे ध्वनि-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की।

६. **भट्टतौत**–इनसे अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की शिक्षा ली।

७. **भूतिराज**–ये ब्रह्मविद्या के ज्ञाता थे। इनसे ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

कल्लट

आचार्य कल्लट अपने समय के विद्वान् आचार्य थे। इनकी गणना आचार्य अभिनवगुप्त ने क्रमदर्शन के आचार्यों में की है।[३४] स्पन्दकारिका में उनके क्रमशाखा के आचार्य होने का उल्लेख प्राप्त होता है।

आचार्य कल्लट द्वारा रचित कोई स्रोत नहीं मिलता, जिससे इनके समय का निर्धारण किया जा सके। आचार्य भट्टकल्लट वसुगुप्त के शिष्य थे। इसलिए इन्हें उनका समकालीन माना जा सकता है।[३५] आचार्य कल्लट प्रतिभाशाली तथा धार्मिक विद्वान् थे। आचार्य अभिनवगुप्त ने इनके द्वारा कुल सिद्धान्त में योगदान का उल्लेख किया है।[३६]

स्पन्दकारिका शिवसूत्रों पर लिखी गयी रचना है। आचार्य वसुगुप्त तथा कल्लट प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इससे सम्बन्धित है।

क्षेमराज

आचार्य क्षेमराज अभिनवगुप्त के शिष्यों में प्रथम थे। यह बात स्वयं अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में अपने शिष्यों की सूची देते समय लिखा है।[३७] अन्य आचार्यों ने भी उपलब्ध प्रामाणों से इस बात की पुष्टि की है। अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में बार-बार क्षेम शब्द का प्रयोग किया है जो कि आचार्य क्षेमराज का

ही बोध कराता है किसी अन्य का नहीं। स्वयं क्षेमराज भी **प्रत्यभिज्ञाहृदय** अपने ग्रन्थ में अपने को **क्षेम** शब्द से उल्लिखित करते हैं।[३८]

अपने गुरु आचार्य अभिनवगुप्त का जिन्होंने तन्त्र, काव्यशास्त्र तथा शैवदर्शन पर ग्रन्थ लिखा, उन्हीं का अनुसरण आचार्य क्षेमराज ने भी किया। इन्होंने अभिनवगुप्त के लोचन पर उद्योत टीका लिखी। शिवसूत्रों पर शिवसूत्रविमर्शिनी ग्रन्थ की रचना की जो आगमिक धारा की महत्वपूर्ण कृति कही जाती है। इसके अतिरिक्त स्पन्दशास्त्र पर स्पन्दनिर्णय तथा स्पन्दसन्दोह नामक वृत्ति लिखी जो कि उनके स्वतन्त्र प्रतिभा का परिचय देता है तथा शैव शास्त्र की स्पन्द शाखा पर अभिनव गुप्त के दृष्टिकोण को विकसित करने का पूरा श्रेय देता है। त्रिकशास्त्र की परम्परा में शिवसूत्र विमर्शिनी का महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य क्षेमराज ने स्वच्छन्दतन्त्र, नेत्रतन्त्र तथा विज्ञानभैरव पर उद्योत वृत्ति लिखी है। नेत्रतन्त्र पर लिखी उद्योत टीका शैवदर्शन के क्रम सिद्धान्त का विशेष रूप से प्रतिपादन करता है।

आचार्य क्षेमराज अपने काल के प्रकाण्ड तथा प्रतिष्ठित विद्वान् थे, जिसकी पुष्टि उनके द्वारा रचित ग्रन्थों, वृत्तियों आदि की गवेषणा से होती है। पराप्रवेशिका, प्रत्यभिज्ञाहृदयम् और भैरवानुकरण स्तोत्र आदि क्षेमराज के मौलिक ग्रन्थ है।

वरदराज

आचार्य वरदराज आचार्य क्षेमराज के शिष्य थे, जिसने कश्मीर जाकर अपने गुरु क्षेमराज के मुख से शिवसूत्रों का श्रवण किया था। वरदराज के पिता मधुराज आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य थे। (शिवसूत्रवार्तिक, उपसंहार)

आचार्य वरदराज के पिता मधुराज ने अपने ग्रन्थ **गुरुनाथपरामर्श**[३९] में लिखा है कि **"मैं अपनी आयु के चौहत्तरवें वर्ष में अभिनवगुप्त के गुरु चरणों में शिष्यभाव से गया और चार वर्षो तक आचार्य अभिनवगुप्त के पादपद्मों में बैठकर मैंने शैवदर्शन का अद्वैतामृत प्राप्त किया था।"** इस प्रकार अभिनवगुप्त तथा क्षेमराज के समयानुसार वरदराज का काल ग्याहरहवीं ई० शताब्दी के आसपास मानना तर्कसंगत है। शिवसूत्र वार्तिक के पं० मधुसूदन कौल ने इन्हें सोलहवीं शताब्दी के निकट बताया है।[४०]

आचार्य भास्कर

आचार्य भास्कर की गणना स्पन्दशाखा के आचार्यों में की जाती है। आचार्य भास्कर को गुरु परम्परा में सम्मिलित किया जाता है। आचार्य श्रीकण्ठ इनके गुरु थे।[४१] आचार्य भास्कर का समय नवीं शताब्दी के निकट माना जाता है।

क्रम-सिद्धान्त के आचार्यों में भी भास्कर की गणना की जाती है। भास्कराचार्य ने शिवसूत्र पर प्रसिद्ध वार्तिक की रचना की, जिसके कारण विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।

भास्करकण्ठ

शैवाचार्यों में भास्करकण्ठ का भी नाम उल्लेखनीय है। इनकी गणना उत्तरवर्ती आचार्यों में की जाती है। इन्होंने नरोत्तमकौल को अपना गुरु बताया है-

'कौलनरोत्तमेभ्यश्च विद्योपदेशमासाद्य।'

(भास्करी)

आचार्य भास्करकण्ठ का समय सत्रहवीं शती ई० के उत्तरार्ध में होगा, ऐसी सम्भावना है। भास्करकण्ठ की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी पर विद्वत्तापूर्ण वृत्ति प्राप्त होती है, जो भास्करी के नाम से जाती है। यह वृत्ति अभिनवगुप्त की विमर्शिनी टीका को समझने में उपयोगी है।

साहिब कौल (आनन्द नाथ)

शैवाचार्यों की परम्परा में इनका विशिष्ट स्थान है। इन्होंने रुद्रयामलतन्त्र के भवानीनामसहस्त्र के आधार पर देवीनामविलास की रचना की थी। इनकी शैली कथात्मक शैली है। इस ग्रन्थ में १६ सर्ग है। सर्ग का नाम भक्ति है जैसे-प्रथमाभक्ति आदि। इस ग्रन्थ का आरम्भ कैलाश पर्वत के सुन्दर दृश्य से होता है। इसके पश्चात् इन्होंने कल्पवृक्ष नाम दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें अपनी अवस्था चौदह वर्ष बतायी। इस प्रकार इनका समय सोलहवीं शताब्दी अनुमानित है। **(देवीनामविलास, भूमिका)** साहिब कौल के अन्य ग्रन्थ शिवसिद्ध नीति, शिवशक्तिविलास, चन्द्रमौलिस्तव, शारिकास्तव आदि उनके स्वात्मप्रकाश के स्फुरण की गीतात्मक अभिव्यक्ति है।

साहिबकौल ने अपनी माता का नाम बुद्धि तथा पिता का नाम श्रीकृष्ण कौल अपने ग्रन्थ में बताया है।

श्रीकृष्णात्मपरानुभूतिविभवः श्रीकृष्णकौलः सुतं।
साहिबकौलमसूतं यं च जननी बुद्धि प्रबुद्धि सती।।[४२]

आचार्य जयरथ

आचार्य जयरथ क्रमदर्शन के आचार्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखते है।[४३] तन्त्रालोक के कुछ अह्निकों पर उनके द्वारा लिखी गयी वृत्ति क्रम सिद्धान्त के इतिहास को प्रतिष्ठित करती है। साथ ही सांस्कृतिक तथा दार्शनिक नियमों का भी प्रतिपादन करती है।

आचार्य जयरथ का समय ग्यारहवीं तथा बारहवीं ईस्वी शताब्दी के मध्य माना जाता है। आचार्य जयरथ ने रूय्यक की रचना अलंकारसर्वस्य पर **विमर्शिनी** टीका लिखी। आचार्य रूय्यक मङ्खक से पूर्व के थे। मङ्खक ने आचार्य जयरथ का समय ११५० ई० शती के पूर्व निर्धारित किया है। (श्रीकण्ठचरति, २५,३०)

इन्होंने शैवशास्त्र तथा आगमशास्त्र की शिक्षा कल्याण नामक विद्वान् से प्राप्त की थी तथा मीमांसा और व्याकरण की शिक्षा शंखधर से प्राप्त किया।[४४] **तन्त्रालोक** पर लिखी गयी **विवेक** नाम टीका आचार्य जयरथ की श्रेष्ठ रचना है जिससे ज्ञात होता है कि वह एक प्रतिभाशाली विद्वान् थे। इन्होंने त्रिपुर-सिद्धान्त पर भी ग्रन्थ लिखा है। इसके अतिरिक्त **स्तोत्र** नामक एक कृति भी इनके द्वारा रचित है। इसके कुछ श्लोक आचार्य शिवोपाध्याय ने अपनी रचना विज्ञानभैरव में उद्धृत किये है।

इस पकार ८वीं ईस्वी शताब्दी से लेकर तन्त्रालोक के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य जयरथ के समय तक अर्थात् १३वीं शताब्दी के आरम्भ तक काश्मीर शैवदर्शन का प्रशंसनीय विकास हुआ। इसके बाद काश्मीरशैवदर्शन पर मौलिक ग्रन्थ या टीका लिखने वालों की कमी दिखने लगी। जिससे इसके विकास की गति मन्द पड़ गयी, ऐसा अनुभव होता है।

क्षितिकण्ठ

काश्मीर शैवदर्शन की विकास परम्परा में ऐसे भी आचार्य हुए है जिन्हें क़िसी गुरु परम्परा में नहीं रखा गयी है। इनमें सर्वप्रथम आचार्य **क्षितिकण्ठ** का नाम आता है।

काश्मीरशैवदर्शन की विकास-धारा पर आचार्य जयरथ के बाद एक विराम सा प्रतीत होने लगता है, लेकिन इस विकास की धारा को क्षितिकण्ठ ने रूकने नहीं दिया और इसे आगे बढ़ाया। क्षितिकण्ठ ने छुटपुट रचनायें की, जिसका उल्लेख सिद्धिपाद में मिलता है।।

आचार्य क्षितिकण्ठ ने **महानयप्रकाश** नामक ग्रन्थ की रचना की जो कश्मीरी अपभ्रंश भाषा में लिखित है।[४५] यह ग्रन्थ काश्मीर शैवदर्शन के साधनात्मक योग से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त क्षितिकण्ठ ने **स्तोत्रमाला** को अपनी रचना बतायी है।[४६] इस नाम की दो हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ भण्डार ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (पूना) में उपलब्ध है।[४७] इससे यह सिद्ध होता है कि **स्तोत्रमाल** क्षितिकण्ठ की ही रचना है।

कौलसूत्र में भी क्षितिकण्ठ का उल्लेख आया है[४८] कौलसूत्र सोलह अध्यायों में विभक्त है, जिन्हें स्वरकला कहते हैं, **'इति मूलसूत्रेषु षोडशस्वरकला।'** इनमें **'कुल'** सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इनकी **न्यास** नाम की चौथी रचना भी प्रसिद्ध है।

आचार्य शिवोपाध्याय

आचार्य शिवोपाध्याय, ईसापूर्व सत्रहवीं शताब्दी के आचार्य है। इस समय तक **क्रम-सिद्धान्त** का मत अपने उपसंहार रूप में पहुँच चुका था। शिवोपाध्याय **क्रमदर्शन** के लेखक नहीं है, लेकिन विज्ञानभैरव पर वृत्ति लिखकर इन्होंने **क्रम-मत** की व्याख्या करने में कोई अवकाश नहीं छोड़ा। यह विवृत्ति उन्होंने उस समय के राजा सुखजीवन के काल (१७५४-१७६२ ई०) में लिखा। विज्ञान भैरव के उपसंहार में जिसका उल्लेख भी है–

सुखजीवनाभिधाने रक्षति काश्मीरमण्डलं नृपतौ।
आमगमन्निःशेषत्वं विज्ञानोद्द्योतसंग्रहः सुगमः।।[४९]

आचार्य शिवोपाध्याय का **शिव** नाम था तथा उपाध्याय उनकी जाति थी।

'नाम्ना शिवेतिगुणिकौशिकगोत्रजात्योपाध्याय...।'[५०]

आचार्य शिवोपाध्याय से पूर्व एक और शैवदर्शन के विद्वान् हुए थे, जिनका नाम लक्ष्मीराम है। इन्होंने **परात्रिंशिका** पर संक्षिप्त विवृत्ति लिखी थी। अपना समय संवत् १७३२ बताया है।[५१]

सन्दर्भ

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, आचार्य क्षेमराज। भूमिका, पृ०-१
२. काश्मीर शैविज्म, जे० सी० चटर्जी,
३. शिवसूत्र विमर्शिनी, क्षेमराज,

४. तन्त्रालोक ३/३१
५. तन्त्रालोक ३/३२
६. तन्त्रालोक, भा०-१, पृ० ४९
७. स्वच्छन्दतन्त्र, पटल १/१५
८(क). (तन्त्रालोक, पृ० ७,२०
८(ख). (महार्थमंजरी परिमल, वृत्ति, पृ०९६
९. शिवदृष्टिवृत्ति, आ० २, पृ०३६
१०. स्पन्दसन्दोह, पृ०१०
११. तन्त्रालोक, विं० भा०-१ पृ०२८
१२. तन्त्रसार, पृ०९२
१३. अष्टाध्यायी, पाणिनि, माहेश्वर सूत्र-१
१४. स्पन्दनिर्णय, पृ०३
१५. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग-१, पृ०९
१६. राजतरंगिणी, ५/६६
१७. शिवदृष्टि वृत्ति, पृ०३
१८. काश्मीर शैविज्म, पृ०२५
१९. शिवदृष्टि पृ०४, ११२, स्पन्दकारिका १/२, पृ०९६
२०. शिवदृष्टि आ० ७/१०६
२१. वही, ७/१०५-६
२२. परत्रिंशिका विवरण पृ०६३
२३. वही, पृ०१
२४. वही, पृ०१०८
२५. महार्थमंजरी, पृ०१९
२६. वही, पृ०१९
२७. शिवदृष्टिवृत्ति, प्रारम्भ, श्लोक-२
२८. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग-२, प्रस्तावना
२९. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग-१पृ०२
३०. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग-१, पृ०३
३१. स्पन्दनिर्णय, पृ०४६
३२. ई० प्र० वि० वि०, पृ०४०६
३३. तन्त्रालोक, आ० १/३०
३४. तन्त्रालोक-पृ० २०८-२१२
३५. राजतरंगिणी-५/६६

३६. तन्त्रालोक-२९
३७. तन्त्रालोक-पृ० ३७-६७
३८. प्रत्यभिज्ञाहृदय-१
३९. गुरुनाथपरामर्श, श्लोक ३८-४० उद्धृत् काश्मीरशैवदर्शन और कामायनी, भँवरलाल जोशी, भूमिका पृ० ३५
४०. शिवसूत्रवार्तिक, प्रस्तावना पृ० ४, वरदराजकृत
४१. शिवसूत्रविमर्शिनी-१/८
४२. देवीनामविलास, नवमी भक्ति, पृ० १८४
४३. तन्त्रालोक विवेक, पृ० ४३४
४४. तन्त्रालोक विवेक, पृ० ३१०
४५. महानयप्रकाश, पृ० ४७-४८
४६. वही, पृ० ४७-४८
४७. MSS No.E 568 & 569 of 1884-86 BORI Poona
४८. महानयप्रकाश, पृ० ६०
४९. विज्ञानभैरव, उपसंहार
५०. विज्ञानभैरव विवृत्ति, पृ० १४३
५१. परात्रिंशिकाविवृत्ति, भूमिका, पृ०-९

चतुर्थ-अध्याय

काश्मीरशैवदर्शन का उद्भव और विकास

१.'दर्शन' व्युत्पत्ति तथा स्वरूप

'दर्शन' शब्द की निष्पत्ति 'दृश्' धातु के करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय के संयोग से हुयी है, जिसका अर्थ है-'जिसके द्वारा देखा जाये 'अर्थात् 'दृश्यते अनेन इति।' देखने का साधन स्थूल नेत्र है। इन नेत्रेन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'चाक्षुष प्रत्यक्ष' कहा जाता है। इस प्रकार देखने से अभिप्राय 'ज्ञान प्राप्त करने' से है। अतः जिस उपाय साधन से ज्ञान की प्राप्ति हो वह दर्शनशास्त्र है।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती है जिनका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। उनके लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता होती है। यह सूक्ष्म दृष्टि 'तात्त्विक बुद्धि' है। इसे प्रज्ञाचक्षु, ज्ञानचक्षु अथवा दिव्यदृष्टि भी कहा जाता है। इस दृष्टि से 'जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाये वही दर्शन शब्द का अभिप्राय है।' गीता में अर्जुन ने कृष्ण द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्त कर ज्ञान प्राप्त किया।

'दर्शन' की परम्परा का मूल उपनिषद् तथा अन्य शास्त्रों में प्रचुरता से दिखता है। जैसे शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध ईशावास्योपनिषद् का यह नन्त्र 'दृष्टान्त के रूप में उद्धृत् है—

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

अर्थात् स्वर्णपात्र से सत्य का मुख ढका है। हे पूषन। अर्थात् परमात्मा आप उस ढक्कन को हटाइये, जिससे सत्य का अर्थात् ब्रह्म का और सनातन रूप सत्य पर प्रतिष्ठित धर्म का हम दर्शन कर सकें। धर्म से तात्पर्य है-'आत्मज्ञानानुकूल कर्तव्य'।

इस मंत्र में दृष्टये पद का अर्थ 'दर्शन' अर्थ में है जिसका प्रयोग आत्मसाक्षात्कार या ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए हुआ है। 'आत्मा वा परे दृष्टव्यः' कह कर छान्दोग्योपनिषद में दृश् का आत्मदर्शन अर्थ में प्रयोग हुआ है। स्मृतियों में भी आत्मज्ञान को

आत्मदर्शन अर्थ में लिया गया है। बौद्ध-दर्शन में इसे 'सम्यग्दृष्टि' तथा जैनदर्शन में इसे सम्यगदर्शन कहा गया है।

यह संसार क्या है? जीवन मृत्यु के बन्धन क्या? सुख-दुःख का सार या रहस्य क्या है? मैं कौन हूँ? इस अव्यक्त रहस्य को जान लेना ही दर्शन है।

दर्शन शास्त्र का जीवन से घनिष्ठ समन्ध है। दोनों का एक ही लक्ष्य है वह परम श्रेय या मोक्ष की प्राप्ति। यही जीवन है। इस विराट ब्रह्माण्ड के असंख्य अद्भुत पदार्थों तथा जीवन की सत्ता, सुख-दुखः, जन्म-मृत्यु आदि के रहस्य की जिज्ञासा को लेकर दर्शन शास्त्र का जन्म हुआ। और इन्हीं बिन्दुओं पर विचार मन्थन हुआ। **ज्ञातुम् इच्छा इति जिज्ञासा।** ज्ञान की इच्छा ही जिज्ञासा कही जाती है। जिसके कारण ही हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जीवन की मीमांसा करना दर्शन का लक्ष्य है। इसलिए जीवन के सभी पक्षों आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथाा आधिदैविक से सम्बन्धित पदार्थों या तत्त्वों का विश्लेषण करना ही दर्शन का कार्य है।

यह संसार दुःखमय है जो भी जीव यहाँ आते हैं जीवन पर्यन्त किसी न किसी रूप में दुःख से अलग नहीं है। और दुःख से छुटकारा भी चाहते हैं क्योंकि दुःख किसी को भी प्रिय नहीं होता है इसलिए प्रत्येक जीव एक मात्र दुःख से छुटन्क़ारा पाने का प्रयत्न करते है इसके लिए उन्हें अनेक बार जन्म लेना पड़ता है। जिस क्षण जीवन को दुःखों से सदा के लिए छुटकारा मिल जायेगा उसी क्षण जीवन सदा के लिए जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूट जायेगा और मुक्त हो जायेगा। यही जीव का चरम लक्ष्य है। दर्शनशास्त्र का भी यही परमतत्त्व है।

प्राचीन काल में 'दर्शन' के लिए आन्वीक्षिकी शब्द का प्रयोग किया जाता था। आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में चार विद्याओं का उल्लेख किया है। ये है-आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में 'दर्शन' अर्थ के लिए आन्वीक्षिकी पद का प्रयोग किया जाता था। मनुस्मृति ने भी आन्वीक्षिकी को आत्मविद्या कहा गया है।[१] कामन्दक शास्त्र में इसे आत्मविज्ञान कहा गया है।[२] इस प्रकार ये दर्शन शब्द के पर्यायवाची रूप में प्रयोग होते थे।

जीव ज्ञान की मूढावस्था से आरम्भ कर उस ज्ञान-प्राप्ति परम्परा की अनेकों सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उस पूर्व ब्रह्मस्वरूप परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है जो कि पूर्ण ज्ञान है। जिसका शंकराचार्य तथा काश्मीरशैवदर्शन ने प्रतिपादन किया है। कुछ लोग भारतीय दर्शन को नैराश्यवादी दर्शन मानते हैं। किन्तु, यह

कथन उचित नहीं है क्योंकि भारतीय दर्शन संसार के दुःखादि को देखकर व्यथित अवश्य होता है, लेकिन निराश नहीं होता। वह संसार की दुःखमय परिस्थिति तथा दुःख को दूर करने का पूरा प्रयास करता है।[३]

ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर वह जीव अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर परमात्मा से अपनी आत्मा का उसी प्रकार से अभेद ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिस प्रकार घर के अन्दर घिरा हुआ आकाश और घर के बाहर का आकाश एक है यह ज्ञान होता है। इसी प्रकार से जीवात्मा के बाहर का आकाश एक है यह ज्ञान होता है। इसी प्रकार से जीवात्मा के अविद्या रूपी पर्दे हट जाने से जीवात्मा तथा परमात्मा एक है इसका ज्ञान हो जाता है। जो पूर्ण तथा अखण्ड स्वरूप होता है। इन दोनों का भेद ज्ञान नष्ट हो ज़ाता है। यह परमानन्द की प्राप्ति है इसे ही चरम दुःख निवृत्ति या 'मोक्ष' कहा गया है। इसी को परमात्मा, परब्रह्म, आत्मा या ब्रह्म कहते हैं।

दर्शन शास्त्र में आत्मा को देखने का उपाय श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन बताया गया है। शास्त्र कहता है कि तत्त्वज्ञानी या श्रुतियों के द्वारा आत्मा के सम्बन्ध में अनेक बार सुनना चाहिए। पूर्व-जन्म या इस जन्म की साधना के कारण जिस किसी का अन्तःकरण भाग्यवश परिशुद्ध हो गया हो, उसमें पूर्ण श्रद्धा हो, तो उसे उसी क्षण परमतत्त्व की प्राप्ति हो जायेगी। गीता में भी भगवान कृष्ण ने कहा है-'**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।**' केवल तर्क के द्वारा परमतत्त्व तक पहुँचने में हम समर्थ नहीं हो सकते। कठोपनिषद में आया है—

'नैषा तर्केण मतिरापनेया।'

ब्रह्मसूत्र के भाष्य में शंकराचार्य ने 'तर्काप्रतिष्ठानात्' कहकर इसी सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित किया है कि परमतत्त्व का ज्ञान केवल तर्क का विषय नहीं है। बल्कि श्रवण तथा मनन के द्वारा प्राप्त सिद्धान्त का निदिध्यासन अर्थात् सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षण करना परम आवश्यक है। इस सम्बन्ध में कुतर्क से दूर रहना चाहिए युक्ति युक्त जिज्ञासु भाव से तर्क करना चाहिए। उपर्युक्त तीनों उपायों द्वारा जब एक ही निणर्य पर पहुँचते है तब हमें उसे प्रामाणिक मानना चाहिए। तभी हमें आत्मा का साक्षात्कार होता है और जीव परमलक्ष्य को प्राप्त होता है। जो कि भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य है। इन तीनों साधनों को क्रमशः आगम, आप्तवाक्य तथा तर्क अथवा साक्षात् अनुभव कहते हैं।

दर्शन का परमलक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति अथवा आत्मसाक्षात्कार है। लेंकिन सभी जीव इसके अधिकारी नहीं होते। इसका कारण ये है कि सभी जीवों

के दुःख से व्याकुल रहने पर भी साधारण तौर पर उनकी दृष्टि इस परमपद की ओर नहीं जाती। बहुत कम विरले मनुष्य ही इस परमपद को प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। कठोपनिषद् में उद्धरण आया है—

'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि
बहवो यं न विद्यु।'-(कठो.१/२/७)

साधक को अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके इस पद को पाने का अधिकारी बनना चाहिए। भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को गीता का उपदेश उसका अधिकारी बनने पर ही दिया उससे पूर्व नहीं युद्ध क्षेत्र में खड़े अर्जुन ने जब अपने अहंकार का त्याग करके अपने को शिष्यभाव में समर्पित किया,[४] तभी वह वस्तुतः उसके अधिकारी बने और तभी कृष्ण ने उन्हें परमार्थ-तत्त्व-ज्ञान का उपदेश दिया।

तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति का रागद्वेषादि से रहित तर्क का दर्शन शास्त्र में उच्च स्थान हैं, जो उपनिषदों की देन है। प्रत्येक जिज्ञासु के लिए साधनों के द्वारा उन तत्त्वों का साक्षात अनुभव करना आवश्यक है।

ऋषियों के द्वारा केवल परमपद के मार्ग का ही ज्ञान होता है। उसकी प्राप्ति और दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तभी होगी उस मार्ग पर चलकर परमपद का साक्षात् अनुभव करें। आत्मा, व्यापक, नित्य, चित् और आनन्द रूप है। जिज्ञासु 'प्रतिज्ञा-वाक्य' की तरह से स्वीकार कर साक्षात्कार करने के लिए आगे बढ़ता है। दुःख सामान्य की निवृत्ति तथा सुखसामान्य की प्राप्ति ही विद्या का प्रयोजन है। इसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति तथा विकास हुआ। दुःखसामान्य से तात्पर्य सम्पूर्ण दुःख तथा सुखसामान्य का अर्थ है उत्तम सुख।

दर्शन-शास्त्र समस्त विद्याओं का सार है। इसमें ब्रह्म विद्या, आत्मविद्या, (मेटाफिजिक पराविद्या) अध्यात्मविद्या, न्याय, आचारशास्त्र, धर्म-मीमांसा तथा सौन्दर्यशास्त्रादि विषयों के सारतत्त्व का संग्रह कर प्रस्तुत किंया गया है। इस दृष्टि से भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शनों का परस्पर समन्वय भी देखने को प्राप्त होता है।

विशेष-विशेष प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाने तथा विशेष-विशेष प्रकार के सुखों की प्राप्ति के लिए तो अनेक कलाओं शिल्पों तथा विद्याओं में अलग-अलग ढंग से उपाय बताये गये हैं लेकिन दुःखसामान्य की निवृत्ति और सुखसामान्य की प्राप्ति के लिए एक मात्र उपाय या साधन दर्शनशास्त्र ही है। क्योंकि उसमें समस्त विद्याओं का सार संग्रहीत है।

दर्शन विद्या के प्रयोजन के सम्बन्ध में डॉ० भगवानदास ने अपनी पुस्तक 'दर्शन का प्रयोजन' में लिखा है कि-"सांसारिक और पारमार्थिक दोनों सुखों को प्राप्त करने का जो मार्ग दिखाये है वही सच्चा दर्शन हैं, वही दर्शन का प्रयोजन है।"

यद् आभ्युदयिकं चैव निःश्रेयसिकमेव च।
सुखं साधयितुं मार्ग दर्शयेत् तद्विद्धि दर्शनम्।।

दर्शन मनुष्य के समग्र जीवन का प्रतिबिम्बि है। देश काल की दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी सम्पूर्ण मानवता एक है और उसका लक्ष्य भी एक है। इस दृष्टि से विश्व की समस्त जातियों की दार्शनिक विचारधारा में अनेकता होते हुए भी एकता है। कालिदास ने इस अभिप्राय को रघुवंश में प्रस्तुत किया है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थानः सिद्धहेतवः।
तथैव निपतन्त्योधा जाह्नवीया इवार्णवे।।

अर्थात् देवी भगीरथी के भिन्न-भिन्न प्रवाहों का परम लक्ष्य एक ही समुद्र में मिलना है। वहाँ पहुँचकर सब एक हो जाते हैं। उसी प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिए अलग-अलग शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग भले ही अलग-अलग हो किन्तु उनका लक्ष्य एक ही होता है। 'आत्मज्ञान,' परमानन्द।

उपनिषदों का 'तत्त्वमसि' महावाक्य ही भारतीय दर्शन के सभी मत, सिद्धान्त तथ सम्प्रदायों का केन्द्र रहा है। जिसकी व्याख्या, भिन्न-भिन्न दर्शनशास्त्रों में अलग-अलग दृष्टि से हुई है। उनका अन्तिम लक्ष्य एक ही है। वह है ऐकान्तिक दुःख की निवृत्ति और ऐकान्तिक सुख की प्राप्ति। जिस मनुष्य ने दुःखसामान्य या एकान्तदुःख और एकान्त सुख का बोध कर लिया वही तत्त्वज्ञानी या आत्मदर्शी है। इस प्रकार दुःख की जिज्ञासापूर्वक निवृत्ति तथा सुख-प्राप्ति की लिप्सा ने ही दर्शन को जन्म दिया।

वेद भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल उद्गम है। वेदों के ऋषि दिव्यदृष्टि सम्पन्न ज्ञानी थे। उन्होंने सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। बन्धन में बँधे हुए जीवन की सद्गति के लिए उन्होंने गम्भीरतापूर्वक विचार किया। निष्कर्ष रूप में उन्होंने इस बन्धन का कारण दुःख को पाया। इस दुःख से छुटकारा पाने का वह ज्ञान ही एकमात्र उपाय है और वह ज्ञान आत्मज्ञान है।

कठोपनिषद् की कथा में ब्रह्मज्ञानी यमराज के पास मृत्यु के सम्बन्ध में

जिज्ञासा लेकर बालक नचिकेता जाता है। यमराज ने उसे आत्मविद्या का उपदेश देकर उसे अमरत्व प्रदान किया। ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मविद्या का ज्ञान दिया। जिससे उन्होंने समस्त दुःखों से छुटकारा पाकर परमानन्द को प्राप्त किया।

गौतमबुद्ध ने भी दुःख की खोज की और चार आर्य सत्यों में उसके कारण तथा उससे छुटकारा पाने का उपाय बताया। ये चार आर्य सत्य है—

१. संसार दुःखमय है (सर्वदुःखम्)

२. दुःखो का कारण है (दुःख समुदय)

३. दुःख का नाश होता है (दुःख निरोध)

४. दुःखो के नाश के लिए उपाय भी है (दुःखनिरोधोपाय)

जैनदर्शन के प्रवर्तक महावीर स्वामी ने भी संसारी जीवों को जन्म-मरण, दुःख बन्धन से छुकारा पाने तथा दुःखों बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का उपदेश दिया। इसके लिए उन्होंने समयदृष्टि का उपदेश किया।

न्यायदर्शन में प्रमाणप्रमेयादि सोलह पदार्थों के ज्ञान से मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति का वर्णन आया है। क्योंकि न्यायदर्शन का मत है कि उक्त सोलह पदार्थों के ज्ञान से ही दुःख तथा उसके कारणों का समूल क्षय हो जाता है।

वैशेषिक दर्शन कहता है कि धर्म से सांसारिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयसय दोनों की प्राप्ति होती है। इस धर्म विशेष के ज्ञान पूर्वक दुःखों की निवृत्ति होती है जिसके फलस्वरूप परमतत्त्व या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

योगदर्शन में दुःखों की चर्चा हुई है। वहाँ दुःखों को अनन्त बताया गया है। प्रकृति तथा पुरुष का सम्बन्ध या दृष्टा-दृश्य का संयोग दुःख का कारण बताया गया है। मिथ्या ज्ञान को ही इस संयोग का कारण बताया गया है। इस मिथ्या ज्ञान या अज्ञान को तत्त्वज्ञान के द्वारा दूर किया जा सकता है।

सांख्यदर्शन में तीन प्रकार के दुःखों का वर्णन है। ये हैं-आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। इन तीनों दुःखों की सर्वथा निवृत्ति ही परमपुरुषार्थ है। यहाँ भी यथार्थ ज्ञान द्वारा अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती है। वेदान्तदर्शन में भी आत्मज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति कही गयी है। इस अवस्था में समस्त दुःखों का अन्त होता है। पूर्वमीमांसा का 'स्व' ज्ञान ही मोक्ष या अपवर्ग कारक है।

'अतः जीव उस आनन्दस्वरूप परमात्मा का ही अंश है लेकिन इस मायापूर्ण जगत में आते ही उसके वशीभूत हो जाता है और परमात्मा से अपने सम्बन्ध को भूल जाता है। परिणाम स्वरूप अत्यन्त दुःख पाता है और इस संसार के जन्म मरण के चक्र में चलता रहता है।' दर्शन शास्त्र के द्वारा वह जीव आत्मज्ञान प्राप्त करके उस आनन्द स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार करता है और अपने दुःखों से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा प्राप्त कर लेता है। जीव 'आत्मा' का साक्षात्कार करके आत्मा तथा परमात्मा के रहस्य को जान लेता है तथा माया या अज्ञानतावश अपने विस्मृत स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यही 'दर्शनशास्त्र' का मुख्य उद्देश्य है। यह दर्शन जीवन की मीमांसा है तथा मानव जीवन को सुखी व पूर्ण बनाने का उपाय है। माया से अविच्छिन्न इस जगत में सुख की कल्पना ही समस्त दुःखों को जन्म देती है। यही दार्शनिक ज्ञान है और यही दर्शन है। क्योंकि योगदर्शन में आया है जिसको संसारी मनुष्य सुख कहता है तत्त्वज्ञानी या विवेकी के लिए वह दुःख ही है।

२. भारतीय दर्शन का सामान्य परिचय

भारतीय दर्शन में चिन्तन की परम्परा का आदि नहीं है। इसकी कोई समय की दृष्टि से सीमा निश्चित नहीं की गयी है। हमारे ऋषियों ने ज्ञान की उपासना की तथा अनुसंधान करते हुए उन्होंने जीवन के सभी पक्षों के तथ्यों तथा अनुभवों को अर्पित किया। दर्शन ग्रन्थों में हमें उन्हीं ऋषियों के अनुभवों का संग्रह मिलता है।

ऋषियों के विषय में भारतीय दर्शन की मान्यता है कि ये तत्त्वदर्शी तथा आत्मज्ञानी थे। ये इस ब्रह्माण्ड में जीवन और संसार के रहस्य को पूर्णतः जानते थे। वेद से लेकर पुराणों तक अनेक ग्रन्थों में ऋषि तथा उनके कुल का वर्णन मिलता है।

प्रवृत्तिधर्मानुयायी तथा निवृत्तिधर्मानुयायी की दृष्टि से ऋषियों के दो सम्प्रदाय मुख्य माने गये है। कर्मकाण्डपरक मन्त्रों के दृष्टा तथा इसके प्रवर्तक ऋषि प्रवृत्तिधर्मानुयायी कहलाये। ज्ञान के प्रतिपादक तथा मोक्ष का साक्षात्कार करने वाले और उसकी प्राप्ति के मर्म का उपदेश करने वाले निवृत्तिधर्मा ऋषि कहे गये। इनमें जनक विदेह, याज्ञवल्क्य वागाम्भृणी तथा कपिल मुख्य माने जाते हैं। ये संहिता, ब्राह्मण तथा उपनिषदों में कहे गये मोक्ष-परक ज्ञान के प्रतिपादक हुए।

आगे चलकर आर्ष तथा अनार्ष की दृष्टि से निवृत्तिधर्मानुयायी ऋषियों के

भी दो सम्प्रदाय कहे गये। न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा तथा वेदान्त आर्ष सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। बौद्ध जैनादि दर्शन अनार्ष के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु दोनों का चरम लक्ष्य एक ही है वह है 'परमपद' या 'मोक्ष' की प्राप्ति।

आस्तिक और नास्तिक दृष्टि से भी भारतीय दर्शन की दो शाखाओं का विकास हुआ है। आस्तिक दर्शन में षड्दर्शन का नाम आता है यह है-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। तथा नास्तिक दर्शन में चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शन आते हैं। क्योंकि ऋषियों की अनुभूतियाँ व्यक्तिगत होने के कारण भिन्न-भिन्न होती है। अतः इसी कारण से भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के अनुभव कहे गये। लेकिन इनका सम्बन्ध एक ही परमतत्त्व से है। जिज्ञासु धर्म तथा दर्शन के सम्बन्ध में अपनी समस्यायें इन ऋषियों के समक्ष रखते हैं तब ऋषि तर्क-वितर्क के माध्यम से तथा अपनी अपनी अनुभूतियों से शंकाओं को दूर कर देते हैं और जिज्ञासु को वास्तविक स्वरूप का परिचय करा देते हैं।

उपनिषद् को भारतीय ज्ञान तथा दार्शनिक विचारधाराओं का मूल ग्रन्थ माना गया है। तत्त्वों के स्वरूप का विभिन्न रूपों में विभिन्न दृष्टिकोण से प्रतिपादन हमें सभी उपनिषदों में मिलता है।

अनादिकाल से संसार में दुःख है और दुःख से निवृत्ति के लिए बड़े-बड़े ऋषियों ने बहुत तप किया। परमतत्त्व के ज्योतिर्मय स्वरूप का उन ऋषियों ने साक्षात्कार किया है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन आस्तिक तथा नास्तिक इन दो सम्प्रदायों में अपना विकास करता आया है। नास्तिक दर्शनों में बौद्ध जैन चार्वाक के अतिरिक्त माध्यन्दिन, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक तथा आर्हत दर्शन की भी गणना होती है।

'दर्शनशास्त्र' ज्ञान प्राप्ति का साधन है। ज्ञान प्राप्ति का साधन ही 'प्रमाण' कहलाता है। **'प्रमाकरण प्रमाणम्'**। ज्ञान प्राप्ति के साधन के विषय में ऋषियों में मतैक्य नहीं था। इसी कारण प्रमाणों की संख्या भी भिन्न-भिन्न रही। इस संख्या भिन्नता के आधार पर भी अनेक प्रकार की दार्शनिक विचार-धाराओं का विकास हुआ। इस श्रृंखला में विभिन्न दर्शनों में दार्शनिकों द्वारा स्वीकृत प्रमाणों के नाम तथा संख्या का विवरण इस प्रकार है—

	दर्शन	प्रमाण
१.	चार्वाक	प्रत्यक्ष
२.	बौद्ध	प्रत्यक्ष और अनुमान
३.	सांख्य	प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द
४.	न्याय	प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान
५.	मीमांसा	प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति
६.	वेदान्त	प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि

इसी प्रकार कुछ दार्शनिकों के द्वारा इन प्रमाणों के अतिरिक्त सम्भव तथा ऐतिह्य प्रमाणों को भी स्वीकार किया गया। प्रमाणों की संख्या की भिन्नता के साथ-साथ दार्शनिकों के परमलक्ष्य के स्वरूप में भी भिन्नता दिखाई पड़ने लगी। जैसे-जैसे चिन्तन की सूक्ष्मता तथा गूढ़ता की वृद्धि होती गयी वैसे-वैसे परमतत्त्व के स्वरूप का ज्ञान भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतम होता गया। इस कड़ी में शरीर, बाह्य पदार्थ, प्रकृति, पुरुष, परमाणु, ईश्वर, स्वर्ग, ब्रह्म, मोक्ष, शिव, विष्णु, शक्ति आदि तत्त्वों को क्रमशः परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। चिन्तन के विकास क्रम में ही परमतत्त्व के अतिरिक्त संसार में जीव, जगत, अज्ञान, अविद्या, माया, बन्धन, पाश, मल, पञ्चभूत, तन्मात्राएं, इन्द्रिय, आस्रव,बन्ध, निर्जरा, स्कन्ध, धातु, आयतन, आयु, विज्ञान, परमार्थसत्य, द्रव्य, गुण, क्रर्म, सामान्य विशेष, समवाय, अभाव, अवयव, भाव, चित्त, विपर्यय, विकल्प, स्मृति, निद्रा समाधि, पञ्च, कञ्चुक, शुद्धाविद्या, सदाशिव, शक्ति, शिव, इश्वरादि विषयों, पर विस्तार से विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में विवेचना की गयी है।

प्राचीन ग्रन्थों में नास्तिकवादी आचार्य चार्वाक का नाम मिलता है। चार्वाक ने आचार्य 'बृहस्पति' को प्रमाण माना है तथा उसके विचारों का उल्लेख किया है। आचार्य बृहस्पति का काल महाभारत काल से पूर्व माना जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर आस्तिक तथा नास्तिक दोनों विचारधाराओं के मूल सिद्धान्त प्राचीनतम् ही है। वेदों में देव तथा असुर के प्रसंग से दोनों प्रकार के विचारों का उल्लेख मिलता है। आस्तिक और नास्तिकवाद के प्रतिनिधि आचार्य वैदिककाल से ही विरोधी विचारधाराओं को लेकर चले आ रहे हैं।

बौद्धदर्शन के सम्प्रदाय तथा जैनों का आर्हत-दर्शन अपने अपने को अनादि

कहते है। जैन दार्शनिक भगवान ऋषभदेव को अपना तीर्थकर महात्मा मानते हैं। जिनका श्रीमद्भागवतपुराण में एक अवतार के रूप में वर्णन आया है। बौद्धदर्शन के दार्शनिक **'गौतमबुद्ध'** को त्रेतायुग के श्रीराम का अवतार मानते हैं। बुद्ध को राम का अन्तिम अवतार बताकर सम्बोधित करते है।

इस दृष्टि से दर्शनों का क्रमशः विकास का वर्णन करना कठिन है। कौन दर्शन पहले आया कौन बाद में इनका निर्णय करना असम्भव है क्योंकि सभी दर्शन सम्प्रदायों की सैद्धान्तिक स्थापनाएँ परस्पर गुँथ कर उलझी हुई है। उनको पृथक करना उनके मूल का शोधन करना फिर उनकी प्राचीनता निर्धारित करना अत्यन्त असम्भव है।

महाभारत के शान्ति पर्व के भीष्म पितामह द्वारा दर्शन के सम्प्रदायों का नामोल्लेख है। इनके नाम है-सांख्य, योग, पांचरात्र, वेद तथा पाशुपत। सांख्य अनीश्वरवादी तथा 'योग' ईश्वरवादी दर्शन है जो कि परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते है। वैष्णव की सगुण भक्ति भावना ने पांचरात्र मत का आविर्भाव किया है। शैव पाशुपत मत के समर्थक थे। वेद अर्थात् वैदिक मत उपनिषद् ग्रन्थों के तत्त्वज्ञान पर आधारित था।

सांख्य तथा योगदर्शन का उद्भव महाभारतकाल में ही हो चुका था तथा पाञ्चरात्र, पाशुपत का दूसरे प्राचीन धर्म सम्प्रदायों के साथ उल्लेख होने से उनकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध है। और वेद तो प्राचीन है ही।

लगभग चार सौ ईसा पूर्व मौर्य युग में न्यायदर्शन तथा वैशेषिकदर्शन का सूत्रपात अक्षपाद गौतम तथा कणाद मुनि द्वारा हो चुका था। चरकसंहिता पर न्याय वैशेषिक का प्रभाव दिखाई देता है। इससे और भी प्रमाणित हो जाता है कि न्याय-वैशेषिक ये दोनों दर्शन ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व के है।

जैमिनी तथा व्यास जो कि पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा के प्रवर्तक है ये महाभारतकालीन ऋषि माने गये हैं। ये दोनों आचार्य अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में एक दूसरे का उद्धृत् करते रहे है।

महामुनि पतञ्जलि योगदर्शन के प्रवर्तक आचार्य रहे है। विद्वानों ने षड्दर्शन में योग को स्थान दिया है तथा इसे षड्दर्शनों में प्राचीन भी बताया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसकी रचना पाँच सौ ईसा पूर्व से पहले हो चुकी थी।

महावीर तथा बुद्ध ने अपने नियम तथा आदर्शों को रखा। वो मूल्य अपने

में किसी भी धर्म के विरोधी तथा आलोचना से सम्बद्ध नहीं थे। जैन तथा बौद्ध धर्मों में वैयक्तिक रूप में विरोधी सम्प्रदाय और आलोचनात्मक प्रक्रिया को उत्तरवर्ती आचार्यों ने प्रतिष्ठित किया। जिनके कारण भारत का यह युग बौद्धिक संघर्ष और विचार क्रान्ति का अपूर्व युग रहा। अपने सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना के लिए जैसे जैसे बौद्ध तथा जैनाचार्यों ने बौद्धिक रूप से धर्म की कठोरता से भर्त्सना की वैसे ही वैदिक धर्मानुयायी समाज एक साथ जाग उठा और द्विगुणित उत्साह के साथ अपने विरोधियों के प्रतिकार के लिए आगे बढ़ा। वह युग द्वादश दर्शन सम्प्रदायों के चरमोत्कर्ष का युग था।

धर्म और दर्शन एवं दूसरे पर आधारित है। इसकी उपपत्ति और स्थिति एक दूसरे के बिना सम्भव ही नहीं है। मनुस्मृति कहता है कि जो अध्यात्म जानता है वही धर्म के स्वरूप को जानता है। आध्यात्मबोध के बिना कर्मों का अनुष्ठान व्यर्थ है—

'न हि अनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते।'

इस प्रकार भारतीय दर्शन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय के आधार पर यह निश्चित हो गया है कि भारत में सहस्त्रों वर्षो से चिन्तन की धारा अनवरत रूप से आगे बढ़ती गयी है और उससे भारत की विचार भूमि सदैव से ही उर्वर रही है।

३. भारतीय दर्शन का वर्गीकरण

सभी दर्शनों का लक्ष्य प्रायः एक होने पर भी उनका वर्गीकरण देखने को मिलता है। इन दर्शनों के मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय तान्त्रिक वाङ्मय या आप्त पुरुषों के चिन्तन है। फिर भी इनके वर्गीकरण का आधार प्रतिवादियों की बुद्धि मलिनता, कट्टरता और तर्क प्रवीणता ही कहा जा सकता है। दर्शनों के वर्गीकरण की इस परम्परा का सूत्रपात छान्दोग्योपनिषद् के सातवें अध्याय में नारद और सनत्कुमार के संवाद में दिखाई पड़ता है। उपनिषद् काल परवर्ती दर्शनों का विभाजित रूप है। 'सूत्र-युग' का प्रादुर्भाव इसी समय हुआ। न्यायसूत्र, मीमांसासूत्र, ब्रह्मसूत्र, सांख्यसूत्र, भगवतीसूत्र, वैशेषिक (सूत्र) दर्शन, सुत्तपिटक, योगसूत्र शिवसूत्रादि ग्रन्थ प्रमाणस्वरूप है।

इन दर्शनों तथा दार्शनिक सम्प्रदायों की संख्या के विषय में कोई निश्चित सीमारेखा नहीं बनायी जा सकती। किन्तु दर्शनों के वर्गीकरण के सन्दर्भ में

षड्दर्शन का नाम विद्वानों द्वारा लिया जाता है। षड्दर्शन के अन्तर्गत कौन सा दर्शन लिया जायेगा। यह निश्चित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जिस विद्वान् को जो दर्शन प्रमुख लगे उसने उनका कथन किया। जैसे-पुष्पदन्त विरचित 'शिवमहिम्न स्तोत्र' में साङ्ख्य, योग, पाशुपत, तथा वैष्णव दर्शन का उल्लेख है। आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सांख्य, योग, लोकायत दर्शनो, का नाम आता है। गुरुगीता में कणाद, गौतम, कपिल, पतञ्जलि, व्यास तथा जैमिनी दर्शनों का उल्लेख है। शंकराचार्य ने 'सर्वसिद्धान्त संग्रह' में लोकायत, आर्हत, बौद्ध, वैशेषिक, न्याय, प्रभाकर मीमांसा, सांख्य, पतञ्जलि, वेदव्यास तथा वेदान्त का वर्णन है। मध्वाचार्य के 'सर्वदर्शन संग्रह में चार्वाक, बौद्ध आर्हत, रामानुज, पूर्ण प्रज्ञ (माध्व) नकुलीश, पाशुपत, शैव, रसेश्वर, अक्षपाद, जैमिनी, पाणिनि, सांख्य, पातञ्जल और शांकर आदि का नामोल्लेख हुआ है।[५]

अतः दर्शन की धाराओं को सीमा में बाँधना उचित प्रतीत नहीं होता। इस सन्दर्भ में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दर्शनों की संख्या, उनका क्रम तथा वर्ग विभाजन किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं किया गया है। इसी कारण दर्शनों की न तो कोई निश्चित संख्या ही है और न ही उनको किसी वैज्ञानिक क्रम के अन्तर्गत अनुबद्ध किया जा सकता है। दर्शनों के इस वर्गीकरण के सन्दर्भ में सामान्य रूप से छः आस्तिक दर्शन जिसमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग मीमांसा और वेदान्त है तथा तीन नास्तिक दर्शन जिसमें बौद्ध जैन तथा चार्वाक दर्शनों का उल्लेख किया जाता है।

४. काश्मीरशैवदर्शन का उद्भव और विकास

कदाचित शैव धर्म संसार का सबसे प्राचीन धर्म है। **'मोहनजोदड़ों एण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन'** नाम अपनी पुस्तक में **सर जान मार्शल** ने लिखा है कि मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई से यह पता चलता है कि शैवधर्म का इतिहास ताम्रपाषाणयुग का अथवा उससे भी पूर्व का है।[६] इस प्रकार यह संसार का अत्यन्त प्राचीन धर्म है।

भारतवर्ष में इसकी तीन धाराएं या विधाएँ विकसित हुई। प्रथम कर्नाटक का वीरशैवमत द्वितीय, तमिलनाडु का शैवसिद्धान्त तथा तृतीय है कश्मीर का अद्वैतशैवधर्म। कुछ विशेष अन्तर के साथ तीनों में कुछ सामान्य लक्षण भी है।

भारत मं दर्शन एक जीवन सरणि है। यह निरर्थक कौतूहल से उत्पन्न बुद्धि

विलास की वस्तु कभी भी नहीं रहा। और न ही केवल बौद्धिक व्यायाम है। इस देश में प्रत्येक दर्शन का धर्म है और प्रत्येक धर्म का एक दार्शनिक आधार है।

काश्मीर के अद्वैत शैव दर्शन का भी कुछ ऐसा ही आधार है। वर्षों तक इस दर्शन का एक रहस्यमय सिद्धान्त के रूप में साधक को ज्ञान कराया जाता था जिसके अनुसार वह अपने जीवन को ढालता था और आध्यात्मिक दृष्टि से उसका परीक्षण भी करता था। इसके बाद धीरे-धीरे केवल उसकी उपासना और अनुष्ठान पद्धति ही रह गयी उसके दार्शनिक पक्ष को मनुष्य भूलने लगा। कुछ साधक ही थे जो इसे मौखिक परम्परा द्वारा जानते थे तथा इसका मौखिक रूप से ही आवश्यकतावश ज्ञान कराते थे। किन्तु दर्शन के इस सिद्धान्त को लिखित रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय महान चिन्तक तथा दार्शनिक आचार्य वसुगुप्त को जाता है जिनका समय विद्वानों के मतानुसार ८वीं तथा नवीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। इन्होंने **'शिवसूत्र'** ग्रन्थ की रचना की। तब से लेकर अनवरत रूप से कश्मीर में दार्शनिक ग्रन्थों की रचना होती रही जिससे काश्मीरशैवदर्शन का वाङ्मय बहुत समृद्ध हो गया है। इस दर्शन के अभी बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित भी नहीं हुए है।

काश्मीरशैवदर्शन के प्रायः दार्शनिक कश्मीर के ही निवासी है। अतः कश्मीर से बाहर देश-विदेश में इसे काश्मीरशैवदर्शन के नाम से जाना जाता है।[७]

सर्वदर्शन संग्रह में माधवाचार्य ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से इसका परिचय दिया है। काश्मीर शैव दर्शन का विकास प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त के आधार पर होने के कारण इसका यह नामकरण हुआ। इस दर्शन के नाम से ही उत्पलाचार्य ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका की सूत्ररूप में रचना की। इसमें साधक या मनुष्य को आत्मस्वरूप का बोध हो जाता है। अतः आत्मसाक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्ति का यह सरल मार्ग अपनी विशेषता के कारण ही शैवदर्शन में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शिवसूत्रविमर्शिनी में इस अभेदवादी दार्शनिक सम्प्रदाय को रहस्यात्मक साधना के कारण रहस्य-सम्प्रदाय कहा गया है।

'जीवलोके रहस्य सम्प्रदायो मा विच्छेदि।'[८]

काश्मीरशैवदर्शन का एक नाम कुलागम भी है। आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार कुल तथा त्रिक शब्द पर्यायवाची है। भगवान शिव का नाम ही शैवदर्शन में कुल है। समस्त भेदों का लय इस कुल में हो जाता है।

"तस्य यत्तत् परं प्राप्यं धाम तत् त्रिक संज्ञितम्।
सर्वाविभेदानुच्छेदात् तदेव कुलमुच्यते।।'[९]

त्रिक अथवा कुल उसी प्रकार समस्त दृष्टि में व्याप्त रहता है जिस प्रकार शरीर के समस्त अंगों में प्राणतत्त्व व्याप्त रहता है।[१०]

तिलों में तेल, पुष्पों में गन्ध शरीरों में जीवात्मा के समान यह कुल तत्त्व समस्त शैवागमों में प्रतिष्ठित है—

'पुष्पे गन्धस्तिले तैलं देहे जीवो जलेऽमृत।
यथा तथैव शास्त्राणां कुलमन्तः प्रतिष्ठितम्।।'[११]

काश्मीर शैव दर्शन को त्रिकशास्त्र या त्रिकदर्शन भी कहा जाता है। क्योंकि सिद्धातन्त्र, नामक-तन्त्र तथा मालिनी-तन्त्र ये इस दर्शन के मुख्य आगम है जिनके आधार पर त्रिकदर्शन का विकास हुआ।[१२] काश्मीर शैव दर्शन का नाम शिवशास्त्र[१३] तथा शिवशासन[१४] भी है।

यह दर्शन भेद, भेदाभेद तथा अभेद रूप ज्ञान के तीनों प्रकारों की व्याख्या करता है। इसमें पर, अपर तथा परापर नामक तीन 'त्रिक' भी स्वीकार किये गये है। इन तीनों के आधार पर प्रतिष्ठित होने के कारण शैवदर्शन को त्रिकमत[१५] कहा जाता है।

महार्थमञ्जरी में भी इसे 'त्रिकदर्शन' के नाम से जाना जाता है।[१६] आचार्य सोमानन्द ने इसे 'शैवदर्शन' नाम से प्रतिष्ठित किया है। 'शिवदृष्टि' की अपनी वृत्ति लिखते समय उत्पलाचार्य ने इसे 'ईश्वराद्वयवाद' की संज्ञा से अभिहित किया है।[१७] 'स्पन्दसन्दोह' ग्रन्थ में आचार्य क्षेमराज ने इसे शिवाद्वय दर्शन कहा है।[१८] त्रिकदर्शन को षड्कर्म विज्ञान तथा षड्र्धमशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है।[१९] इस षड्र्धशास्त्र अ आ इ ई उ ऊ में ह्रस्वत्रय ही प्रधान है।[२०] जो चित् इच्छा और ज्ञान कहलाता है।[२१] इसी प्रधानता के कारण पाणिनि ने भी इसे अपने प्रथम सूत्र अइउण् के रूप में अष्टाध्यायीमें निर्दिष्ट किया है। (अष्टाध्यायी, पाणिनि, माहेश्वर सूत्र-१) आचार्य क्षेमराज ने 'स्पन्दशास्त्र' नाम से इस दर्शन का विवेचन किया है।[२२] प्रकाशविमर्शात्मक स्वभावरूप परमशिव अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव के कारण स्वयं ही प्रकाशित होता रहता है। इस कारण इस दर्शन को 'स्वातन्त्र्यवाद' की भी संज्ञा प्राप्त होती है।[२३]

उद्भव और विकास

शैव दार्शनिक, शैवागमों का उद्भव भी वेदों के समान अनादिकाल से ही

मानते है। इनका भी काल निर्णय नहीं हो सका है क्योंकि यह भगवान् शिव द्वारा उपदिष्ट है। काश्मीर शैवदर्शन के आचार्य सोमनन्द ने शिवदृष्टि में शैवशास्त्रों के अविर्भाव का उल्लेख किया है। कलियुग के प्रारम्भ होने पर तत्त्ववेत्ता ऋषि सामान्य जनों से दूर दुर्गम स्थानों पर चले गये तब लोग अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुए दुःखी होने लगे। उस समय भगवान शिव जो भूतल पर श्रीकण्ठनाथ के रूप में अवतरित थे वे लोगों के दुःखों से अपार करुणा से भर गये। तब उन्होंने इस रहस्यमय शास्त्र के पुनः प्रचार के लिए दुर्वासा ऋषि को आदेश दिया। उनके आदेश से दुर्वासामुनि ने त्र्यम्बकादित्य नामक मानसपुत्र को उत्पन्न किया और शैवागम का समस्त रहस्य उसे प्रदान कर उसे इस दर्शन का प्रचार करने के लिए नियुक्त किया। 'शिवदृष्टि' ग्रन्थ में इस दर्शन के प्रादुर्भाव का वर्णन इसी रूप में प्राप्त है।[२४]

धीरे-धीरे आगे चलकर यह शास्त्र आचार्य त्र्यम्बक के नाम से 'त्र्यम्बकशास्त्र' के रूप में जाना जाने लगा। शिवदृष्टि में यह प्रसंग वर्णित है—

'एवमेषां त्र्यम्बकाख्या तेरम्ब देशभाषया।
स्थिता शिष्यप्रशिष्याद्यैर्विस्तीर्ण मठिकोदिता।।'[२५]

इस प्रकार शैवाचार्यों ने काश्मीर शैवदर्शन का प्रादुर्भाव कलियुग के प्रारम्भ से ही बताने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर आचार्य सोमनन्द ने अपने को त्र्यम्बकादित्य की पीढ़ी में बताया। शिवदृष्टि के वर्णन के आधार पर आचार्य सोमानन्द के काल से काश्मीरशैवदर्शन के काल का निर्णय करना युक्तियुक्त हो सकता है। डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय ने उन्हें त्र्यम्बकादित्य का उन्नीसवां वंशज माना है।[२६] जबकि आचार्य सोमानन्द ने स्वयं अपने ग्रन्थ शिदृष्टि में अपने आपको त्र्यम्बकादित्य का बीसवां वंशज स्वीकार किया है। आचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि में अपनी उत्पत्ति का विवरण इस प्रकार से किया है—

'सिद्धस्तद्वत्सुतोत्पत्या सिद्धा एवं चतुर्दश।
यावत्पञ्चदशः पुत्र सर्वशास्त्रविशारदः।।
स कदाचिल्लोकयात्रामासीनः प्रेक्षते ततः।
बहिर्मुखस्य तस्याथ ब्राह्मणी काचिदेव हि।।
..........................तत्पितरं स्वयम्।
अर्थयित्वा ब्राह्मणी तामानयामास यत्नतः।।

ब्राह्मणेन विवाहेन ततो जातस्तथाविधः।
तेन यः स च कालेन कश्मीरेष्वागतो भ्रमन्।।
नाम्ना स संगमादित्यो वर्षादित्योऽपि तत्सुतः।
तस्याप्यभूत स भगवानरुणादित्य संज्ञकः।।
आनन्दसंज्ञकस्तस्मादुद्बभूव तथाविधः।
तस्मादस्मि समुद्भूतः सोमानन्दाख्य ईदृशः।।'[२७]

इस प्रकार परम्परागत रीति से पीढ़ीगत विचार किया जाये जाये तो आचार्य सोमानन्द के बीसवें पूर्वपुरुष त्र्यम्बकादित्य को दुर्वासामुनि से शैवशास्त्र की प्राप्ति ईस्वी के तीसरी शताब्दी के बाद हुई होगी।

इस प्रकार सोमानन्द का काल आठवीं शताब्दी सिद्ध होता है। यदि परम्परागत वंशावली में २५ वर्षों का भी अन्तर माना जाये तो इसकी चौथी शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी के पूर्व तक ठोस प्रमाण न मिलने के कारण शैव दर्शन के विकास के विषय में कुछ कहना असम्भव है। आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि इस काल में शैवदर्शन के विकास के विषय में कुछ कहना असम्भव है। आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि इस काल में शैवधर्म को शास्त्र का आधार न मिलने के कारण जन सामान्य शैव तथा बौद्ध दोनों धर्मों के मिश्रित विश्वास से अपना जीवन धारण कर रहा था।[२८] इसे देखकर शैवमतावलम्बियों ने शैव धर्म को दृढ़ करने के लिए उसे शास्त्रों का आधार देने का विचार किया होगा ऐसी सम्भावना है। इस दृष्टि से लगभग ईस्वी के सातवीं तथा आठवीं शताब्दी के मध्य काश्मीर शैवदर्शन के मुख्य आगमों का निर्माण हुआ है। इन आगमों के आधार पर ही सोमानन्द ने अपने शिवदृष्टि शास्त्र के माध्यम से काश्मीर शैवदर्शन के दार्शनिक पक्ष का प्रवर्तन किया होगा। काश्मीरशैवदर्शन की प्रतिष्ठापना काश्मीरशैवागम में 'शिवदृष्टि' शास्त्र से पहले देखने को नहीं मिलती। इसका उल्लेख 'परात्रिंशिका विवरण' में मिलता है।

'तेषां (सोमानन्दपादानां) हि ईदृशी शैली-
स्वपक्षान्यरापक्षांश्च निःशेषेण न वेद यः।
स्वयं स संशयाम्भोधौ निमज्जस्तारयेत्कथम्।।'[२९]

'तन्त्रालोक' में भी आचार्य सोमानन्द को तर्क का कर्त्ता कह कर उल्लेख किया गया है।[३०] इस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शन या शैवदर्शन का उद्भवकाल ८५० ई० से माना जाता है।[३१] क्योंकि अन्तर्बहिंसाक्ष्यों के आधार पर सोमानन्द का

समय ८०० से पूर्व मानना तर्क संगत नहीं है। अतः काश्मीरशैवदर्शन का आरम्भ ८०० ई० के लगभग मानना ही तर्क संगत है।

विकास

इस धरा पर मानव के पदार्पण और विकास की कथा लम्बी है। मानव आरम्भिक काल से ही चिन्तनशील रहा इसी कारण आज उच्चतम शिखर पर है। मानव समाज की चिन्तन की एक कड़ी में दार्शनिक विचारों का अभ्युदय हुआ, भारतीय चिन्तन की परम्परा सनातन है। इसके बाद ही विश्व की अन्य चिन्तन धरायें दृष्टिगत होती है तथा विश्व के चिन्तन पर भारतीय चिन्तन का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय चिन्तन धारा ही विश्व की अन्य चिन्तन धाराओं का आदि कारण है।

दार्शनिक विचार धाराओं का उत्स भी वेदों में ही सर्वप्रथम मिलता है। वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। यही कारण है कि भारत का आस्तिक दर्शन इन्हीं वेदों के आधार पर विकसित है। तथा वेदों को ही अपनी परम्परा का मूल मानता है। वेद जिस प्रकार अनादि है उसी प्रकार भारतीय दर्शन की चिन्तन परम्परा भी अनादि है।

शैवदर्शन भी इसी प्रवाह की प्रमुख धारा है। सदा से धर्म और दर्शन एक दूसरे के सहगामी और पूरक रहे है। धर्म के बिना दर्शन शुष्क है निष्प्राण है तथा दर्शन के बिना धर्म अन्धा है। अतः शैवदर्शन को भी शैवधर्म से जोड़ कर देखना ही औचित्यपूर्ण है।

जिस प्रकार निगम अर्थात् वेद उपनिषद भारतीय आस्तिक दर्शनों का मूलस्रोत माना जाता है। द्वैत, द्वैताद्वैत, दर्शन की भाँति आगमशास्त्र भी तीन शैव दार्शनिक विचारधाराओं का प्रवर्तन करता है-भेदवादी शैवसिद्धान्त (तमिलनाडु का) भेदाभेदवादी (कर्नाटक का) अभेदवादी अद्वैतशैवदर्शन या त्र्यम्बक शैव दर्शन (कश्मीर का)। कुछ विद्वानों का मत है कि आगमशास्त्र काश्मीरशैवदर्शन का ही एक भाग है। इसी कारण काश्मीर शैवदर्शन को स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र को उस दर्शन का भेद या उसी दर्शन के ही नाम से ही जाना जाता है।

अतः काश्मीर शैवदर्शन वह दर्शन है जो कि वैदिक धर्म को स्वीकार करते हुए भी अपनी आगमिक स्वभाव को अक्षुण्ण बनाये रखता है। अथवा इस तरह से भी कहा जा सकता है कि जो अपने आगमिक चिन्तन धारा के साथ वैदिक विचार और परम्परा की भी रक्षा करता रहा है।

शैवागम की इस अद्वैतवादी विचारधारा का विकास भारतवर्ष के कश्मीर क्षेत्र में ही हुआ और इस दर्शन के विद्वान् आचार्य भी इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रहे। वहीं के निवासी रहे। इसी कारण शैवागम की इस अद्वैतवादी विचारधारा को कश्मीर से बाहर देश-विदेश में काश्मीरशैवदर्शन के ही नाम से जाना गया। दर्शन की इस विचारधारा ने इसी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त किया। जिसका उल्लेख अपने 'काश्मीर शैविज्म' नामक ग्रन्थ में जे० जी० चटर्जी जी ने किया है।

कोई भी दार्शनिक सम्प्रदाय तभी पूर्ण माना जाता है, जब उसका व्यावहारिक पक्ष भी उतना ही सशस्त हो जितना सशक्त उसका सिद्धान्त पक्ष है। सिद्धान्तों की चर्चा बिना व्याहारिकता के मात्र कोरी कल्पना है। यही कारण है कि प्रत्येक दार्शनिक विचाधारा या सम्प्रदाय किसी न किसी व्यावहारिक मार्ग का उपदेश अवश्य देता है। ये व्यावहारिक मार्ग है: साधना, उपासना, या भक्ति, जिसे ज्ञान भक्ति तथा कर्म भी कहा जाता है।

काश्मीरशैवदर्शन का सिद्धान्त पक्ष का पूर्ण परिचय हमें प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में देखने को मिलता है। तथा व्यावहारिक पक्ष 'साधना पद्धति' स्पन्दशास्त्र में वर्णित है। इस प्रकार अपने सिद्धान्त तथा व्यवहार पक्ष के द्वारा काश्मीरशैवदर्शन अपने ज्ञान के प्रकाश से इस पृथिवी के मनुष्यों को आलोकित करता चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति जिस प्रकार निगम का आश्रय लेती है उसी प्रकार आगम का भी अवलम्बन करती है। इसी कारण भारतीय संस्कृति को निगमामूल कहा गया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय आगम तथा निगम के वैशिष्टय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "भारतीय संस्कृति के यथार्थ बोध के लिए वेद का ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही आगम का भी। दोनों के सुन्दर समन्वय पर ही भारतीय संस्कृति आधारित है।

निगम शब्द वेद का वाचक है जिसका अर्थ ज्ञान होता है। आगम शब्द शब्द तन्त्र का पर्यायवाची कहा गया है। आगम शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पतिमिश्र ने लिखा है—

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदय निःश्रेयसोपायाः स आगमः।

अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् उन्नति और कल्याण के मार्गों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र आगम है। तन्त्र शब्द का व्युत्पति परक अर्थ है-'तन्' धातु से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय के योग से तन्त्र शब्द निष्पन्न होता है—

तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्।[३२]

इस प्रकार तन्त्र शब्द आगम, शास्त्र, सिद्धान्त, विज्ञान तथा अनुष्ठान आदि अर्थो के लिए प्रयुक्त होता है। कहा गया है कि सतयुग में श्रुति, त्रेता में स्मृति द्वापर में पुराण तथा कलियुग में आगम की प्रधानता है—

कृते श्रुत्युक्त आचारः त्रेतायां स्मृति सम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः।।[३३]

तन्त्रशास्त्र के आचार्यों ने तन्त्रशास्त्र को आगम, यामल और तन्त्र इन तीन भागों में विभाजित किया। समयानुसार अनेक धर्म तथा समप्रदायों के उदय होने पर इसकी भी अनेक शाखाएं हो गयी जिसे संक्षेप में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—

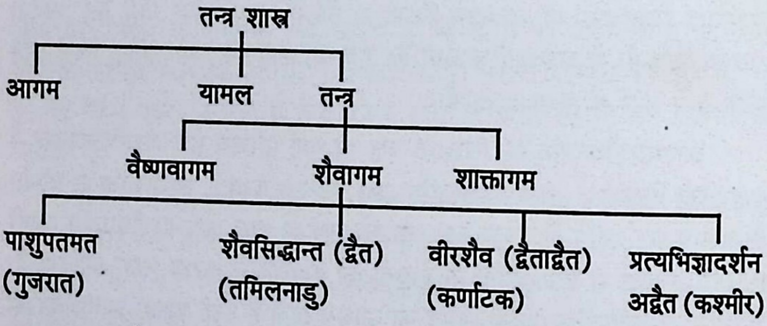

इस दर्शन का सीधा सम्बन्ध 'शिव' से है जो कि अनादि नित्य है। इस दृष्टि से शैव धर्म और दर्शन उतना ही प्राचीन है जितना सत् चित् आनन्द स्वरूप भगवान शिव। वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति में शिव की उपासना होती रही है। शुक्लयजर्वेद शतरूद्रीय, रुद्राष्टाध्यायी और इसकी पद्धति के अनुसार परमशिव की पूजा शैवधर्म की प्राचीनता को स्पष्ट करता है।

सरजॉन मार्शल ने अपनी पुस्तक 'मोहनजोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन' में लिखा है कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की खुदाई से पता चलता है कि शैवधर्म का इतिहास ताम्रपाषाणयुग या उससे भी पूर्व का है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह संसार का अत्यन्त प्राचीन धर्म है।[३४]

उपनिषदों तथा पुराणों में भी शैवधर्म की पर्याप्त चर्चा है। पश्चिम भारत के गुजरात प्रान्त में पाशुपत मत का प्रचार था। इसके संस्थापक लकुलीश है। इसका एक मात्र ग्रन्थ **माहेश्वर** रचित **पाशुपतसूत्र** मिलता है।

'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' काश्मीरशैवदर्शन, त्रिकदर्शनादि नामों से प्रख्यात है। इस अद्वैतशैवदर्शन का क्षेत्र कश्मीर है। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर में शैवधर्म का प्रचार अशोक से पूर्व था जो कि राजाश्रयों में पल्लवित और पुष्पित होता रहा। अद्वैत शैवदर्शन का कश्मीर में कब और कैसे प्रादुर्भाव हुआ इसका विस्तार से वर्णन आचार्य अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में किया है।[३५]

वाङ्मय

आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र इन तीन रूपों में काश्मीर शैवदर्शन के वाङ्मय को विभाजित किया गया है। काश्मीर शैवागमों की संख्या ६४ है जो गुरुशिष्य परम्परा से चली आ रही है।[३६] विज्ञानभैरवी के मतानुसार भी शैवागमों की उत्पत्ति भगवान शिव से मानी गयी है।[३७] शैवागमों में मलिनीविजयोत्तर तन्त्र, स्वच्छन्द-तन्त्र, मृगेन्द्रतन्त्र, विज्ञान-भैरव, नेत्रतन्त्र, परात्रिंशिका और शिवसूत्र प्रमुख है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण एवं प्राचीन मालिनीविजयोत्तर तन्त्र है जो सम्पूर्ण त्रिकदर्शन का मूलाधार है।

रुद्रयामलतन्त्र का भाग विज्ञान भैरव तथा परात्रिंशिका को माना गया है। कामिक आगम के भेद नेत्रतन्त्र तथा मृगेन्द्रतन्त्र है जो द्वैत सम्प्रदाय से सम्बन्धित है।

मालिनीविजयोत्तर तन्त्र

इस तन्त्र का मूलाधार सिद्धयोगेश्वरी तन्त्र है। इस ग्रन्थ का शैवतान्त्रिक सम्प्रदायों में महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ण विज्ञान के क्रम विचार से इसके दो नाम प्रसिद्ध है- पूर्वमालिनी उत्तरमालिनी। वर्णो की स्वाभाविक अभिव्यक्ति तथा ध्वनि विचार से संस्कृत वर्णमाला के शुद्ध वैज्ञानिक उदय क्रम का नाम पूर्वमालिनी है। जब इस दृष्टि के विचार न करके केवल स्वरों और व्यञ्जनों को क्रमरहित तथा अस्त-व्यस्तरूप से लिया जाता है तब उसे उत्तरमालिनी कहा जाता है। इसमें वर्णो के क्रम में 'न' आदि में और 'फ' अन्त में होता है। अतः उत्तरमालिनी को 'नादिफान्ता' कहा जाता है। देवी और परमेश्वर के संवादरूप यह ग्रन्थ है।[३८] साधकों के शरीर में मन्त्रशक्ति द्वारा दिव्य प्राण संक्रमित करने में मालिनी सर्वाधिक उपादेय है। तन्त्रालोक में इसकी व्याख्या इस प्रकार से है—

'श्री मालिनीविजयोत्तरे इति नादिफान्ताया मालिन्या विजयेन सवोत्कर्षेण उत्तरति सर्वस्त्रोतोभ्यः प्लवते, सारभूतत्वात्सर्वशास्त्राणाम्।'[३९]

इस ग्रन्थ में तेईस अधिकार है। इसमें आगम के महत्वपूर्ण अंग **योग** और उसकी क्रियाओं का विस्तृत निरूपण है। उपलब्ध मालिनीविजयोत्तरतन्त्र सिद्धयोगेश्वरी तन्त्र का उत्तरभाग प्रतीत होता है—

'श्रुणु देवि प्रवक्ष्यामि सिद्धयोगीश्वरीमतम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं मालिनीविजयोत्तरम्।।'[४०]

स्वच्छन्दतन्त्र

अद्वैतरूप भैरव तन्त्रों में स्वच्छन्द तन्त्र मुख्य है। इसकी प्रधानता स्वच्छन्दतन्त्र के चौथे भाग में वर्णित है—

समुद्भूतभैरवजातमध्ये प्रधानभूतं दिव्यं सर्वभोगाप वर्गप्रदं तन्त्रं, तत्त्वया गूहनीयं ज्येष्ठाशक्तिपातवतामेव प्रकाश्यं नेतरेषाम्।[४१]

यह शास्त्र शैवदीक्षा का सर्वाधिक प्रमाणिक शास्त्र है। उपासना और कर्मकाण्ड इसका वर्ण्य विषय है। काश्मीरशैव दर्शन के स्वातन्त्र्यस्वभाव भैरव अर्थात् शिव का पर्यायवाची ही स्वच्छन्द नाम है। इसकी उत्पत्ति भी देवी और भैरव के दार्शनिक संवाद से हुई।

'मुदितं भैरवं दृष्ट्वा देवीवचनमब्रवीत्।'[४२]

आचार्य क्षेमराज ने इस पुस्तक को खोजकर उसकी अशुद्धियों का निराकरण किया है।[४३] साथ ही पूर्ववर्ती टीकाकार भुल्लक का भी अनेक बार उल्लेख है। इस ग्रन्थ पर आचार्य क्षेमराज ने अपनी उद्योत टीका की भी रचना की है।[४४] इस ग्रन्थ में सभी प्रकार के भोग और मोक्ष का निरुपण करने के साथ ही पौराणिक शैली में अनेक स्थानों पर आख्यानों जैसे-प्रजापतिदक्ष, स्वाम्भुवमनु आदि का तथा पर्वतों नदियों द्वीपों आदि का भी वर्णन मिलता है। स्वच्छन्दतन्त्र में १५ अध्याय हैं। इसमें अधिवास, दीक्षा, अभिषेक, मन्त्रोंद्धार, मुद्रा आदि विषयों का सविस्तार विवेचन किया गया है। यह अद्वैततन्त्रों में प्रधान शास्त्र है। डॉ० के० सी० पाण्डेय ने इसका समय द्वितीय शताब्दी स्वीकार किया है। इसे शिव के दक्षिण मुख से उत्पन्न कहा गया है अन्तः साक्ष्यों के आधार पर यह तन्त्र अन्य तन्त्रों से अधिक अर्वाचीन माना जाता है क्योंकि इसमें पाशुपत-दर्शन, कामशास्त्र, चित्रशास्त्र, लकुलीश तथा व्यास वाल्मीकि आदि के भी वर्णन मिलते है।

विज्ञान-भैरव

रुद्रयामल का अन्तिम भाग विज्ञान भैरव को माना जाता है। इसका उद्भव

भी भैरव और देवी के संवाद रूप में हुआ है। इसे रुद्रयामल का सार कहा गया है। इसमें परमतत्त्व का निरुपण किया गया है तथा उसे प्राप्त करने के उपायों का वर्णन ११२ धारणाओं के रूप में किया गया है। विज्ञानभैरव पर आनन्दभट्ट ने कौमुदी टीका लिखी है इसके अतिरिक्त और भी अनेक टीकाएँ लिखी गयीं हैं। इसकी २४वीं कारिका तक आचार्य क्षेमराज ने विवृत्ति टीका लिखी है। विज्ञानभैरव को सर्वशक्ति प्रभेदों का हृदय कहा गया है।[४५]

स्वायम्भुवतन्त्रः

इस तन्त्र का प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका है।

नेत्रतन्त्र

काश्मीर शैवागम के साधना पक्ष से सम्बन्ध रखने वाला यह तन्त्र है। इस ग्रन्थ का भी अवतरण भैरव तथा भैरवी के संवाद रूप में ही हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रथम पटल में भैरव-भैरवी की जिज्ञासा के समाधान हेतु अपने अभेद स्वरूप को प्रकट करता है। इस ग्रन्थ में मोक्ष, यजनविधि, दीक्षा, अभिषेक-विधि, साधना-विधि आदि का विस्तार से विवेचन किया है। आचार्य क्षेमराज ने इसके अद्वैतमूलक रहस्य के उद्घाटन हेतु उद्योग वृत्तं की रचना की।[४६]

साधक को महान भय से छुटकारा दिलाते हुए उसे मुक्ति तक ले जाने के कारण इस तन्त्र का नाम 'नेत्रतन्त्र' है।

'नयते मोक्षभावं तु तारयेन्महतो भयात्।
नयनाच्च तथा त्राणान्नेत्रमित्यभिधीयते।।'[४७]

रुद्रयामल तन्त्र

विज्ञानभैरव, भवानीनामसहस्र, परात्रिंशिका आदि इसी रुद्रयामल तन्त्र के खण्ड है। इस तन्त्र की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि अभी तक अप्राप्य है।

शिवसूत्र

भगवान शिव की शिवशूत्रों के रचनाकार माने जाते हैं। शिवसूत्र वार्तिक में उल्लिखित है कि—

'शिवः सूत्रमरीरचत्। सूत्रमाह महेश्वरः।'[४८]

वसुगुप्त को स्वयं भगवान शिव ने ही स्वप्न में शिव सूत्रों का ज्ञान कराया।

इस बात का उल्लेख वसुगुप्त के शिष्य भट्ट कल्लट ने अपने स्पन्दसर्वस्व ग्रन्थ में किया है।[४९]

शिवसूत्रविमर्शिनी ग्रन्थ में आचार्य क्षेमराज ने उल्लेख किया है कि वसुगुप्त को शिवसूत्र महादेव पर्वत पर शिला पर उट्टङ्कित मिले थे।[५०]

भट्टकल्लट का समय अभिनवगुप्त और क्षेमराज से पूर्व का माना जाता है। अतः उसके कथन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। क्योंकि आत्मसाक्षात्कार कर लेने वाले शैवसिद्धों के लिए स्वप्न में शिव से ज्ञान प्राप्त करना कोई विशेष आश्चर्यजनक नहीं है। क्योंकि इस प्रकार की चर्चा सोमानन्द[५१] तथा महेश्वरानन्द[५२] ने भी की है। इसके साथ ही आत्म ज्ञान को प्राप्त अर्थात् प्रत्यभिज्ञा प्राप्त शैव योगी तत्त्वतः शिवस्वरूप ही होती है। अतः उसके विषय में स्वप्न में होने वाली अन्तःप्रेरणा या ज्ञान का रहना अनुचित भी नहीं है और निराधार भी नहीं है। शिवसूत्रों में प्रमुख व्याख्याकारों में आचार्य भास्कर, क्षेमराज तथा वरदराज हैं। भास्कराचार्य ने शिवसूत्रों के रहस्योद्घाटन हेतु ३९० श्लोकों में वार्तिक की रचना की थी।[५३]

ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में आचार्य अभिनवगुप्त ने भास्कराचार्य का उल्लेख किया है अतः यह अभिनवगुप्त से पूर्ववर्ती आचार्य माने गये है। जिनका समय ९५५ ई० के आस-पास ठहराया जाता है।[५४]

आचार्य क्षेमराज ने विमर्शिनी टीका के माध्यम से शिवसूत्रों के अर्थ को विस्तार प्रदान किया। आचार्य वरदाज ने भी वार्तिक द्वारा शिवसूत्रों की व्याख्या की आचार्य कल्लट ने भी तत्त्वार्थ चिन्तामणि नामक टीका के द्वारा शिवसूत्रों के अन्तिम खण्ड की व्याख्या प्रस्तुत की थी।[५५]

स्पन्दशास्त्र

यह शास्त्र काश्मीरशैवदर्शन के साधना पक्ष से सम्बन्धित है। यह स्पन्द कारिका का मूल ग्रन्थ है। अत्यन्त गम्भीर विचारों से ओतप्रोत इसके कारिकाओं की भाषा अत्यन्त सरल है। इसमें तीन निःष्यन्दों (अध्यायों) में निबद्ध इक्यावन (५१) कारिकायें है। प्रथम अध्याय की पच्चीस में सात कारिकाओं द्वारा सहज विद्योदयस्पन्द का विवेचन किया है। तथा तृतीय अध्याय के उन्नीस कारिकाओं द्वारा विभूतिस्पन्द का निरूपण किया गया है। आचार्य क्षेमराज ने इस इक्यावन कारिकाओं में निबद्ध सिद्धान्तों को ही 'स्पन्दशास्त्र' संज्ञा से अभिहित किया है।[५६]

इस शास्त्र में दार्शनिक शैली का प्रयोग नहीं किया है। इसमें केवल आगम की तरह सिद्धान्त का निरूपण किया गया है।

'स्पन्दकारिका' इस ग्रन्थ के रचयिता के विषय में काश्मीरशैवदर्शन के आचार्यों में थोड़ा मतभेद रहा है। आचार्य क्षेमराज के स्पन्दनिर्णय के अनुसार 'वसुगुप्त' को ही स्पन्दकारिका ग्रन्थ का रचनाकार माना जाता है।[५७] डॉ० के० सी० पाण्डेय ने भी अपने ग्रन्थ में 'दृब्धं' महादेवगिरौ कारिका के 'दृब्ध' शब्द के आधार पर विरोधी कथनों के साथ समायोजन तथा संगति बैठाकर स्पन्दकारिका का रचयिता वसुगुप्त को ही स्वीकार किया है कल्लटादि को नही।[५८] महार्थमञ्जरी के रचयिता महेश्‍रानन्दादि आचार्य भी क्षेमराज के मत से सहमत है।[५९]

स्पन्दशास्त्र का नामकरण भी कारण सहित है। परमेश्वर की स्वातन्त्र्यशक्ति सम्पूर्ण सर्ग संहार के विलास को दर्पणनगर के समान स्वभित्ति पर स्वयं ही दिखाती हुई किञ्चित् चञ्चलात्मक होने के कारण 'स्पन्द' कही गयी है। यह 'स्पन्द' या 'विमर्श' परमशिव का नित्य स्वभाव है। और इस स्पन्दास्वरूप आत्मभाव में विश्रान्ति ही जीवनमुक्ति है। यह स्पन्द-तत्त्व सभी प्राणियों में स्थित है।[६०] सभी मनुष्य अपने भीतर अनुस्यूत इस शिव-तत्त्व की अनुभूति करें। इसी का साधन या उपासना प्रतिपादन करने के कारण वसुगुप्त के इस शास्त्र को 'स्पन्दशास्त्र' कहा गया है।[६१]

प्रत्यभिज्ञाशास्त्र

प्रत्यभिज्ञाशास्त्र काश्मीरशैवदर्शन का दार्शनिक शास्त्र है। इस ग्रन्थ के द्वारा ही सर्वप्रथम अद्वैत-शैवमत का दार्शनिक शैली में विवेचन हुआ है।

आचार्य सोमानन्द ने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ शिवदृष्टि में इस दार्शनिक शैली का अविष्कार किया है। 'शिवदृष्टि' ग्रन्थ का 'दृष्टि' शब्द दर्शन का द्योतक है। तन्त्रालोक के टीकाकार आचार्य जयरथ ने इसी दर्शनशास्त्र की विशिष्ट शैली, जिसमें पूर्वपक्ष का खण्डन तथा शास्त्रानुमोदित सबल तर्कों के आधार पर स्वपक्ष की स्थापना की जाती है इत्यादि के आधार पर इसका कर्ता और व्याख्याता आचार्य सोमानन्द को माना है।

अपने 'शिवदृष्टि' ग्रन्थ में जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना आचार्य सोमानन्द ने की उसी की विस्तारपूर्वक व्याख्या प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में की गयी है।

स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में सिद्धान्त रूप में तत्त्वतः में कोई भेद तथा विरोध नहीं है।

उत्पलाचार्य ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में 'प्रत्यभिज्ञा' का विवेचन किया है। इसके साधनभूत तीन उपाय है। तीसरा उपाय जिसे शाम्भव उपाय कहते है उसके परिपक्व हो जोन पर अनुपाय कहा जाता है। इस अनुपाय को ही तन्त्रालोक में पूर्ण प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है।[६२] ये उपायत्रय मल प्रक्षालन के साधन है। जिसके द्वारा मल प्रक्षालित हो जाता है। तब आत्मप्रकाश से मनुष्य स्वयं प्रकाशित हो। उठता है। इस उपाय में उसे गुरुवचनादिमात्र से ही अपने परम ऐश्वर्य तथा उत्कर्ष का परामर्श हो जाता है। ये उपाय त्रय पातञ्जलयोग आदि के उपायों के समान कष्ट साध्य नहीं है। इसीलिए इन्हें 'सुघट' कहा गया है।[६३]

काश्मीरशैवदर्शन आचार्य परम्परा (वसुगुप्त)

आचार्य वसुगुप्त शैवदर्शन के प्रथम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित है। कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के समकालीन भट्टकल्लट इनका शिष्य था। जिसके आधार पर वसुगुप्त का समय नवीं शताब्दी का आरम्भ स्वीकार किया जाता है।

शिवसूत्र तथा स्पन्दशास्त्र वसुगुप्त की रचना है। इसमें सूत्रों की संख्या ७७ है। जिसे आणव, शाक्त तथा साम्भव तीन उपायों में विभाजित किया गया है। आचार्य क्षेमराज, वरदराज तथा भास्कर ने सूत्रों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। स्पन्दशास्त्र पर आचार्य भट्ट कल्लट की स्पन्दसर्वस्य वृत्ति, रामकण्ठ की स्पन्दविवृत्ति, उत्पलवैष्णव की स्पन्ददीपिका और आचार्य क्षेमराज की स्पन्दसन्दोह तथा स्पन्दनिर्णय वृत्ति प्राप्त है।

शैवदर्शन के विकास में आचार्य वसुगुप्त की अद्वितीय भूमिका है। भट्टकल्लट कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के समकालीन थे। वह एक सिद्ध पुरुष थे। राजतंरगिणी में ऐसा प्रसंग उद्धृत् है।

अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः।
अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन्।।[६४]

शिवसूत्रों पर आचार्य कल्लट कृत 'मधुवाहिनी' नामक एक अन्य वृत्ति का भी उल्लेख आता है जो कि सम्पूर्ण शिवसूत्रों पर लिखी गयी वृत्ति है जो अप्राप्य है।[६५]

निःसन्देह आचार्य वसुगुप्त काश्मीर के संस्थापक आचार्य थे। 'शिवसूत्र' तथा 'स्पन्दशास्त्र' काश्मीरशैवदर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सोमानन्द

प्रत्यभिज्ञादर्शन की परम्परा के द्वितीय उत्कृष्ट शैवदर्शन के आचार्य सोमानन्द है। इन्होंने अपने जीवनकाल तथा रचनाओं के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं दिया है। बहिः साक्ष्य के आधार पर इनके काल का निर्धारण किया गया है। राजानक रामकण्ठ के काल के द्वारा सोमानन्द का समय बताया जा सकता है। रामकण्ठ अवन्तिवर्मा के समकालीन थे उसी काल के भट्टकल्लट भी थे। अवन्तिवर्मा का शासनकाल ८५५-८८३ ई० रहा। अतः सोमानन्द का समय भी नवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है।

कल्लट के गुरु वसुगुप्त और रामकण्ठ के गुरु उत्पलदेव थे। उत्पलदेव ने वसुगुप्त के स्पन्दशात्र ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[६६] अतः उत्पलदेव वसुगुप्त से अवस्था में छोटे रहे होंगे। इस प्रकार उत्पलदेव के गुरु सोमानन्द वसुगुप्त के समकालीन होते हुए भी अवस्था में वसुगुप्त अवश्य बड़े रहे होगे। सोमानन्द और वसुगुप्त के जीवनकाल के सामीप्य को देखकर उनमें शिष्य और गुरु सम्बन्ध की सम्भावना व्यक्त की गयी है।[६७] लेकिन सोमानन्द ने 'शिवदृष्टि' में अपनी गुरु परम्परा में अपने पिता आनन्द को ही अपना गुरु कहा है। यह वंश परम्परा शैवशास्त्र के आचार्यों के अवतार की परम्परा है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रवर्तक आचार्य निर्विवाद रूप से सोमानन्द माने जाते हैं। इनका एक मात्र ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' ही प्राप्त है। सोमानन्द के पिता का नाम आनन्द था। सोमानन्दाचार्य ने शिवदृष्टि ग्रन्थ में जिस आधारभूत सिद्धान्त भी स्थापना की वही प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से ख्याति प्राप्त हुआ। आचार्य सोमानन्द प्रत्यभिज्ञा दर्शन के साथ साथ कुल और क्रमदर्शन के भी विद्वान् थे।

यद्यपि सोमानन्द ने स्पन्दकारिका तथा शिवसूत्र का उद्धरण अपने किसी भी ग्रन्थ में नहीं दिया फिर भी ऐसा लगता है कि उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की शैली तथा विषयवस्तु का प्रभाव उन पर था। क्योंकि आचार्य सोमानन्द की 'शिवदृष्टि' तथा वसुगुप्त की 'स्पन्दकारिका' में बहुत साम्य दिखता है। यह सभ्यता ही सिद्ध करती है कि सोमानन्द की 'शिवदृष्टि' स्पन्दकारिका से प्रभावित हुई है।[६८] क्योंकि स्पन्दकारिका तथा शिवसूत्र 'शिवदृष्टि' से पूर्व की रचनायें है।

कुछ विद्वानों ने आचार्य सोमानन्द की अनेक रचनाओं का वर्णन किया है ये है-शिवदृष्टि, वार्तिक, परात्रिशिंकाविवृत्ति।

उपर्युक्त सभी रचनाओं में शिवदृष्टि ही महत्वपूर्ण रचना है। इस ग्रन्थ ने न केवल कश्मीर में ही बल्कि कश्मीर से बाहर के क्षेत्रों में भी अद्वैतशैव सिद्धान्त का प्रचार किया है। शिवदृष्टि अनुष्टुप छन्द में लिखा गया है। इसमें सात सौ श्लोक है। विषयानुसार सात आह्निक में लिखा गया है।

प्रथमाह्निक में परदशा से लेकर घटपदादि पर्यन्त **'शिवता'** स्थिति कैसे और क्यों रहती है इसका निरूपण किया गया है। दूसरे में अद्वैत शब्द की व्याकरण की दृष्टि से विवेचना की गयी है। तीसरे में शाक्तों, द्वैतवादी शैवों तथा पातञ्जल मतानुयायियों के मतों का खण्डन किया गया है, चौथे आह्निक में इस दर्शन के सम्बन्ध में की जाने वाली शंकाओं का समाधान करते हुए शिवाद्वैत स्वरूप का तार्किक विवेचन किया गया है सातवें आह्निक का विषय सभी प्राणियों में अनुस्यूत अपनी शिवात्मभाव की अनुभूति का रहस्य और उससे प्राप्त होने वाली आनन्दावस्था है।

आचार्य सोमानन्द को इस ग्रन्थ रचना की प्रेरणा तथा इसका ज्ञान स्वप्न में 'शिव' द्वारा प्राप्त हुआ था[६९] तथा सोमानन्द ने अपने ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' में स्पष्ट लिखा भी है-

'शिवोदाता शिवो भोक्ता।'[७०]

इसके अतिरिक्त रुद्रयामल के एक अंश पर संक्षिप्त वृत्ति लिखी थी जिसका नाम परात्रिंशिकावृत्ति है। जो अप्राप्य है। जिसका उल्लेख उन्होंने ग्रन्थ परात्रिंशिका विवरण में कई बार किया है।[७१]

महेश्वरानन्द

महेश्वरानन्द माधव के पुत्र थे तथा इनके गुरु का नाम महाप्रकाश था।[७२] महेश्वरानन्द यह नाम इनके गुरु द्वारा दिया गया नाम था। इसके अतिरिक्त गोरक्ष इनका लोक प्रचलित नाम था।

गोरक्षो लोकधिया देशिकदृष्टया महेश्वरानन्दः।
उन्मीलयामि परिमलमन्तर्ग्राह्यं महार्थमञ्जर्याम्।।[७३]

उन्होंने स्वयं को देवपाणि सम्प्रदाय का बताया है।

श्री देवपाणि सम्प्रदायानुप्रविष्टैरस्माभिरनुसंन्धीयते।।[७४]

महेश्वरानन्द ने प्रत्यभिज्ञा मार्ग से ही आत्मज्ञान प्राप्त किया। अपने ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है।[७५]

महेश्वरानन्द के अविर्भाव-काल के विषय में यह अनुमान है कि इनका समय सोलहवीं शताब्दी ई० से पूर्व रहा होगा। क्योंकि कश्मीर काल परम्परा में साहिब कौल का समय १६२९ ई० निर्धारित है और कश्मीर के वर्तमान कौल यह मानते है कि महेश्वरानन्द उनके पूर्वज थे।

'महार्थमञ्जरी' महेश्वरानन्द का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त लगभग ग्यारह ग्रन्थों की रचना की है जिसमें केवल महार्थमंजरी तथा उस पर लिखी परिमल टीका ही प्राप्त होती है। शेष ग्रन्थों का संकेतमात्र परिमल में प्राप्त होता है। आचार्य महेश्वरानन्द ने साठ प्राकृत गाथाओं में त्रिकदर्शन के प्रतिपाद्य विषयों का विवेचन किया है। सिद्ध योगिनी ने स्वप्न में दर्शन देकर उन्हें इस शैवदर्शन ग्रन्थ रचना की प्रेरणा दी। जिसके परिणामस्वरूप आपने महार्थमंजरी की रचना की। इन प्राकृत गाथाओं की संस्कृत छाया तथा टीका लेखक ने ही की है।[७६] इस ग्रन्थ के माध्यम से महेश्वरानन्द ने दर्शन के दुरूह विषय को अलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया है। इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादि अनेक अलंकारों का भी प्रयोग किया है।[७७] महार्थमञ्जरी के त्रिवेन्द्रम तथा कश्मीर नाम से दो संस्करण प्राप्त होते है।

उत्पलदेव

आचार्य उत्पलदेव के पिता का नाम उदयाकर तथा पुत्र का नाम विभ्रमाकर था। उत्पलदेव आचार्य सोमानन्द के शिष्य थे। पद्मानन्द उत्पल के सहपाठी थे।[७८] उत्पलदेव का निवास स्थान गुप्तपुर था जो श्रीनगर में स्थित है।[७९]

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' आचार्य उत्पलदेव की सबसे महत्वपूर्ण रचना है। अभिनवगुप्ताचार्य के मतानुसार यह सोमानन्द के ज्ञान का प्रतिबिम्बि है।[८०]

यह रचना छन्दोबद्ध है जिसे सूत्र कहा गया है कश्मीर के शैवदर्शन साहित्य का यह मानदण्ड रूप आधार ग्रन्थ है जिसके कारण काश्मीरशैवदर्शन आज कश्मीर में तथा कश्मीर से बाहर 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के नाम से ख्याति प्राप्त है। इस ग्रन्थ पर आचार्य अभिनवगुप्त ने महत्वपूर्ण टीका लिखी है जिसका नाम 'विमर्शिनी' है।

इस ग्रन्थ में चार अध्याय है जिनके नाम हैं-ज्ञानाधिकार, क्रियाधिकार आगमाधिकार तथा तत्त्वार्थसंग्रहाधिकार। तत्त्व के अवबोध के लिए कश्मीरशैवदर्शन में ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ से श्रेष्ठ कोई ग्रन्थ नहीं है। इस ग्रन्थ की शैली तार्किक

शैली है तथा इसकी भाषा स्पष्ट और तथ्यपूर्ण है। अपने इस ग्रन्थ पर स्वयं उत्पलदेव ने भी एक टीका लिखी है जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने किया है, साथ ही आचार्य अभिनवगुप्त[८१] तथा क्षेमराज[८२] ने भी किया है। उत्पलदेव ने शिवदृष्टिपर भी वृत्ति लिखी है। जो अपूर्ण रूप में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त 'शिवस्तोस्त्रोवली' नाम से कृति उत्पलदेव के दार्शनिक होने के साथ-साथ इनकी काव्य प्रतिभा का भी परिचय कराती है।

आचार्य उत्पलदेव के समय के सम्बन्ध में कोई सटीक जानकारी तो प्राप्त नहीं है लेकिन यह सोमानन्द के शिष्य थे इसलिए इनके समय निर्धारण में विशेष बाधा नहीं है। अतः सोमानन्द के आस-पास के समय का ही इन्हें स्वीकार किया जाता है।

आचार्य लक्ष्मणगुप्त

आचार्य लक्ष्मणगुप्त आचार्य अभिनवगुप्त के गुरु तथा त्रिकदर्शन और क्रमदर्शन के प्रतिष्ठित विद्वान् थे।[८३] लक्ष्मणगुप्त आचार्य उत्पलदेव के पुत्र थे। अपने पिता से ज्ञान प्राप्त करने के कारण उनके शिष्य भी थे।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमार्शिनी ग्रन्थ में एक स्थान पर इन्हें श्रीशास्त्र का रचयिता बताया गया है।[८४] इससे यह अनुमान लगता है इनकी कोई रचना अवश्य रही होगी।

आचार्य अभिनवगुप्त के समय (९५० से ९७५ ई०) के आस-पास ही इनका समय निर्धारित होता है। आचार्य अभिनवगुप्त का गुरु होने के कारण काश्मीरशैवदर्शन के इतिहास में आचार्य लक्ष्मणगुप्त को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है।

आचार्य अभिनवगुप्त

अभिनवगुप्त नरसिंहगुप्त के पुत्र थे। तथा लक्ष्मणगुप्त अभिनवगुप्त के प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के गुरु थे।[८५] अभिनवगुप्त का समय ९५० ई० से ९७५ ई० के बीच माना गया है। अभिनवगुप्त एक शैवयोगी थे आज भी उन्हें काश्मीर-शैव दर्शन का श्रेष्ठ अधिकारी आचार्य माना जाता है। आचार्य उत्पलदेव की 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-कारिका' पर अभिनवगुप्त की विमर्शिनी टीका सर्वश्रेष्ठ टीका है जो इस ग्रन्थ के तत्त्वावबोधन का अत्यन्त साधन है। इसके अतिरित्त काश्मीरशैवदर्शन के साधनात्मक क्षेत्र में 'तन्त्रालोक' और परात्रिशिंका विवरण ये दो ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अभिनवगुप्त ने इसके अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थों की रचना की है, जैसे-परमार्थसार, बोधपंचदशिका, परमार्थचर्चा आदि। कोमलबुद्धि वालों के लिए तो उन्होंने 'तन्त्रसार' ग्रन्थ की रचना की जो 'तन्त्रालोक' ग्रन्थ का गद्य रूप में संक्षिप्त विवेचन है।

अभिनवगुप्त काव्यप्रतिभा से भी सम्पन्न थे। उनके भी अपने गुरु के समान दार्शनिक गीत मिलते हैं जैसे-क्रमस्तोत्र, भैरवस्तोत्रादि। ध्वनि और रस से सम्बन्धित काव्यपरक ग्रन्थ ध्वन्यालोकलोचन टीका प्रसिद्ध है।

आचार्य अभिनवगुप्त के अनेक गुरु थे जिनसे उन्होंने ब्रह्मविद्या, द्वैताद्वैतशैवदर्शन, त्रिकदर्शन, द्वैताद्वैततन्त्र, ध्वनिशास्त्र, व्याकरणशास्त्र तथा नाट्यशास्त्रादि विषयों की शिक्षा ग्रहण की। जिनका नाम्ना उल्लेख इस प्रकार से है—

१. नरसिंहगुप्त—ये आचार्य अभिनवगुप्त के पिता थे। इनसे उन्होंने व्याकरणशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की।

२. भूतिराजतनय—ये द्वैतवादी शैव सम्प्रदाय के गुरु थे। इनसे शैवदर्शन की शिक्षा प्राप्त की।

३. लक्ष्मणगुप्त—इनसे इन्होंने प्रत्यभिज्ञादर्शन, त्रिकदर्शन, और क्रमदर्शन की शिक्षा प्राप्त की।

४. वोमनाथ—इन्होंने अभिनवगुप्त को द्वैताद्वैत की शिक्षा दी।

५. इन्दुराज—ये ध्वनिशास्त्र के विद्वान् थे। इनसे ध्वनि-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की।

६. भट्टतौत—इनसे अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की शिक्षा ली।

७. भूतिराज—ये ब्रह्मविद्या के ज्ञाता थे। इनसे ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

कल्लट

आचार्य कल्लट अपने समय के विद्वान् आचार्य थे। इनकी गणना आचार्य अभिनवगुप्त ने क्रमदर्शन के आचार्यों में की है।[८६] स्पन्दकारिका में उनके क्रमशाखा के आचार्य होने का उल्लेख प्राप्त होता है।

आचार्य कल्लट द्वारा रचित कोई स्रोत नहीं मिलता जिससे इनके समय का

निर्धारण किया जा सके। आचार्य भट्टकल्लट वसुगुप्त के शिष्य थे। इसलिए इन्हें उनका समकालीन माना जा सकता है।[८७] आचार्य कल्लट प्रतिभाशाली तथा धार्मिक विद्वान् थे। आचार्य अभिनवगुप्त ने इनके द्वारा कुल-सिद्धान्त में योगदान का उल्लेख किया है।[८८]

'स्पन्दकारिका' शिवसूत्रों पर लिखी गयी रचना है आचार्य वसुगुप्त तथा कल्लट प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इससे सम्बन्धित है।

क्षेमराज

आचार्य क्षेमराज अभिनवगुप्त के शिष्यों में प्रथम थे। यह बात स्वयं अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में अपने शिष्यों की सूची देते समय लिखा है।[८९] अन्य आचार्यों ने भी उपलब्ध प्रमाणों से इस की पुष्टि की है। अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में बार-बार 'क्षेम' शब्द का प्रयोग किया है जो कि आचार्य क्षेमराज का ही बोध कराता है किसी अन्य का नहीं। स्वयं क्षेमराज भी 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' अपने ग्रन्थ में अपने को 'क्षेम' शब्द से उल्लिखित करते है।[९०] अपने गुरु आचार्य अभिनवगुप्त का जिन्होंने तन्त्र, काव्यशास्त्र तथा शैवदर्शन पर ग्रन्थ लिखा उन्हीं का अनुसरण आचार्य क्षेमराज ने भी किया। इन्होंने अभिनवगुप्त के लोचन पर उद्योत टीका लिखी। शिवसूत्रों पर 'शिवसूत्रविमर्शिनी' ग्रन्थ की रचना की जो आगमिक धारा की महत्वपूर्ण कृति कही जाती है। इसके अतिरिक्त स्पन्दशास्त्र पर स्पन्दनिर्णय तथा स्पन्दसन्दोह नाम वृत्ति लिखी जो कि उनके स्वतन्त्र प्रतिभा का परिचय देता है। तथा शैव शास्त्र की स्पन्द शाखा पर अभिनवगुप्त के दृष्टिकोण को विकसित करने का पूरा श्रेय देता है। त्रिकशास्त्र की परम्परा में शिवसूत्र विमर्शिनी का महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य क्षेमराज ने स्वच्छन्दतन्त्र, नेत्रतन्त्र तथा विज्ञानभैरव पर उद्योत वृत्ति लिखी है। नेत्रतन्त्र पर लिखी उद्योत टीका शैवदर्शन के क्रम-सिद्धान्त का विशेष रूप से प्रतिपादन करता है।

आचार्य क्षेमराज अपने काल के प्रकाण्ड तथा प्रतिष्ठित विद्वान् थे। जिसकी पुष्टि उनके द्वारा रचित ग्रन्थों, वृत्तियों आदि की गवेषणा से होती है। पराप्रवेशिका, प्रत्यभिज्ञाहृदयम् और भैरवानुकरण स्त्रोत्र आदि क्षेमराज के मौलिक ग्रन्थ है।

वरदराज

आचार्य वरदराज आचार्य क्षेमराज के शिष्य थे। जिसने कश्मीर जाकर

अपने गुरु क्षेमराज के मुख से शिवसूत्रों का श्रवण किया था। वरदाज के पिता मधुराज आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य थे।[९१]

आचार्य वरदराज के पिता मधुराज ने अपने ग्रन्थ **'गुरुनाथपरामर्श'** में लिखा है कि "मै अपनी आयु के चौहत्तरवें वर्ष में अभिनवगुप्त के गुरु-चरणों में शिष्यभाव से गया और चार वर्षो तक आचार्य अभिनवगुप्त के पादपद्मों में बैठकर मैनें शैवदर्शन का अद्वैतामृत प्राप्त किया था।[९२] इस प्रकार अभिनवगुप्त तथा क्षेमराज के समयानुसार वरदराज का काल ग्यारहवीं ई० शताब्दी के आसपास मानना तर्कसंगत है। शिवसूत्रवार्तिक के प० मधुसूदन कौल ने इन्हें सोलहवीं ईस्वी शताब्दी के निकट बताया है।[९३]

आचार्य भास्कर की गणना स्पन्दशाखा के आचार्यों में की जाती है। आचार्य भास्कर को गुरु परम्परा में सम्मिलित किया जाता है। आचार्य श्रीकण्ठ इनके गुरु थे।[९४] आचार्य भास्कर का समय नवीं शताब्दी के निकट माना जाता है।

क्रम-सिद्धान्त के आचार्यों में भी भास्कर की गणना की जाती है। भास्कराचार्य ने शिवसूत्र पर प्रसिद्ध वार्तिक की रचना की जिसके कारण विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।

भास्करकण्ठ

शैवाचार्यों में भास्करकण्ठ का भी नाम उल्लेखनीय है। इनकी गणना उत्तरवर्ती आचार्यों में की जाती है। इन्होंने नरोत्तमकौल को अपना गुरु बताया है—

'कौलनरोत्तमेभ्यश्च विद्योपदेशमासाद्य।'[९५]

आचार्य भास्करकण्ठ का समय सत्रहवीं शती ई० के उत्तरार्ध में होगा ऐसी सम्भावना है। भास्करकण्ठ की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी पर विद्वत्तापूर्ण वृत्ति प्राप्त होती है। जो भास्करी के नाम से जानी जाती है। यह वृत्ति अभिनवगुप्त की विमर्शिनी टीका को समझने में उपयोगी है।

साहिब कौल (आनन्द नाथ)

शैवाचार्यों की परम्परा में इनका विशिष्ट स्थान है। इन्होंने रुद्रयामलतन्त्र के भवानीनामसहस्त्र के आधार पर देवीनामविलास की रचना की थी। इनकी शैली कथात्मक शैली है। इस ग्रन्थ में १६ सर्ग हैं। सर्ग का नाम भक्ति है—जैसे प्रथमाभक्ति आदि। इस ग्रन्थ का आरम्भ कैलास पर्वत के सुन्दर दृश्य से आरम्भ

होता है। इसके पश्चात् इन्होंने कल्पवृक्ष नाम दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। जिसमें अपनी अवस्था चौदह वर्ष बतायी। इस प्रकार इनका समय सोलहवीं शताब्दी अनुमानित है।[९६] साहिब कौल के अन्य ग्रन्थ शिवसिद्धिनीति, शिवशक्तिविलास, चन्द्रमौलिस्तव, शारिकास्तव आदि उनके स्वात्मप्रकाश के स्फुरण की गीतात्मक अभिव्यक्ति है।

साहिब कोल ने अपनी माता का नाम बुद्धि तथा पिता का नाम श्रीकृष्ण कौल अपने ग्रन्थ में बताया है।

> **श्रीकृष्णात्मपरानुभूतिविभवः श्रीकृष्णकौलः सुतं।**
> **साहिबकौलमसूत यं च जननी बुद्धि प्रबुद्धि सती।।** [९७]

आचार्य जयरथ

आचार्य जयरथ क्रमदर्शन के आचार्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखते है।[९८] तन्त्रालोक के कुछ आह्निकों पर उनके द्वारा लिखी गयी वृत्ति क्रम सिद्धान्त के इतिहास को प्रतिष्ठित करती है साथ ही सांस्कृतिक तथा दार्शनिक नियमों का भी प्रतिपादन करती है।

आचार्य जयरथ का समय ग्यारहवीं तथा बारहवीं ईस्वी शताब्दी के मध्य माना जाता है। आचार्य जयरथ ने रूय्यक की रचना अलंकारसर्वस्य पर 'विमर्शिनी' टीका लिखी। आचार्य रूय्यक मङ्ख से पूर्व के थे। मङ्ख ने आचार्य जयरथ का समय ११५० ई० शती के पूर्व निर्धारित किया है।[९९]

इन्होंने शैवशास्त्र तथा आगमशास्त्र की शिक्षा कल्याण नामक विद्वान् से प्राप्त की थी तथा मीमांसा और व्याकरण की शिक्षा शंखधर से प्राप्त किया।[१००] 'तन्त्रालोक' पर लिखी गयी विवेक नाम टीका आचार्य जयरथ की श्रेष्ठ रचना है जिससे ज्ञात है कि वह एक प्रतिभाशाली विद्वान् थे। इन्होंने त्रिपुर-सिद्धान्त पर भी ग्रन्थ लिखा है। इसके अतिरिक्त 'स्तोत्र' नामक एक कृति भी इनके द्वारा रचित है। इसके कुछ श्लोक आचार्य शिवोपाध्याय ने अपनी रचना विज्ञानभैरव में उद्धृत् किये है।

इस प्रकार ८वीं ईस्वी शताब्दी से लेकर तन्त्रालोक के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य जयरथ के समय तक अर्थात १३वीं शताब्दी के आरम्भ तक काश्मीरशैवदर्शन का प्रशंसनीय विकास हुआ। इसके बाद काश्मीरशैवदर्शन पर मौलिक ग्रन्थ या टीका लिखने वालों की कमी दिखने लगी। जिससे इसके विकास की गति मन्द पड़ गयी, ऐसा अनुभव होता है।

क्षितिकण्ठ

काश्मीरशैवदर्शन की विकास परम्परा में ऐसे भी आचार्य हुए हैं जिन्हें किसी गुरुपरम्परा में नहीं रखा गया है। इनमें सर्वप्रथम आचार्य 'क्षितिकण्ठ' का नाम आता है।

काश्मीरशैवदर्शन की विकास धारा पर आचार्य जयरथ के बाद एक विराम सा प्रतीत होने लगता है। लेकिन इस विकास की धारा को क्षितिकण्ठ ने रूकने नहीं दिया और इसे आगे बढ़ाया। क्षितिकण्ठ ने छुट-पुट रचनायें की जिसका उल्लेख सिद्धिपाद में मिलता है।

आचार्य क्षितिकण्ठ ने 'महानयप्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की जो कश्मीरी अपभ्रंश भाषा में लिखित है।[१०१] यह ग्रन्थ काश्मीरशैवदर्शन के साधानात्मक योग से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त क्षितिकण्ठ ने 'स्तोत्रमाला' को अपनी रचना बतायी है।[१०२] इस नाम की दो हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट (पूना) में उपलब्ध है।[१०३] इससे यह सिद्ध होता है कि 'स्तोत्रमाला' क्षितिकण्ठ की ही रचना है।

'कौलसूत्र' में भी क्षितिकण्ठ का उल्लेख आया है।'[१०४] कौलसूत्र सौलह अध्यायों में विभक्त है, जिन्हें स्वरकला कहते हैं' 'इति मूलसूत्रेषु षोडशस्वरकला।' इनमें कुल सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इनकी 'न्यास' नाम की चौथी रचना भी प्रसिद्ध है।

आचार्य शिवोपाध्याय

आचार्य शिवोपाध्याय, ईसापूर्व सत्रहवीं शताब्दी के आचार्य है। इस समय तक 'क्रम-सिद्धान्त' का मत अपने उपसंहार रूप में पहुँच चुका था। शिवोपाध्याय 'क्रमदर्शन' के लेखक नहीं थे लेकिन विज्ञानभैरव पर वृत्ति लिखकर इन्होंने 'क्रम-मत' की व्याख्या करने में कोई अवकाश नहीं छोड़ा। यह विवृत्ति उन्होंने उस समय के राजा सुखजीवन के काल (१७५४-१७६२ ई०) में लिखा। विज्ञान भैरव के उपसंहार में जिसका उल्लेख भी है—

सुखजीवनाभिधाने रक्षति काश्मीरमण्डलं नृपतौ।
आगमन्निःशेषत्वं विज्ञानोद्द्योतसंग्रहः सुगमः।।[१०५]

आचार्य शिवापाध्याय का 'शिव' नाम था तथा उपाध्याय उनकी जाति थी।

नाम्ना शिवेतिगुणिकौशिकगोत्रजात्योपाध्याय...।[१०६]

आचार्य शिवोपाध्याय से पूर्व एक और शैवदर्शन के विद्वान् हुए थे जिनका नाम लक्ष्मीराम है। इन्होंने 'परात्रिंशिका' पर संक्षिप्त विवृत्ति लिखी थी अपना समय संवत् १७३२ बताया है।[१०७]

सन्दर्भ

१. मनुस्मृति -७/४३
२. कामन्दक -३-७
३. इण्डियन फिलॉसफी प्रथम भाग, डॉ० राधाकृष्णन, पृ० ४९-५०
४. 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।' -भगवद्गीता -२/७
५. भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र, पृ० १७ उद्धृत रुद्रयामल उत्तरतन्त्र धर्म और दर्शन, डॉ० रमाशंकर मिश्र-पृ० ८८
६. प्रत्यभिज्ञाहृदम् आचार्य क्षेमराज, भूमिका, पृ० ०१
७. काश्मीर शैविज्म, जे० सी० चटर्जी, दिल्ली परिमल प्रकाशन १९८७, पृ० १
८. शिवसूत्र विमर्शिनी, क्षेमराज, श्रीनगर, कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९११
९. तन्त्रालोक ३/३१
१०. वही, ३/३२
११. वही, ३५/३४
१२. तत्त्व (त्रिकशास्त्र) सिद्धानामकमालिन्याख्यखण्डत्रयात्मकत्वात्त्रिविधम्।-तन्त्रालोक, भा०-१, पृ० ४९
१३. स्वच्छन्दतन्त्र, पटल १/१५
१४. तन्त्रालोक, अ० ११/३
१५. वही, भा० १/प० ७, २०, तन्त्रालोक विवेक, भाग, पृ० १६
१६. महार्थमञ्जरी परिमल वृत्ति, पृ० ९६
१७. शिवदृष्टिवृत्ति, आ० २, पृ० ३६
१८. स्पन्दसन्दोह, पृ० १०
१९. तन्त्रालोक वि० भा०-१ पृ० २३८
२०. तन्त्रासार, पृ० ९२
२१. तन्त्रलोक वि भाग २, पृ० १८६
२२. स्पन्दनिर्णय, पृ० ३
२३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग-१, पृ० ९
२४. शिवदृष्टि आ० ७/१०७-१२१

२५. वही, ७/१२१
२६. अभिनवगुप्ता एन हिस्टोरिकल एण्ड फिलासोफिकल स्टडी, पृ० ७३
२७. शिवदृष्टि ७/११४-१२०
२८. अभिनगुप्त एन हिस्टोरिकल एण्ड फिलोसोफिकल स्टडी, पृ० ८७
२९. परात्रिंशिका विवरण, पृ० ११७
३०. तन्त्रालोक, भाग-१, पृ० ३०
३१. भास्करी भाग-२, भूमिका पृ० ३
३२. भारतीय दर्शन-आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० ४३२
३३. वही, पृ० ४३५
३४. प्रत्यभिज्ञाहृदय, जयदेवसिंह, भूमिका पृ० १
३५. तन्त्रालोक ३६, श्लोक १-१४
३६. शिवदृष्टि आ० ७/११२
३७. (क) परमार्थसार-डॉ० कमला द्विवेदी, भू० पृ० २५
(ख) विज्ञानभैरवविवृत्ति, पृ० ७
३८. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र, अधिकार १/१-१३
३९. तन्त्रालोक, भाग-१, पृ० ३५
४०. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र १/१३
४१. स्वच्छन्द तन्त्र, भाग ४, पृ० २६
४२. वही, पटल १/४-७
४३. वही, भाग-६, १४ पृ० १२०
४४. वही , प्रारम्भ
४५. रुद्रयामलतन्त्रस्य सारमद्यावधारितम्।
सर्वशक्ति प्रेभेदानां हृदयं ज्ञातमद्य च।। (विज्ञानभैरव , श्लोक-१६२)
४६. नेत्रतन्त्र, भाग-२, उपसंहार पृ० ३४३
४७. वही भाग-२, अधिकार २२/१२
४८. शिवसूत्रवार्तिक (भास्कराचार्य), पृ० ५
४९. स्पन्दवृत्ति, कल्लट, उपसंहार, पृ० ४०
५०. शिवसूत्रविमर्शिनी, पृ० २-३, स्पन्दनिर्णय, पृ० २
५१. शिवदृष्टि आ० ७/१०६
५२. महार्थमञ्जरी, पृ० १९१
५३. शिवूसत्रवार्तिक, पृ० ८८
५४. ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-१, पृ० १०
५५. शिवसूत्रवार्तिक, भूमिका, पृ० ३२

५६. स्पन्दनिर्णय, पृ० २
५७. वही, ४/२
५८. अभिनवगुप्त, हिस्टॉरिकल एण्ड फिलॉसोफिकल स्टडी, पृ० ९३
५९. महार्थमञ्जरी, छन्द-१ की वृत्ति
६०. स्पन्दनिर्णय, पृ० ३०
६१. वही, पृ० ३०
६२. तन्त्रालोक टीका, भाग-१, आ० २ पृ० ४०
६३. ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग २ पृ० २७१
६४. राजतरंगिणी, ५/६६
६५. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शविवृत्ति
६६. शिवदृष्टि वृत्ति, पृ०३
६७. काश्मीर शैविज्म, पृ० २५
६८. शिवदृष्टि पृ० ४, ११२, स्पन्दकारिका १/२, पृ० ९६
६९. शिवदृष्टि आ० १/१०६
७०. वही ७/१०५-६
७१. तदुक्तं सोमानन्दपादेः स्वविवृत्तौ।-परात्रिंशिका विवरण पृ० ६३
७२. महार्थमञ्जरी, पृ० २०२ तथा ४
७३. वही, पृ० १
७४. वही, पृ० १०८
७५. वही, पृ० २०२
७६. महार्थमञ्जरी, पृ० १९
७७. वही, पृ० १९
७८. शिवदृष्टिवृत्ति, प्रारम्भ, श्लोक-२
७९. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग-२, प्रस्तावना
८०. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग-१, पृ० २
८१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-१, पृ० ३
८२. स्पन्दनिर्णय, पृ० ४६
८३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीवृत्ति, भाग-२, पृ० १
८४. श्रीशास्त्रकृद्घाटितलक्ष्मणगुप्तपादसत्योपदर्शितशिवाद्वयवाद...। ई० प्र० वि० वि०, पृ० ४०६
८५. तन्त्रालोक, आ० १/३०
८६. तन्त्रालोक-पृ० २०८-२१२
८७. राजतरंगिणी-५/६६

८८. तन्त्रालोक-२९
८९. वही, पृ० ३७-६७
९०. प्रत्यभिज्ञाहृदय-१
९१. शिवसूत्रवार्तिक, उपसंहार
९२. गुरुनाथपरामर्श, श्लोक ३८-४० (उद्धृत् काश्मीर शैवदर्शन और कामायनी, भँवरलाल जोशी, भूमिका पृ० ३५
९३. शिवसूत्रवार्तिक, प्रस्ताव पृ० ४ (वरदराजकृत)
९४. शिवसूत्रविमर्शिनी १/८
९५. भास्करी
९६. देवीनामविलास, भूमिका
९७. देवीनामविलास, नवमी भक्ति, पृ० १८४
९८. तन्त्रालोक विवेक, पृ० ४३४
९९. श्रीकण्ठचरित, २५,३०
१००. तन्त्रालोकविवेक, पृ० ३१०
१०१. महानयप्रकाश, पृ० ४७-४८
१०२. वही, पृ० ४७-४८
१०३. MSS No. E. 568 & 569 of 188 4-86 Bori Poona
१०४. महानयप्रकाश, पृ० ६०
१०५. विज्ञानभैरव, उपसंहार
१०६. विज्ञानभैरव विवृत्ति, पृ० १४३
१०७. परात्रिंशिकाविवृत्ति, भूमिका पृ०-

पञ्चम अध्याय

आचार्य क्षेमराज

१. काल

आचार्य क्षेमराज के विषय में प्राप्त जानकारी के अनुसार यह माना जाता है कि आचार्य क्षेमराज आचार्याभिनवगुप्त के शिष्य थे। साथ ही स्पन्द तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' का समय १०१४ है।[१] जिसका उल्लेख भूमिका भाग में है। इस आधार पर आचार्य क्षेमराज का काल भी निर्धारित किया जा सकता है। चूँकि क्षेमराज आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य वर्गों में प्रमुख थे अतः अभिनवगुप्त कृत तन्त्रालोक में जो बार-बार क्षेम शब्द का प्रयोग हुआ है वह अन्य कोई नहीं बल्कि आचार्य क्षेमराज ही है। स्वयं इन्होंने भी अपनी रचना प्रत्यभिज्ञा हृदय में स्वयं को 'क्षेम' शब्द से उद्धृत् किया है।

> शांकरोपनिषत्सार प्रत्यभिज्ञामहोदधेः।
> क्षेमेणोद्ध्रियते सारः संसार विषशान्तये।।[२]

उपर्युक्त उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर आचार्य क्षेमराज का समय दशमी शताब्दी का उत्तरार्द्ध और ग्यारवहीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है।

आचार्य क्षेमराज ने अपने ग्रन्थों में कहीं पर भी अपने विषय में संकेत नहीं दिया है न ही अपने माता-पिता और पारिवारिक जीवन के विषय में कोई संकेत दिया है। केवल आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा दिये गये कुछ संकेतों से ही इनके विषय में कुछ पता चल पाता है। 'तंत्रालोक' में अभिनवगुप्त ने अपने शिष्यों की सूची में 'क्षेम' नाम को रखा है। तथा अपने ग्रन्थ में 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' में क्षेमराज ने भी अपने को 'क्षेम' शब्द से सम्बोधित किया है। इस प्रकार अभिनवगुप्त की शिष्य की श्रेणी में निःसन्देह रूप से इन्हें रखा गया है। साथ ही आचार्य क्षेमराज ने भी अपनी रचनाओं की भूमिका में **'अभिनवगुप्तपादपद्मोपजीविनः'** यह वाक्य लिखा है जो कि उनके शिष्यत्व को सिद्ध करता है। तथा वह अति श्रेष्ठ प्रिय शिष्य थे यह भी प्रमाणित करता है। क्योंकि आचार्य अभिनवगुप्त ने दूसरी सूची में अपने चचेरे भाईयों की भी गणना की है जिसमें क्षेम सर्वप्रथम नाम रखा है।

अन्ये पितृव्यतनयाः शिवशक्ति शुभ्राः।
क्षेमोत्पलभिनव-चक्रकपद्मगुप्ताः ॥[3]

डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय[4] ने अपनी पुस्तक में इस दिशा में सराहनीय योगदान दिया जिसके कि निराश हो चुके विद्वानों मनीषियों को प्रकाश की किरण मिल पायी। इस प्रकार क्षेमराज का काल अभिनवगुप्त के सम्बन्ध के आधार पर १०५७ ई० से ११२५ ई० निर्धारित होता है।

चूंकि क्षेमराज ने अपनी कृतियों में अपने समयादि का उल्लेख नहीं किया अतः इसका निर्धारण प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर अनुमान द्वारा ही किया जा सकता है। आचार्य क्षेमराज जो कि योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य थे साथ ही प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी थे।

नारायण भट्ट की 'स्तवचिन्तामणि' ग्रन्थ पर आचार्य क्षेमराज ने विवृत्ति नामक टीका ग्रन्थ लिखा। लिखित अंश के आधार पर यह ज्ञात होता है कि क्षेमराज श्रीनगर से ३० किलोमीटर पूर्व स्थित विजयेश्वर के रहने वाले थे।[5]

आचार्य क्षेमराज के विषय में यह शंका बार-बार उठाई जाती है कि क्या क्षेमराज तथा क्षेमेन्द्र, आयुर्वेद के छात्र क्षेमराज और क्षेमशर्म एक ही व्यक्ति है? अथवा ये काश्मीरशैवदर्शन के आचार्य क्षेमराज से भिन्न है। सन्देह का कारण 'स्पन्दसन्दोह' तथा 'स्पन्दनिर्णय' ग्रन्थ की कुछ हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की पुष्पिका में क्षेमराज के स्थान पर क्षेमेन्द्र नाम देखने को मिलता है। जिसका कारण केवल त्रुटि हो सकती है। क्योंकि प्रकाशन के बाद स्पन्दनिर्णय की पुष्पिका में क्षेमराज का ही नाम अंकित है क्षेमेन्द्र का नहीं।

कृतिः श्री प्रत्यभिज्ञाकार प्रशिष्य महामाहेश्वराचार्य श्रीमद्।
अभिनवगुप्तनाथदन्तोपदेशस्य श्री क्षेमराजस्येति शिवम्।।[6]

अभिनवगुप्त तथा क्षेमराज की रचनाओं का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि समसामयिक 'क्षेमेन्द्र' आचार्य क्षेमराज से सर्वथा भिन्न थे।[7]

तन्त्रालोक ग्रन्थ अभिनवगुप्त की प्रथम चरण की रचना मानी जाती है जिसका समय ९९० ई० के लगभग है। उस समय क्षेमराज उनके चचेरे भाईयों में प्रथम तथा पूर्ण शिक्षित थे। उन्हें शैवदर्शन के ग्रन्थों तथा तन्त्र को समझने की सामर्थ्य थी और उन्होंने भी अभिनवगुप्त से तन्त्रालोक लिखने की प्रार्थना की। इससे स्पष्ट है कि क्षेमराज ने अपना साहित्य-सृजन का कार्य अपने गुरु के अन्तिम दिनों में प्रारम्भ किया या उनके समाधि लेने के पश्चात शुरू किया। अतः इनका रचना काल १०१५-१०४५ ई० के मध्य सम्भावित है।

किन्तु क्षेमेन्द्र ने अपनी कृति 'दशावतारचरित' का समाप्ति काल १०६६ ई० बताया है।[८] क्षेमराज की अभिनवगुप्त के साथ निकटता थी किन्तु क्षेमेन्द्र की नहीं। यदि अभिनवगुप्त की शिष्य की श्रेणी में क्षेमेन्द्र को रखते है तो उन पर आचार्य अभिनवगुप्त के ज्ञान का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। और क्षेमराज ने अपने गुरु के समान ही शैवदर्शन, अलंकारशास्त्र और तन्त्रशास्त्र के क्षेत्र में अपनी रचनाकौशल व प्रतिभा का परिचय दिया है। किन्तु क्षेमेन्द्र की इसमें कोई रूचि नहीं दिखती बल्कि दर्शन के प्रति वह उपेक्षा का भी भाव रहते है।[९]

अत: स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जो क्षेमराज को क्षेमेन्द्र सिद्ध करने का प्रयास था वह निरर्थक था, क्योंकि दोनों व्यक्तियों का नाम, स्थान तथा कार्य क्षेत्र भिन्न-भिन्न है।

२. व्यक्तित्व

शैवागमों के बीच से प्रस्फुटित जिस शैवदर्शन के अंकुर को अभिनवगुप्त ने अपनी प्रतिभा रूपी जल से अभिसिंचित करके एक विशाल वृक्ष का रूप दिया उस वृक्ष का संरक्षण तथा संवर्धन आचार्य क्षेमराज ने किया। आचार्य क्षेमराज की प्रतिभा गुरु के उपदेशों से संवलित होकर पवित्र शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हुए अपने चरम बिन्दु पर पहुँची। उनकी प्रतिभा गुरु की भाँति सर्वतोन्मुखी थी। तन्त्रसाहित्य का कोई अंश अछूता नहीं रहा।

आचार्य क्षेमराज अपने समय के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसका प्रमाण उनके द्वारा रचित शास्त्रों, ग्रन्थों की वृत्तियों द्वारा मिलता है। अनेकों ग्रन्थों पर आपके द्वारा लिखी गयी टीकाएँ भी प्राप्त है जैसे-नेत्रतन्त्र तथा विज्ञानभैरव पर 'उद्योतटीका', स्पन्दशास्त्र पर 'निर्णय' टीका, शिवसूत्र पर 'विमर्शिनी' टीका। इसके अतिरिक्त 'स्पन्दसन्दोह' ग्रन्थ स्पन्दशास्त्र की एक कारिका की मात्र व्याख्या होने पर भी क्षेमराज की स्वतंत्र प्रतिभा का परिचय देती है। प्रत्याभिज्ञाहृदय, पराप्रवेशिका, भैरवानुकरणस्तोत्रादि उनके मौलिक ग्रन्थ हैं।[१०]

क्षेमराज के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों पर ही उनके गुरु आचार्य अभिनवगुप्त की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है क्योंकि अपने गुरु के समान इन्होंने भी व्याख्या लिखने में अधिक रूचि दिखाई तथा अपने गुरु की शैली का भी अनुकरण किया जिसका प्रभाव उनकी कृतियों में पद-पद पर परिलक्षित होता है। आचार्य क्षेमराज के त्रिकदर्शन और साहित्यशास्त्र से सम्बन्धित जो रचनायें है उससे आज का विद्वत् समाज लाभान्वित होने के साथ ही साथ अनुप्राणित भी हो रहा है। गुरु

भट्टतौत जो कि आचार्य अभिनवगुप्त के काव्यशास्त्र के आचार्य थे उन्होंने कवि को ऋषि कहा है क्योंकि कवि में प्रतिभा का निवास होता है। और उसका उन्मेष उसकी वर्णना शक्ति में हुआ करता है। प्रतिभा के द्वारा ही कवि अपूर्व सृष्टि का निर्माण अपनी वाणी से कर देता है।

'प्रतिभा अपूर्ववस्तु निर्माणक्षमाप्रज्ञा।'[११]

'प्रतिभा' ईश्वरप्रदत्त वरदान है। सौभाग्य से आचार्य क्षेमराज को ऐसे श्रेष्ठ तथा दिव्य गुरु का संरक्षण मिला जिससे उनकी प्रतिभा का समुचित पुष्पन और पल्लवन हुआ। जिसके कारण आज उनके लिखे हुए साहित्य प्रौढ़ तथा समृद्ध साहित्य है। प्रत्याभिज्ञाहृदयम् ग्रन्थ में उनकी दार्शनिक प्रतिभा के साथ उनके कवि हृदय का भी हम अनुभव करते है।[१२]

क्षेमराज दर्शन के तत्त्वों की मीमांसा करते समय भी काव्यशास्त्रीय उपमादि अलंकारों का प्रयोग करते है। आचार्य क्षेमराज की प्रखर मेधा में विषयों को ग्रहण करने की जितनी तीव्र तथा सशक्त शक्ति थी उतनी ही अभिव्यक्ति की भी क्षमता थी। दार्शनिक मीमांसा में उनकीं उपमाएँ बड़ी सटीक होती है जिससे विषय स्वत: ही स्फूर्त हो जाता है। वह चिति की उपमा वह्नि से तथा नीलपीतादि की उपमा ईधन से देते है।[१३] ये उपमाएँ क्षेमराज के काव्यानुशीलन के परिचायक होने के साथ ही इनकी वर्णना शक्ति के भी द्योतक है। इसके अतिरिक्त प्राचीन सूत्रों की विशद वैदुष्यपूर्ण व्याख्या भी इनकी विशिष्ट प्रतिभा का उन्मेषण है।

क्षेमराज के गुरु आचार्य अभिनवगुप्त तो थे ही इनके साथ ही क्षेमराज ने प्रयोग आदि को भी गुरुओं के रूप में स्मरण किया है।[१४]

जिस प्रकार से आचार्य अभिनवगुप्त ने तन्त्र, शैवदर्शन तथा काव्यशास्त्र तीनों पर अपनी लेखनी चलायी उसी का अनुसरण क्षेमराज ने भी किया। क्षेमराज ने सर्वप्रथम कौन सा ग्रन्थ लिखा ऐसा कुछ प्रमाणित रूप से नहीं कहा जा सकता है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने सर्वप्रथम शैवदर्शन पर ही ग्रन्थ लिखा होगा। चाहे कुछ भी हो शैवशास्त्र की स्पन्द शाखा पर अभिनवगुप्त की दृष्टि का विकास और विस्तार करने वाले तो क्षेमराज ही है। इनके द्वारा शिवसूत्रों पर रची गयी 'शिवसूत्रविमर्शिनी' वस्तुत: आगमिक धारा की विलक्षण प्रतिभा है। जिसकी व्याख्या करते समय सभी आगम ग्रन्थों के उद्धरण तथा पूर्ण व्याख्याकारों के मतों को पुष्ट करते हुए विस्तार से विवेचन किया गया है। यही कारण है कि त्रिकशास्त्र की परम्परा में शिवसूत्र विमर्शिनी का महत्वपूर्ण स्थान है।

'नेत्रतन्त्र' की 'उद्योत' टीका के क्षेमराज ने शैवदर्शन के 'क्रम' सिद्धान्त को एक विशिष्ट सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया है। ऐसा लगता है कि उन्होंने क्रम सिद्धान्त का विशेष रूप से अध्ययन किया और इसके बाद वे क्रम सिद्धान्त के प्रमुख विचारक कहलाये।[१५] इसके अतिरिक्त आचार्य क्षेमराज ने पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत क्रमसूत्र के कुछ सूत्रों पर भी टीका लिखी है जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने प्रत्यभिज्ञाहृदय में किया है।

'तदुक्तं पूर्वगुरुभिः स्वभाषामयेषु क्रमसूत्रेषु।'[१६]

पूर्वाचार्यों ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उनमें जो गुत्थियाँ रह गयी थी उनकों विस्तार से सुलझाने का श्रेय आचार्य क्षेमराज को ही जाता है। इन्होंने त्रिकदर्शन की स्पन्दशाखा को व्यवस्थित ढंग से अभिव्यक्त किया। 'चिति' का सिद्धान्त यद्यपि उत्पल तथा अभिनवगुप्त के मानस का अंकुर है किन्तु उसे विशद् रूप देने का कार्य क्षेमराज ने किया। भारतीय-तत्त्व-चिन्तन में जिस प्रकार से वाचस्पति मिश्र का स्थान है उसी प्रकार से काश्मीर त्रिकशास्त्र में आचार्य क्षेमराज का स्थान है।

जिस योगिक क्रिया का विशद निरूपण क्षेमराज ने प्रस्तुत किया है वह मात्र सिद्धान्त ज्ञान के आधार पर नहीं अपितु उसका एक-एक अक्षर इस बात का प्रमाण है कि उस मार्ग से वह स्वयं गुजरे थे।[१७] अभिनवगुप्त तथा उत्पल ने **'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा'** तथा **'चेतयति इति चितिः'** इत्यादि के द्वारा चिति का निर्देश मात्र किया है। प्रत्यभिज्ञान के साथ उसके मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध की मीमांसा आचार्य क्षेमराज ने किया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शैवागमों और अपने पूर्वजों से प्राप्त परम्परा को जिसे अभिनवगुप्त विस्तार रूप देना चाहते थे उसमें आचार्य क्षेमराज का विशेष योगदान रहा है।

३. रचनायें

आचार्य क्षेमराज की रचनाओं के विषय में विद्वानों में कुछ मतभेद भी दिखाई पड़ता है। डॉ० के० सी० पाण्डेय ने क्षेमराज की रचनाओं की संख्या १८ बतायी है। डॉ० नटराजन के अनुसार इनकी संख्या २० है। उपर्युक्त दोनों विद्वानों ने जो रचनाओं की नाम-सूची प्रस्तुत की है उनमें भी भिन्नता है। डॉ० कान्तिचन्द्रपाण्डेय ने जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनमें पाँच ग्रन्थों का उल्लेख डॉ) नटराजन ने नहीं किया है जिनमें नाम निम्नलिखित है—

१. ध्वन्यालोकलोचनोद्योत
२. प्रत्यभिज्ञाहृदय-टीका
३. क्रमसूत्र-टीका-वृत्ति
४. स्तोत्रग्रन्थ
५. उत्पलकृत परमेशस्तोत्रावली वृत्ति।

इस प्रकार से डॉ० पाण्डेय ने भी डॉ० नटराजन के छः ग्रन्थों का उल्लेख अपने ग्रन्थसूची में नहीं किया है, ये इस प्रकार से हैं—

१. षड्विंशतत्त्वसन्दोह
२. परमार्थ-संग्रह
३. वामोदय
४. शिवस्तोत्र
५. स्पन्दनिर्णय
६. स्वच्छन्दतन्त्र

डॉ० नवजीवन रस्तोगी ने अपने ग्रन्थ The Karma Tantricism of Kashmir, Vol-I में क्षेमराज के कुछ अन्य ग्रन्थों के विषय में भी तथ्यात्मक संकेत दिया है। स्वयं क्षेमराज ने अपने ग्रन्थों में कुछ ऐसे उद्धरण दिये है जिनसे ज्ञात होता है। उनकी प्रमाणिक कृतियों के नाम निम्नलिखित है—

१. स्वच्छन्दोद्योत
२. नेत्रोद्योत
३. विज्ञानभैरवोद्योत
४. ध्वन्यालोकलोचन
५. स्पन्दसन्दोह
६. स्पन्दनिर्णय
७. स्तवचिन्तामणि पर विवृत्ति
८. पराप्रवेशिका
९. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
१०. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् पर भाष्य
११. भैरवानुकरणस्तोत्र
१२. परमार्थसंग्रह की विवृत्ति
१३. शिवसूत्रविमर्शिनी
१४. शिवस्तोत्रावली विवृत्ति
१५. शाम्बपञ्चाशिका पर टीका
१६. क्रमसूत्र पर भाष्य
१७. उत्पल की परमेशस्तोत्रावली पर विवृत्ति।

आचार्य क्षेमराज ने अपने गुरु अभिनवगुप्त का अनुकरण करते हुए तीन विषयों पर ग्रन्थों की रचना की है—

१. तन्त्र, २. शैवदर्शन, ३. साहित्य

ऐसी सम्भावना की जाती है कि उन्होंने अपने लेखन का आरम्भ तान्त्रिक विषयों से किया और अन्त में शैवदर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की। आचार्य क्षेमराज द्वारा रचित कुछ ग्रन्थों का संक्षेप में विवेचन निम्नलिखित है—

१. स्वच्छन्दोद्योत

आचार्य क्षेमराज की यह प्रथम रचना प्रतीत होती है। यह स्वच्छन्द तन्त्र पर उद्योत नामक टीका है। क्षेमराज ने इसका उल्लेख शिवसूत्र विमर्शिनी[१८] में किया है। यह शैवदर्शन का प्रमाणिक ग्रन्थ है। इसमें शिव की शक्ति का विशद निरूपण किया गया है। अद्वैत तंत्र में इसे प्रधान माना गया है।

समुद्धृत भैरवतन्त्रजातमध्ये प्रधानभूतं दिव्यं।
ज्येष्ठाशक्तिपातवातमेव प्रकाश्यं नेतरेषाम्।।[१९]

इस तन्त्र का विषय उपासना और कर्मकाण्ड है। इस तन्त्र का उद्भव देवी भैरव के बीच दार्शनिक संवाद से हुआ है।[२०] इस शास्त्र में १५ पटल है जिसमें अर्चा, तन्त्रोद्धार, दीक्षाभिषेक, तत्त्वादि दीक्षादि रहस्यात्मक साधना सम्बन्धी विषयों का विस्तृत विवेचन हुआ है। आचार्य क्षेमराज ने इस तन्त्र की पुरातन पुस्तक का अन्वेषण करके यथासम्भव उन अशुद्धियों का निराकरण करने का प्रयास किया है।[२१] इस शास्त्र के पूर्ववर्ती टीकाकार भुल्लक का भी स्थान-स्थान पर स्वच्छन्दतन्त्र की टीका में उल्लेख किया गया है—

यन्तु श्री भुल्लक-इति अपठत् तदसंगतत्वादुपेक्ष्यमेव।[२२]

इस तन्त्रशास्त्र में अनेक पौराणिक आख्यानों का भी वर्णन आया है जैसे-दक्षप्रजापति, स्वयम्भुव मनु आदि के आख्यानों के साथ, पर्वतों, भू-भाग, द्वीपों, नदियों का भी वर्णन विस्तार से मिलता है। इसके साथ ही इस ग्रन्थ में शिव की स्वातन्त्र शक्ति का विशद् विवेचन हुआ है। और सिद्धान्त का प्रतिपादन सरलतम रीतिं से किया गया है जो कि इस ग्रन्थ की विशेषता है।

२. विज्ञानभैरवोद्योत

विज्ञानभैरव पर आचार्य क्षेमराज की विवृत्ति है। यह रुद्रयामलतन्त्र का सार रूप है इसकी भी उद्भावना देवी और भैरव के संवाद रूप में है। इसमें काश्मीर शैवागम के ज्ञान और योगक्षेम का विवेचन है। इस ग्रन्थ पर भट्टआनन्द की विज्ञानकौमुदी टीका भी है।

विज्ञानभैरव की तीन टीकाओं का संग्रह प्राप्त है। इस ग्रन्थ के २३ श्लोक तक क्षेमराज की विवृत्ति और २४वें श्लोक से १६३ तक शिवोपाध्याय द्वारा रचित विवृत्ति नाम टीका प्राप्त होती है। विज्ञानभैरव भीरू जनों को अभय प्रदान करने वाला है तथा संसार के भय को नष्ट करने वाला है। क्षेमराज ने विज्ञान

भैरवोद्योत विवृत्ति के आरम्भ में विज्ञान रूप भैरव, शिवा परावाक् और शिवतत्त्व के स्वरूप पर चर्चा की है इस ग्रन्थ के तृतीय श्लोक में ऐसी सरस्वती देवता का भी वर्णन आया है जो शास्त्रों द्वारा भक्त के मन को अभिसिंचित करती है तथा उनके तापों को नष्ट करती है इस ग्रन्थ में आगे जीवनमुक्ति की भी कल्पना करते हैं कि बुद्धि रूपी मन्द्राचल पर्वत के द्वारा आगमशास्त्र रूपी समुद्र का मन्थन करके उपलब्ध यह शिवतत्त्व अमृत रूप है। ग्रन्थ के आरम्भ में भैरव के स्वरूप का भी विशद विवेचन किया गया है। भैरव पूर्णरूप से अहम् विमर्श रूप है। यह प्रपञ्चादि कार्यो को करने वाला है जो कि निमेषण के कारण उनमें अन्तर्लीन रहती है और जब उसका उन्मेष होता है तो वह ज्ञान, क्रिया, इच्छादि शक्ति के माध्यम से सदाशिवादिक तत्त्वों के रूप में प्रकट होती है। यह निमज्जन और उन्मज्जन रुद्रयामल का भाव है। इस अद्वयवादी सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह ये ईश्वर के पाँच कार्य माने जाते हैं। देवी भी भैरव रूप है क्योंकि वह भी भय के द्वारा सबको केन्द्रित करने वाली है। वह भैरव से अनेक प्रकार से गुह्य तत्त्वों का ज्ञान कराने के लिए आग्रह भी करती है। और वह रुद्रयामल के सम्पूर्ण अभेद रूप त्रिकशास्त्र के तत्त्व का ज्ञान भैरव से सुनती है—

> **श्रुतं देव मया सर्वं रुद्रयामलसंभवम्।**
> **त्रिकभेदमशेषेण सारात्सारविभागशः।**
> **अद्यापि न निवृत्तौ मे संशयः परमेश्वरः।।**[२३]

देवी भैरव से कई प्रशन करती है कि क्या भैरव तत्त्व ब्रह्म रूप है? परा, अपरा, परापरा नाम तीन शक्तियों वाला है? क्या नाद बिन्दु वाला है? क्या वह मूलाधार आदि चक्रों में आरुढ़ है? क्या वह स्व-रहित सकारात्मक प्राण कुण्डली रूप है? या वह शक्ति के रूप में विद्यमान है।

> **किं रूपं तत्त्वतो देव शब्द राशिकलामयम्।**
> **किं वा नवात्मभेदेन भैरवे भैरवाकृतौ।**
> **त्रिशिरोभेदभिन्नं वा किं वा शक्तियात्मकम्।**
> **नादबिन्दुमयं वाऽपि किं चन्द्रार्धनिरोधिकाः।**
> **चक्रारुढ़मनष्कं वा किं वा शक्तिस्वरूपकम्।।**[२४]

देवी के स्वरूप के विषय में भी प्रश्न है कि वह परा देवी का स्वरूप है या अपरा देवी का स्वरूप है। वर्णो के श्वेतादि भेद तथा अक्षरादि भेद से तथा सुर-नर, तिर्यकादि के भेद से पर-तत्त्व नहीं हो सकता। इस अनुभव की यथार्थता के विषय में देवी भैरव से जिज्ञासा करती है—

'परापरायाः सकलमपरायाश्च वा पुनः।
पराया यदि तद्वत् स्यात् परत्वं तद्विरुध्यते।
नहि वर्णभेदेन देह भेदेन वा भवेत्।
परत्वं निष्कलत्वेन सकलत्वेन वा भवेत्।
प्रसादं कुरु में नाथ निःशेषं छन्धि संशयम्।।'[२५]

भैरवी की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए भैरव तैयार हो जाते है और सर्वाधिक गुह्य तत्त्वों की न्याख्या करते है। क्योंकि वह देवी परमतत्त्व में एकाकार होने के कारण गुह्यतम् तत्त्वों को जानने योग्य है।[२६] भैरव रहस्योद्घाटन से पूर्व हेय वस्तु के त्याग तथा उपादेय के ग्रहण करने पर बल देते हैं।

विज्ञान भैरव में उस परमतत्त्व की विवेचना करते समय उपनिषद् के नेति-नेति पद्धति का प्रयोग दिखाई देता है। क्योंकि वह न तो शब्दराशि स्वरूप है, न शक्तित्रयात्मक रूप है, न नाद बिन्दु रूप है, न षट्चक्र का भेदन करने वाला है, और न ही कुण्डलिनी आदि शक्ति स्वरूप ही है। इसीलिए आचार्य क्षेमराज ने उसे पारमार्थिक रूप से अवर्णनीय कहा है, किन्तु किसी न किसी कल्पना के माध्यम से उसका निर्वचन करने का साहस किया जाता है।[२७]

इसकी पुष्टि करने के लिए क्षेमराज ने ईश्वर प्रत्याभिज्ञाविमर्शिनी की कारिका को उद्धृत किया है जिसमें बताया है कि स्वातन्त्रय **'आत्मा'** का सहज स्वभाव है इसी कारण परमशिव, ईश, प्रभु आदि संकल्पों के द्वारा अपने स्वरूप की अनेक प्रकार से संकल्पना करके अनेकों प्रकार के व्यवहार उपस्थित करता है—

स्वातन्त्र्यामुक्तमात्मानं स्वातन्त्रयादद्वयात्मनः।
प्रभुरीशादिसंकल्पैनिर्माय व्यवहारयेत्।।[२८]

इन नाना रूप कल्पना स्वरूप का औचित्य है कि यह परम तत्त्व को समझने में सहायक है। अप्रबुद्ध मनुष्यों के लिए अनेक प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के ईश्वर के स्वरूप साधन रूप में बताये गये है जिससे धीरे-धीरे व्यक्ति उन भगवत् स्वरूपों के प्रति आसक्त हो जाता है। यह उसी प्रकार से होता है जैसे माँ बालक के हठ को शास्त्रों में वर्णित अनेक उपायों द्वारा दूर करती है। शास्त्र भी मनुष्यों को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ समझाकर ईश्वर अराधना की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार प्राणी धीरे-धीरे भैरव-भाव को प्राप्त करने की स्थिति से युक्त हो जाते हैं भैरव के साथ ऐक्य की यह अवस्था परा-देवी या परावस्था कहलाती है। जिसका आधार उसकी प्रकृष्टता है।[२९]

क्षेमराज के अनुसार भैरव की यह अवस्था कोई स्थिति नहीं है बल्कि उसका स्वरूप ही है जो कालादि जन्य नहीं है। इस स्थिति में भैरव भैरवी है इनमें कोई भेद नही है। भैरव का स्वरूप शक्ति है जो विश्वनिर्माण करने की सामर्थ्य से युक्त है। और यह शक्ति चिदानन्द आत्मा की है![३०] अग्नि और उसकी दाहकता जिस प्रकार अभिन्न है। दाहशक्तित्त्व से परिच्छिन्न अग्नि का स्वभाव है। अग्नि के ज्ञान में यह दाहकता शक्ति-तत्त्व प्रथम उपाय है इस ज्ञान के बाद ही अग्नि के पञ्चकत्व आदि अनन्त शक्ति का ज्ञान होता है।[३१]

प्राणी जब साधनों के द्वारा पराशक्ति अवस्था में प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् शक्ति और शिव में भेद दृष्टि समाप्त हो जाती है इस स्थिति में जीवन शाक्त-बल से युक्त होकर पूर्ण शिवस्वरूप हो जाता है यह शिव की शैवी शक्ति है जो आगमों के अनुसार शिवस्वरूप में प्रवेश करने के द्वार है।

जिस प्रकार दिन में सूर्य के प्रकाश से और रात्रि में दीपक के प्रकाश से विद्यमान पदार्थों का ज्ञान होता है उसी प्रकार प्रेरणा रूप अपनी ही शक्ति से शिव का ज्ञान और प्रत्यभिज्ञान किया जाता है।[३२]

आचार्य क्षेमराज ने विज्ञान भैरव के १४वें तथा १५वें श्लोक में परमतत्त्व के निष्कल स्वरूप की चर्चा करते हुए बताया है कि वह परमतत्त्व दिशा और काल की कल्पना तथा सीमा से मुक्त है, वह स्वप्रकाश रूप आनन्द से युक्त है, स्थान की दूरी की दृष्टि से भी उसकी स्थिति नहीं है वह दूर है कि समीप है, यह नहीं कहा जा सकता, वह मध्यमा वाणी का भी विषय नहीं है। अविद्या का विषय न होने के कारण वैखरी वाणी से भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता वह स्वात्मभित्ति पर आभासित होने वाला है, वह जगत से आच्छादित नहीं है उसकी कोई आकृति नहीं है सम्पूर्ण विश्व उसका अवभासक है। वह स्थान और नामकरण से रहित है। पारमार्थिक रूप से यह अवर्णनीय है।[३३]

२. नेत्रोद्योत

क्षेमराज द्वारा नेत्रतन्त्र पर लिखी गयी टीका है। इस तन्त्र का सम्बन्ध काश्मीर शैवागम की साधना पक्ष से है। साधक को मुक्ति तक ले जाने (नयते) तथा महान भय से उसका त्राण (रक्षा) करने के कारण इस तन्त्र का नाम नेत्रतन्त्र है।[३४] नेत्रतन्त्र भी भैरव और भैरवी के संवाद रूप है। भैरव प्रथम पटल में भैरवी की जिज्ञासा को शान्त करते हुए अपने सर्वात्मक अभेद स्वरूप को प्रकट करता

है। अन्य शेष पटल में मोक्ष तथा सिद्धि प्रदान करने वाले मंत्रों, भजनविधि मुक्तिफल प्रदायनी दीक्षा, साधनविधि, अभिषेकविधि, परध्यानविधि, सूक्ष्म ध्यान विधि इत्यादि साधनात्मक बिन्दुओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। स्वच्छन्दतन्त्र के समान यह तन्त्र भी द्वैत व्याख्या परक था। इसके द्वैतभाव को दूर करने के लिए तथा इसके अद्वैतमूलक रहस्योद्‌घाटन के लिएं ही क्षेमराज ने इस तन्त्र पर उद्योत वृत्ति टीका की रचना की।

४. ध्वन्यालोकलोचनोद्योत

आचार्य अभिनवगुप्त के ध्वन्यालोकलोचन पर लिखी गयी यह टीका है। 'ध्वन्यालोक' आचार्य आनन्दवर्धन का ध्वनि सम्बन्धी प्रख्यात ग्रन्थ है जिस पर अभिनवगुप्त ने 'लोचन' नामक टीका लिखी। और इस लोचन टीका पर आचार्य क्षेमराज ने 'उद्योत' नामक टीका की रचना की। यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। यदि यह प्राप्त हो जाता तो 'लोचन' की अनेक गुत्थियाँ इसके द्वारा हल हो जाती है।

ध्वन्यालोक ग्रन्थ चार उद्योतो में विभक्त है ध्वन्यालोक का लक्ष्य ध्वनि की सिद्धान्त रूप में स्थापना है। प्रथम उद्योत में ध्वनि के सम्बन्ध में तीन विपरीत मतों को प्रस्तुत करते हुए उसका समाधान करते हुए ध्वनि की परिभाषा प्रस्तुत की गयी है। द्वितीय उद्योत में ध्वनिकाव्य के भेदों का निरुपण किया गया है। तृतीय उद्योत में व्यङ्ग्य (रस) ध्वनि के भेदों का वर्णन करते हुए उसे उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ उद्योग में प्रतिभा के आनन्त्य विस्तार का निरूपण है। प्रतिभा से सम्पन्न कवि ध्वनि-तत्त्व का आश्रय लेकर काव्य के शब्द, अर्थ भावादि में चमत्कार उत्पन्न कर सकता है। जो स्थान व्याकरणशास्त्र में महाभाष्य का है वही स्थान साहित्यशास्त्र में ध्वन्यालोकलोचन टीका का है।

५. स्पन्दसन्दोह

इस ग्रन्थ के माध्यम से आचार्य क्षेमराज ने आचार्य उत्पल द्वारा रचित 'स्पन्दकारिका' की मात्र प्रथम कारिका पर व्याख्या की है। इसके द्वारा क्षेमराज ने सम्पूर्ण स्पन्दशास्त्र पर प्रकाश डालने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। 'स्पन्दकारिका' के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों में मतभेद है। कुछ इसे 'कल्लट' की रचना मानते हैं तो कुछ 'उत्पल' की। महेश्वरानन्द तथा क्षेमराज ने तो इसे दोनों की कृति न मानकर आचार्य 'वसुगुप्त' की कृति माना है।

६. स्पन्द-निर्णय

यह टीका सम्पूर्ण 'स्पन्दकारिका' पर लिखी गयी है। क्षेमराज ने स्पन्दसन्दोह की रचना के बाद स्पन्दकारिका पर 'निर्णय' नामक वृत्ति लिखकर स्पन्दशास्त्र का सम्यक् रूप से अर्थ अभिव्यक्त कराकर अन्य टीकाकारों के समक्ष अपनी टीका की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है। क्षेमराज ने सहृदय विवेकशील विद्वानों से अपनी इस टीका का मूल्यांकन करने का भी निवेदन किया है।

७. शिवसूत्रविमर्शिनी

वसुगुप्त विरचित शिवसूत्रों पर क्षेमराज द्वारा प्रस्तुत विमर्शिनी एक बृहद व्याख्या है। इसमें त्रिकदर्शन के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन अत्यन्त सरल तथा वैदुष्यपूर्ण ढंग से किया गया है। क्षेमराज ने ७७ शिवसूत्रों पर वृत्ति लिखी है। यदि सूत्र भाग को पृथक कर दिया जाये तो विमर्शिनी स्वयं में एक ग्रन्थ का रूप ले सकती है। यह इस टीका की सफलता है। और विशेषता भी है।

८. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

सूत्र तथा वृत्ति की शैली में लिखा गया यह ग्रन्थ अत्यन्त सुबोध और महत्वपूर्ण है। प्रत्यभिज्ञादर्शन को सरलता से समझने के लिए ही क्षेमराज ने इस ग्रन्थ की रचना की थी।

इह ये सुकुमार....उन्मील्यते।[३५]

यह ग्रन्थ काश्मीर शैव दर्शन की उन गिनी-चुनी कृतियों में है जिसकी गणना कश्मीर में ही नहीं बल्कि दक्षिण में भी दार्शनिक तथा धार्मिक ग्रन्थ के रूप में होती है। प्रो० जगदीशचन्द्र चटर्जी ने काश्मीरशिवाद्वयवाद से इस ग्रन्थ का वही सम्बन्ध बताते है जो सम्बन्ध सदानन्द के 'वेदान्तसार' का वेदान्त से है।

प्रत्यभिज्ञाहृदय भारतीय दर्शन की आत्मा है। इस ग्रन्थ में धार्मिक तथा दार्शनिक दोनों उपदेशों तथा व्याख्यानों का सामञ्जस्य है। इस ग्रन्थ में उल्लिखित सिद्धान्त जहाँ एक ओर साधक को 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञान' के लिए तत्त्वोपदेश देते है वही दूसरी ओर तत्त्व-चिन्तन के लिए उस परमेश्वर के रहस्य का ज्ञान कराते हैं। अपनी इस विशेषता के कारण यह ग्रन्थ क्षेमराज की ही कृतियों में अपना विशेष स्थान नहीं रखता अपितु काश्मीरशिवाद्वयवाद सम्बन्धी अन्य रचनाओं में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

९. स्तवचिन्तामणि विवृत्ति

'स्तवचिन्तामणि' भट्टनारायण विरचित ग्रन्थ है। इस स्तवचिन्तामणि पर विवृत्ति आचार्य क्षेमराज ने शूरादित्य की भक्ति बहुलता के कारण लिखा है। ऐसा स्वयं क्षेमराज ही कहते है।[३६]

१०. उत्पलस्तोत्रावली टीका

यह आचार्य उत्पल के स्तोत्रों पर लिखी गयी टीका है। इसमें आचार्य क्षेमराज ने स्तोत्रों के गूढ़ रहस्यों को अत्यन्त सरल तथा सुबोध रीति से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

११. क्रमस्तोत्र टीका

उत्पलाचार्य के क्रमस्तोत्र पर यह टीका लिखी गयी है। महेश्वरानन्द ने अपने महार्थमञ्जरी में इसका उल्लेख किया है।[३७] इसी तथ्य के आधार पर क्षेमराज को इस टीका का लेखक माना जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलता है जो कि इस तथ्य को सिद्ध कर सके।

१२. एकस्तोत्र

इसके विषय में क्षेमराज ने शिवस्तोत्रावली की विवृत्ति में तथा स्तवचिन्तामणि की विवृत्ति में इसका उल्लेख किया है।

१३. भैरवानुकरण स्तोत्र

साम्बपञ्चाशिका की टीका में इस स्तोत्र का उल्लेख क्षेमराज ने किया है। तथा स्वच्छन्दोद्योत, स्तवचिन्तामणि की टीकाओं में भी इसका संकेत मिलता है।

१४. परमार्थसंग्रह विवृत्ति

यह मूल रूप से आचार्य अभिनगुप्त की रचना मानी जाती है। क्षेमराज की इस पर विवृत्ति नामक टीका है। डॉ० ब्हूलर के मतानुसार कश्मीर कैटलॉग में भी इनके नाम का उल्लेख किया गया है।

१५. तत्त्व सन्दोह

इक्कीस श्लोकों में निबद्ध इस रचना पर राजानक आनन्द द्वारा रचित विवरण नामक टीका भी उपलब्ध है। इसका प्रथम श्लोक प्रथमतत्त्व के रूप में

स्पन्द स्वरूप शिवतत्त्व के परिचय से प्रारम्भ हआ है। जो अपनी स्वतन्त्र इच्छा से सम्पूर्ण जगत की सृष्टि करने के लिए स्पन्दित होता है। उसकी इच्छा उसके साथ रहने वाली शक्ति स्वरूपा है यही शक्ति उसके अन्त: स्थल में छिपी हुई सम्पूर्ण चराचर जगत का बीज है। और यही इच्छा जगत रूप में आच्छादित होकर विलास को प्राप्त करती है। इस समय सम्पूर्ण अनुग्रह से युक्त परमशिव सदाशिव हो जाते है। इसमें भेदबुद्धि उत्पन्न करने वाले तत्त्व को माया शक्ति कहा है। जो समस्त जीवों में भेद बुद्धि उत्पन्न करती है। परमशिव इसी शक्ति के द्वारा सीमित होकर अपनी समस्त शक्तियों को संकुचित कर लेता है। वह शिव सम्पूर्ण कर्ता रूप है। वह सर्वज्ञ है सर्व शक्तिमान है। उसकी शक्ति नित्य है जो परिसीमित होनेपर कालतत्त्व का रूप धारण कर लेती है। उसकी स्वतन्त्र शक्ति ही संकोचशील होती है और नियति रूप में सभी को नियंत्रित करती है। बुद्धि आदि को उत्पन्न करने वाली चिदात्मा शक्ति उसी की है जो रजोगुणयुक्त और अहंकार स्वरूप है। बोध का निर्णय कराने के कारण यह बुद्घि की सतोगुण से युक्त और ज्ञान वाली भी है। उसकी माया शक्ति से तमोमय मन की उत्पत्ति होती है। जिसमें वह मन कभी-कभी सत्त्व तथा रजोगुण प्रधान हो जाता है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, सूक्ष्मभूत तथा स्थूलभूत आदि छत्तीस तत्त्व शिवतत्त्व स्वरूप ही है।

१६. साम्बपञ्चाशिका टीका

साम्बमिश्र की साम्बपंचाशिका पर यह टीका लिखी गयी है जो कि क्षेमराज द्वारा रचित है। यह टीका क्षेमराज के काश्मीरशैवदर्शन के आधार पर लिखी है। साम्ब का अर्थ शब्दकोश में 'शिव' मिलता है। किन्तु क्षेमराज ने इसकी व्याख्या करते समय साम्ब का अर्थ 'शिव' नहीं लिखा है। साम्बपञ्चाशिका एक स्तुतिपरक ग्रन्थ है इसमें प्रारम्भ से अन्त तक आदित्य की स्तुति की गयी है। साम्ब द्वारा आदित्य के अनेक कार्यों तथा शक्तियों का वर्णन किया गया है। आदित्य विश्व कल्याण के लिए अनेक रूपों को धारण करते है तथा अपने भक्तों की रक्षा करते है। आदित्य मुक्ति प्रदान करने वाले भी हैं। क्योंकि सौरमण्डल तथा सृष्टि में मनुष्य लोक का अनादिकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। सूर्य, चन्द्र, नवग्रह सप्तर्षिगण, मरुद्गण आदि देवताओं का सम्बन्ध सौरमण्डल से है। इन सभी का प्रतिनिधित्व सूर्य तथा चन्द्रमा द्वारा होता है। तेजो निधान भगवान् भुवनभास्कर श्री सूर्यनारायणदेव ब्रह्माण्ड की असंख्य शक्तियों के संचालक है। इसी तेजोमय प्रत्यक्ष देव की उपासना करने से समस्त देहधारी तेज और मुक्ति प्राप्त करते है।

१७. पराप्रवेशिका

आचार्य क्षेमराज ने अत्यन्त अल्प शब्दों में इस ग्रन्थ में गहन दर्शन को समाहित किया है इस लघु ग्रन्थ में काश्मीरशैवदर्शन के समस्त इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें जगत को आभासित करने वाले छत्तीस तत्त्वों का विवेचन उनके लक्षण सहित बताया गया है। जगत की समस्त वस्तुओं में परमशिव का अवभासन करना ही आचार्य क्षेमराज का उद्देश्य है जो कि इस ग्रन्थ का भी उद्देश्य है और ग्रन्थ में परिलक्षित भी हो रहा है। वह कहते हैं कि जैसे 'बरगद के एक छोटे से बीज में विशालकाय वृक्ष विद्यमान रहता है वैसे ही सम्पूर्ण चराचर जगत परमेश्वर के हृदय में स्थित रहता है—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थ विश्वमेतच्चराचरम्।।

परमात्मा को पराप्रवेशिका में 'प्रकाशविमर्शमय' माना गया है। इसी विमर्श को चैतन्य, चिति, परावाक् परमेश्वर का ऐश्वर्य तथा उसका प्रथम स्पन्द, स्वातन्त्र्यादि अनेक संज्ञायों से अभिहित किया गया है। घटादि पदार्थों का पारमार्थिक रूप जिस प्रकार से मिट्टी है उसी प्रकार से जगत के ३६ तत्त्वों का पारमार्थिक रूप यह परम शिव है। **यह परम शिव ही समस्त पदार्थों को अपने रूप में अवभासित करता है समस्त तत्त्व इसी से उत्पन्न होकर इसी में लय को प्राप्त हो जाते हैं।**

पराप्रवेशिका का मुख्य विषय 'छत्तीस-तत्त्व-विवेचन', काश्मीरशैवदर्शन के सिद्धान्तों का वर्णन के साथ अवभासादि सिद्धान्तों का वर्णन है। स्वभाव से नित्य और समस्त कारणों का मूल कारण है—पराशक्ति तत्त्व। पराशक्ति तत्त्व की उपासना अनादिकाल से चली आ रही है। उसका स्वरूपगुण सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म, अभौतिक, सहस्त्रों उदयोन्मुख सूर्य की ज्योति तथा अनन्त प्रकाश से प्रकाशित है जिसका आकार विद्युतपुञ्ज की भाँति दैदीप्यमान है जिससे चन्द्रमा की शान्त और मोहक किरणें निकलती है। परमेश्वर द्वारा सृष्टि रचना का उद्देश्य क्या है इसके कारण कई हो सकते हैं उनमें एक ईश्वर की इच्छा **'एकोऽहं बहुस्याम...।'** है। जिसके अनुसार अव्यक्त कारण को क्रमशः व्यक्त, शब्द ब्रह्म, परा, प्राण, प्रणव, आदि के द्वारा अभिहित किया जाता है।

आचार्य क्षेमराज पराशक्ति का उल्लेख परमशिव की शक्ति के रूप में करते है इसी से युक्त होकर वह सृष्टि और संहारादि क्रियाएं है। यह शक्ति देश कालादि

की सीमा से परे है। इसकी न तो कोई संज्ञा रखी जा सकती है, न ही पारमार्थिक रूप से या तात्त्विक रूप से इसकी अभिव्यक्ति की जा सकती है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहकता शक्ति एक दूसरे से भिन्न नहीं है उनमें धर्म-धर्मी का सम्बन्ध है उसी प्रकार क्षेमराज ने उस पराशक्ति को शिव से अभिन्न माना है। इसी शक्ति से युक्त होकर अणु जब शिव में समाविष्ट होता है तो वह शिव स्वरूप हो जाता है।

आचार्य क्षेमराज ने परमेश्वर के प्रथम स्पन्द को जो कि विश्वसृष्टि की इच्छा है उसे शक्ति कहा है—

अस्य जगत् स्त्रष्टुमिच्छा परिगृहीतवतः
परमेश्वरस्य प्रथम स्पन्देवेच्छा शक्तित्त्वम्।[३८]

समस्त व्यक्त और अव्यक्त विश्व को प्राणवान बनाने वाली शक्ति का नाम 'शिव' है। जो प्रत्येक पदार्थों की आत्मभूत चेतन सत्ता है तथा शाश्वत रूप में विद्यमान है। चेतन की क्रिया का स्वतन्त्र कर्ता होने के कारण ही शिव चैतन्य स्वरूप है।

इस शिवतत्त्व को पराप्रवेशिका में इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति से सम्पन्न पूर्ण आनन्द स्वरूप बताया गया है।[३९] शिव चित, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया इन पाँच शक्तियों से युक्त है जिसके समानाधिकरण से ऐश्वर्य की सिद्धि होती है।[४०]

प्रत्यभिज्ञाहृदय में आचार्य क्षेमराज ने दो स्थानों पर पञ्चकृत्य शब्द का प्रयोग किया है।[४१] ये पाँच कर्म-सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह बताये है।

पञ्चविधं तत्कृत्यं सृष्टिस्थितिसंहार तिरोभावः।
तद्वदनुग्रहकरणं प्रोक्तं सततोदितस्यास्य।।[४२]

जैसे ही परमेश्वर के हृदय में विश्वसृष्टि की इच्छा उत्पन्न होती है वैसे ही उसके दो रूप हो जाते है-शिव तथा शक्ति रूप। शिव प्रकाश रूप है तथा शक्ति विमर्श रूप है। बिना शक्ति के शिव को अपने प्रकाश रूप का ज्ञान नहीं होता। शिव के चेतनतत्त्व का ज्ञान शक्ति के कारण ही होता है। शक्ति के बिना शिव 'शव' है। शिव और शक्ति का एक साथ स्फुरण होता है इन दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है।

परमशिव ही सर्वत्र अपने ही स्वरूप का अवभासन करते हुए अपनी लीला में मग्न है। उस परमशिव का स्वातन्त्र्य विश्वात्मा भाव से अपने विमर्श का

अवभासन ही है। आचार्य क्षेमराज इसी शिव को नमस्कार करते हैं जो 'पञ्चकृत्य का विधायक है और परमार्थ तत्त्व का अवभासक है—

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने।
चिदानन्दघनस्वातन्त्र्यपरमार्थावभासने।।[४३]

क्षेमराज के अनुसार परमेश्वर में जो इदम रूपात्मक आभास है उसी का उन्मेष और निमेष होता है।[४४]

परमशिव में छत्तीस-तत्त्व समरूपता से अन्तर्निहित रहते है। शैवदर्शन के अनुसार परमशिव से इसी क्रम में सृष्टि होती है तथा प्रलयावस्था में ठीक इसके विपरीत अपने से पहले-पहले तत्त्वों में विश्रान्ति होते हुए अन्त में परमशिव में विलीन हो जाता है।

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्धा विद्या ये पाँच शुद्धाध्व कहलाते हैं। क्योंकि इनका सर्जन और अवभासन परमशिव की स्वेच्छा है।[४५] परमशिव का यह शुद्धाध्व हमारी मन, बुद्धि, इन्द्रिय, कालादि से परे है। इन अवस्थाओं के प्रमाता भी हमारी इन्द्रियों के विषय नहीं हैं। परमशिव में छत्तीस तत्त्वों में शिव प्रथम तत्त्व है। पराप्रवेशिका में इच्छा, ज्ञान, क्रियात्मक से युक्त केवल पूर्ण आनन्द स्वभाव वाले परमशिव को शिवतत्त्व कहा गया है।[४६]

शिवतत्त्व में परमशिव का ज्ञान या चित्-तत्त्व का प्राधान्य है और शक्ति तत्त्व में उनके आनन्द की प्रधानता है। सृष्टि के विकास में सदाशिव प्रथम-तत्त्व है जिससे ही सत् का ज्ञान होता है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में उल्लेख आया है कि शिवशक्ति की सामरस्य अवस्था में तो सत् असत् जैसे विकल्पों का उदय भी नहीं होता इसी कारण इसे सदाख्य कहा गया है-

यतः प्रभृति सदिति प्रख्या, सदाख्यायाश्च सदाशिव
शब्दरूपाया इदं वाच्यं तत्त्वम्। तत्सदाख्यं तत्त्वं।[४७]

ईश्वरतत्त्व शिव की इच्छा बहिर्मुख स्पन्द है इसकी अभिव्यक्ति शिव की इच्छा में क्रियाशक्ति के उद्रेक से होती है।[४८] सदाशिव तत्त्व परमात्मा का अन्तर्निमेष है तो ईश्वर तत्त्व उसका बहिरून्मेष है।[४९]

ईश्वर, सदाशिव, शक्ति तथा शिव अपने स्वरूपों का संवेदन शुद्धा विधा तत्त्व के द्वारा करते है।

माया अशुद्धाध्व की प्रथम अवस्था है। क्षेमराज ने माया को अपने ही

स्वरूप वाले भाव पदार्थों में भेद करने वाला तत्त्व बताया है।[५०] माया का ही दूसरा नाम मोह है जो आच्छादन रूप है।[५१] अहम् तथा इदम् का प्रकट भेद ही अशुद्धाध्व है। इस अध्व माया को छोड़कर समस्त तत्त्वों का परिमितिकरण हो जाता है। और स्वरूप परिछिन्न हो जाता है।

जिस पुरुष में माया के कारण ज्ञान शक्ति का ह्रास हो चुका था उसी पुरुष को विद्या-तत्त्व के कारण किञ्चित जानामि की अनुभूति होती है।[५२]

नियति के कारण ही मनुष्यों की रूचि किसी विशेष कार्य या पदार्थ के प्रति होती है तन्त्रालोक के छठे आह्निक में इसका उल्लेख हआ है।[५३]

क्षेमराज के पराप्रवेशिका में इसका सन्दर्भ मिलता है 'यह मेरा कर्तव्य है यह मेरा कर्तव्य नहीं है इसके नियमन का कारण भी नियति ही है।

ममेदं कर्तव्य नेदं कर्तव्यम् इति नियमनः हेतुः नियतिः।[५४]

परमेश्वर की शक्ति जो नित्यता रूप है वह संकुचित होकर जब आत्मा को जन्म-मृत्यु प्रदान करती हुई अनित्य या परिच्छिन्न बना देती है तब उसे काल तत्त्व कहते हैं।

सा नित्यताऽस्य शक्तिर्निकृत्य विधनोदय प्रदानेन।
नियतवरिच्छेदकरी क्लृप्ता स्यात् कालतत्त्व रूपेण।।[५५]

क्षेमराज पराप्रवेशिका में कहते हैं कि यह काल ही भासिक तथा प्रभासित होने वाले भावों के क्रम का अवच्छेदक है।[५६]

असीम शुद्धस्वरूप वह परमेश्वर जब कला, राग, विद्या, नियति इन तत्त्वों से अपने को आच्छादित कर संकुचित कर लेता है तब वही पुरुषत्व की संज्ञा को प्राप्त कर लेता है। क्षेमराज पराप्रवेशिका में कहते हैं कि—

'यदा तु परमेश्वर....माया शक्त्या स्वरूपं गृहीत्व संकुचितं ग्राहकतामश्नुते तदा पुरुषसंज्ञः।'[५७]

क्षेमराज आगे प्रकृति को ही महत् आदि का मूल कारण बताते हुए कहते हैं कि महत् आदि से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तत्त्वों का मूल कारण प्रकृति है जो सत् रजस्, तसम् की साम्यावस्था है।

इस प्रकृति तत्त्व से ही कार्य, कारण, भाव से बुद्धि, अहंकार, मन, ज्ञानेद्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, तथा पञ्चमहाभूतों का विकास होता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आचार्य क्षेमराज की कृतियों को देखने से यह आभास होता है कि उन्होंने भी अपने गुरु अभिनवगुप्त के समान व्याख्या के क्षेत्र में काफी काम किया है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में अभिनवगुप्त की शैली का प्रभाव पूर्णतः देखने को मिलता है। क्षेमराज की कृतियों में सरलता तथा सुबोधता के साथ ही उनमें पाण्डित्य का भी परिचय मिलता है। इनकी शैली विषयानुकूल तथा प्रभावशाली है जिसमें सारगर्भित रूप से दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या की गयी है जिसके कारण ऐसा लगता है कि इन्होंने मूल ग्रन्थ के प्रति न्याय किया है।

क्षेमराज यद्यपि टीकाकार के रूप में ख्याति प्राप्त है फिर भी उनकी मूल कृतियाँ भी स्वतन्त्र रूप से अपने अस्तित्व में है। अपनी रचनाओं के द्वारा इन्होंने काश्मीरशैवदर्शन के विचार को आगे बढ़ाने में विशेष योगदान दिया है।[५८]

सन्दर्भ

१. ई० प्र० वि० भाग-२, भूमिका-पृ० ७
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् -श्लोक-२
३. तंत्रालोक-३७ वां आह्निक
४. Abhinava Gupta: An historical and philosophical study 2nd edition, page 266-267
५. स्तवचिन्तामणि, नारायणभट्ट श्लोक ३
६. स्पन्दनिर्णय, पुष्पिका
७. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् पृ०६
८. दशावतारचरित उपसंहार
९. न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि, शिक्षा विशेषरपि सुप्रयुक्तैः।
न केवलं शब्दिकं तार्किकं वा, कुर्यात् गुरुं सूक्तिविकासविधाम्।।
-दशावतारचरितम्
१०. काश्मीर शैवदर्शन और कामायनी, पृ०-३३
११. ध्वन्यालोक लोचन, पृ० १-६
१२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, भूमिका पृ०-१०
१३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् पृ० ६७ (ऑडयार लायब्रेरी, मद्रास)
१४. स्वच्छन्दतन्त्र पृ० १४६ तथा ३३२
१५. द क्रम तान्त्रिसिज्म ऑफ कश्मीर, पृ० १६६
१६. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् पृ० ७७

१७. वही पृ० १९
१८. तथा अस्माभि: श्री स्वच्छदन्दोद्योत पंचम पटलान्ते दीक्षा विचारे वितत्य दर्शितम्। —शिवसूत्रविमर्शिनी पृ०-२
१९. स्वच्द्दछन्दतन्त्र भाग-४ए पृ० २६
२०. मुदित भैरवं दृष्ट्वा देवी वचनमब्रवीत्। -स्वछन्दतन्त्र पटल १/४-७
२१. स्वच्द्दछन्दतन्त्रोद्योत, भाग-६, पटल-१४
२२. स्वच्छन्दोद्योत, भाग-६ए पटल-११
२३. विज्ञानभैरव विवृत्ति, पृ० ५-६
२४. विज्ञानभैरव, क्षेमराजकृत विवृत्ति, पृ० ५-६
२५. विज्ञानभैरव विवृत्ति-पृ० ०७
२६. वही, पृ० ०८
२७. विज्ञानभैरव, विवृत्ति-पृ० ९
२८. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, ज्ञानाधिकार, पृ० २६७
२९. विज्ञानभैरव, क्षेमराजकृत विवृत्ति, पृ० १२
३०. वही, पृ० १४
३१. वही, पृ० १५
३२. वही, पृ० १४
३३. वही, पृ० ११,१२
३४. नयते मोक्षभावं तु तारयेन्महतो भयात्।
नयनाच्च तथा त्राणान्नेत्रमित्यभिधीयते।।-नेत्रतन्त्र, भाग-२, अधिकार २२/१२१
३५. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, प्रस्तावना
३६. स सूरादित्यों मां बहुलभक्त्यार्थ यत् तत्।
स्तुतौ तेनाकर्ष विवृतिमिह नारायणकृतौ।।-(स्तवचिन्तामणि पृ० १३०)
३७. यदुक्तं श्री क्रम सूत्रेषु...यथा च व्याख्यातं श्रीक्षेमराजेन।-(महार्थमञ्जरी)
३८. (पराप्रवेशिका पृ० ६-७)
३९. तत्र शिवतत्त्वं नाम इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक केवलपूर्णानन्दस्व भावरूप: -पराप्रवेशिका पृ० ६
४०. परमार्थसार पृ० ५
४१. नम: शिवाय सततं पञ्चकृत्याभिधायिने-प्र० हृ०-भूमिका
४२. सर्वदर्शन संग्रह में उद्धृत् भोजराज की टीका
४३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, मंगलश्लोक
४४. स्पन्दसन्दोह पृ० ०१
४५. तन्त्रालोक, आह्निक ६-४८

४६. "तत्र शिवतत्त्वं नाम इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक केवलपूर्णानन्द स्वभाव रूप: परमशिव एव।"-परा० प्र० पृ० ६
४७. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग-२, ३/१/३१
४८. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी पृ० १९१-९२
४९. ईश्वरो बहिरून्मेषो निमेषोन्त: सदाशिव:। -ईश्वरप्रत्यभिज्ञा भाग-२,३/१/३१
५०. स्वरूपेषु भावेषु भेदप्रथा माया।-परा० प्र० पृ० ७
५१. मोहपति अनेनशक्तिविशेषण इति मोहो। -ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी-३५
५२. विद्या किञ्चिज्ञत्व कारणम्। पराप्रवेशिका पृ० १९
५३. नियतियोजना धत्ते विशिष्टे कार्य मण्डले। -तन्त्रालोक, अह्निक-९/२०२
५४. पराप्रवेशिका, पृ० ९
५५. तत्त्वसन्दोह-६३
५६. पराप्रवेशिका पृ० ९
५७. वही, पृ० ७-८
५८. प्रत्यभिज्ञाहृदय-भूमिका

षष्ठम अध्याय

क्षेमराज का शैव सिद्धान्त

१. प्रत्यभिज्ञा

प्रत्यभिज्ञा काश्मीरशैवदर्शन का आधार भूत सिद्धान्त है। यह मोक्ष का साधन भी है तथा मानव जीवन का परमलक्ष्य होने से स्वयं मोक्ष स्वरूप भी है। प्रत्यभिज्ञा का सामान्य अर्थ पहचान है। प्रश्न उठता है कि किसकी पहचान? उत्तर है-अपने स्वरूप की पहचान। जीवन जो कि वस्तुत शिव है लेकिन वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूले बैठा है। उसने अपना तादात्म्य केवल अपने शरीर और मन से स्थापित कर लिया है। जीव को अपने वास्तविक स्वरूप को समझने के योग्य बनाने के लिए ही प्रत्यभिज्ञा का उपदेश दिया गया है। प्रत्यभिज्ञा मनुष्य को इस सत्य से अवगत कराता है कि उसका वास्तविक स्वरूप शिव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। प्रत्यभिज्ञा द्वारा उसे साधन के उस मार्ग पर प्रेरित किया जाता है जिससे वह शिव में समाविष्ट हो जाये। क्योंकि प्रत्यभिज्ञा शास्त्र यह बताता है कि जीव शिव ही है। व्यष्टि तथा समष्टि जगत की आत्मा एक ही है। यह शास्त्र जीव को अपने यथार्थ स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा अर्थात् पहचान करवाता है। इसीलिए इसे प्रत्यभिज्ञाशास्त्र अथवा प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा जाता है।

प्रत्यभिज्ञा शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ देखें तो यह दो रूपों में मिलता है। प्रथम है- प्रति+अभिज्ञा। वाचस्पत्यम् में इसकी व्याख्या है-**'प्रतिगता अभिज्ञाम् इति प्रत्यभिज्ञा। अभिज्ञानरूपे संस्कार सहकारेण जनिते प्रत्यक्षभेदे यथा सोऽयं देवदत्तः इत्यादि।'**[१]

द्वितीय व्युत्पत्ति है प्रति+अभि+ज्ञा।[२] दोनों व्युत्पत्तियों का आशय पहचान से ही है।

शैवदर्शन के आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रत्यभिज्ञा की परिभाषा करते हुए लिखा है-

'तस्य महेश्वरस्य 'प्रत्यभिज्ञा' प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा।'[३]

जगत के रूप में भासित होने वाली परमेश्वर की शक्ति का स्वात्मशक्ति के रूप में अद्वैत प्रतीति होना ही मनुष्य के लिए प्रत्यभिज्ञा है। अभिनवगुप्त ने प्रतीप पद का अर्थ 'ज्ञात स्वात्मस्वरूप का अवभासन होना' ऐसा बताते हुए प्रत्यभिज्ञा की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है-

'प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा। प्रतीपम् इति स्वात्मभासो हि न अननुभूतपूर्वोऽविच्छिन्न प्रकाशत्वात् तस्य, स तु तच्छक्त्यैव विच्छिन्न इव विकल्पति इव लक्ष्यते इति वक्ष्यते। प्रत्यभिज्ञा च भातभासमानरूपानु-संधानात्मिका, स एवायं चैत्र-इति प्रतिसंधानेन अभिमुखीभूत वस्तुनि ज्ञानम्, लोकेऽपि एततपुत्र एवं गुणं एवं रूपकं इत्येवं वा, अन्ततोऽपि सामान्यात्मना वा ज्ञातस्य पुनरभिमुखी भावावसरे प्रतिसंधितप्राणितमेव ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा-इति व्यवह्रियतेः नृपतिं प्रति प्रत्यभिज्ञापितोऽयम्-इत्यादौ।'[४]

अर्थात् 'मै उस महेश्वर से अभिन्न हूँ' अपने स्वरूप का यही ज्ञान प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। अर्थात् विद्यमान या ज्ञात होने पर भी माया के मोहवश विस्मृति सी होने पर अपने परमेश्वर का अभिमुख्य तथा सम्मुखीभाव से पुनः ज्ञान होना ही प्रत्यभिज्ञान या प्रत्यभिज्ञा है। जीव अपने आणव मल के कारण अपने शिव रूप को पहचान नहीं पाता। माया शक्ति के द्वारा न केवल जीवन के स्वातन्त्र्य का ही संकोच होता है बल्कि वह इस यथार्थ सत्य से भी अनभिज्ञ रहता है कि यह स्वातन्त्र्य वस्तुतः अपना है।

स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः।।[५]

भारतीय दर्शन के चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य प्रमाता को उसके स्वरूप का अवबोधन कराना है। प्रत्यभिज्ञा का स्वरूप ज्ञान से पूर्व इसकी समृति में किस प्रकार विभेद होता है यह जानना अति आवश्यक होता है। प्रत्यभिज्ञा ज्ञान की प्रक्रिया में मानसिक संस्कारों से उत्पन्न ज्ञान एक अंगमात्र ही होता है। प्रत्यभिज्ञा में जिस वस्तु का ज्ञान होता है उसका स्मृति ज्ञान के विषय से तादात्म्य सम्बन्ध आवश्यक होता है। इस प्रकार स्मृति ज्ञान के मानसिक संस्कारों के साथ स्मृति के विषय की उपस्थिति भी प्रत्यभिज्ञा में आवश्यक है। दृष्टान्त के लिए किसी समय कोई बालक हाथी पर सवार राजा को देखता है और वह दृश्य उसे मनोरंजक लगता है। लेकिन कुछ काल पश्चात् वह केवल हाथी को ही देखता है और उसे देखते ही उसमें मन में पहले देखे गये दृश्य के संस्कार जाग्रत हो जाते

हैं जिसके परिणाम स्वरूप उसे हाथी पर सवार राजा का ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान उसका स्मृति ज्ञान है। लेकिन यदि राजा उसे पुनः दिखाई दे और वह पहचान ले कि यह वही है तो यह प्रत्यभिज्ञा है। पूर्व के संस्कारों के साथ तादात्म्य निरुपण ही प्रत्यभिज्ञा है। अतः प्रत्यभिज्ञा में पूर्वज्ञान आवश्यक है। पूर्वज्ञान का उदय श्रवण, अध्ययन तथा उपदेशादि किसी के द्वारा हो सकता है।

दार्शनिकों के अनुसार शिव ही गुरु रूप में प्रकट होकर अज्ञान रूपी मल का विनाश कर आत्मा को इस ज्ञान की अनुभूति कराता है कि जिस पूर्ण का श्रवण वह वेदों आगमों तथा श्रुतियों द्वारा करता आया है, 'वह' स्वंय 'वही' है। उपनिषद् **'तत्त्वमसि'** (वह तुम ही हो) **'अयमात्मा ब्रह्म'** (यह आत्मा ब्रह्म है।) **अहं ब्रह्मास्मि** (मै ब्रह्म हूँ) इत्यादि महावाक्यों द्वारा जीव को उसके स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान कराती है। आगमशास्त्र या गुरु के द्वारा 'मै शिव हूँ' इसका बोध कराया जाना ही अपनी प्रत्यभिज्ञा है।

प्रत्यभिज्ञा के इस रहस्य को समझने के लिए काश्मीरशैवदर्शन के विद्वान् एक सुन्दर तथा सरस उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि एक सुन्दर नवयुवती किसी व्यक्ति विशेष के उत्तमगुणों को सुनकर बिना उसे देखे उस पर मुग्ध हो जाती है और उससे इतना अधिक प्रेम करने लगती है कि उससे मिलने के लिए आतुर हो उठती है। जब वह व्यक्ति विशेष से मिलती है तो न ही वह उसे पहचान पाती है न ही उसके गुणों को ही समझ पाती है। ऐसी परिस्थितियों में वह व्यक्ति उसे अन्य सामान्य व्यक्ति जैसा प्रतीत होने लगता है। तभी कोई जानकार व्यक्ति उसे उस व्यक्ति का परिचय कराता है। तब वह उसे पहचान लेती है कि यह वहीं व्यक्ति है जिससे वह प्रेम करती है। यह पहचान ही प्रत्यभिज्ञा है। प्रत्यभिज्ञा में यह आवश्यक नहीं है। जिसकी प्रत्यभिज्ञा हो वह पूर्वदृष्ट हो। प्रत्यक्ष दृष्ट पदार्थ की वास्तविकता की जानकारी प्राप्त हो जाना ही प्रत्यभिज्ञा है।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ग्रन्थ के माध्यम से आचार्य क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का मर्म बताया है। इस ग्रन्थ का यह उपदेश है कि यदि कोई आत्मा को पहचान ले तो शरीदि अनात्म में जो आत्मबुद्धि है उससे छुटकारा पा लेगा और यह ज्ञान प्राप्त कर लेगा कि उसकी वास्तविक आत्मा विश्वात्मा शिव ही है।

इस प्रकार स्मरण तथा अनुभव के आधार पर बुद्धि और संस्कार इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान 'प्रत्यभिज्ञा' कहलाती है।

स्मरणानुभवारुढ़ा समानाधिकरण्यधीः।
संस्कारेन्द्रियजन्या च प्रत्यभिज्ञा प्रकीर्तिता।।[६]

प्रत्यभिज्ञा की उत्पत्ति होने पर स्व तथा पर का भेद समाप्त हो जाता है।

प्रत्यभिज्ञोपपत्तौ स्वपरविभागाभाव तदपेक्षं...।[७]

आत्मस्वरूप का ज्ञान केवल बौद्धिक ज्ञान नहीं है क्योंकि इससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। मोक्ष की प्राप्ति तभी हो सकती है जब आत्मा इस सत्य को स्वयं अनुभूत करें। आत्मा दो प्रकार के अज्ञान के कारण अपने स्वयं के रूप को नहीं जान पाता है-

१. बौद्ध अज्ञान, २. पौरुष अज्ञान

आत्मस्वरूप के विषय में बौद्धिक जानकारी का अभाव बौद्ध अज्ञान कहलाता है जिसको शास्त्रों के अध्ययन तथा उपदेशो के श्रवण द्वारा दूर किया जा सकता है। दूसरा जो पौरुष अज्ञान है वही वास्तविक अज्ञान है जिसके कारण हम पशु है। यह एक आध्यात्मिक मल है जो सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने में जकड़ कर रखता है। 'प्रत्यभिज्ञा' के लिए इन दोनों प्रकार के अज्ञान से छूटना आवश्यक है। पौरुष अज्ञान के कारण आत्मा अपना तादात्म्य शिव से स्थापित नहीं कर पाती है जिसके लिए शिव गुरु रूप में प्रकट होता है और जीव को आध्यात्मिक ज्ञान देता है जिसे दीक्षा कहते हैं। इस प्रकार शास्त्र-अध्ययन, उपदेश तथा दीक्षा आदि के द्वारा दोनों प्रकार के अज्ञानों से जीव मुक्ति पा लेता है और अपने स्वरूप को जानकर जिनमें स्थित हो जाता है।

शैवशास्त्रकार का यह विचार है कि केवल बौद्धज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता लेकिन केवल पौरूष ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है।[८]

काश्मीरशैवदर्शन के आचार्यों का दृष्टिकोण इससे कुछ भिन्न है उनका मन्तव्य है कि बौद्धज्ञान ही मोक्ष के आध्यात्मिक पक्ष का प्रथम चरण है। बौद्ध ज्ञान अर्थात् आगमशास्त्रादि के अध्ययन-मनन-चिन्तन द्वारा ही व्यक्ति में आध्यात्मिक प्रेरणा स्फुटित होती है तभी वह पौरूष ज्ञान अर्थात् दीक्षादि के लिए प्रत्यत्नशील होता है।

आत्मा जब तक रागादि मलों से युक्त होती है तब तक बौद्धिक ज्ञान और पौरुष ज्ञान भी मिश्रित रहते हैं। इनको किसी प्रकार से विभाजित नहीं किया जा सकता। जब आत्मा पूर्णतया मलों के आवरण से मुक्त हो जाती है उस स्थिति में पूर्ण पौरुष ज्ञान प्राप्त होता है जिसे पूर्णज्ञान भी कहते है। और पूर्णास्थिा को जीव

प्राप्त हो जाता है तब आगमादि शास्त्रों के अध्ययन तथा मनन चिन्तन की भी आवश्यकता नहीं रह जाती और न ही ज्ञान के लिए साधन की अपेक्षा रहती है क्योंकि जीव पूर्णज्ञान से भर जाता है। पूर्णावस्था सर्वज्ञ की अवस्था है। इस अवस्था में सर्वज्ञ की स्वतन्त्रता इच्छा पर साधनों का प्रयोग होता है।

इससे स्पष्ट होता है कि आत्मा का मलावरण दूर करके आत्मा के शुद्ध वास्तविक रूप का प्रकाशन 'प्रत्यभिज्ञा' है। इस प्रक्रिया में आत्मा किसी बाह्य वस्तु के साथ अपना तादात्म्य नहीं स्थापित करता वरन् अपने वास्तविक स्वरूप के साथ ही अपना तादात्म्य स्थापित करता है। और उसका वास्तविक स्वरूप 'शिव' रूप ही है। प्रत्यभिज्ञा आत्मा का शुद्धिकरण है। इस प्रक्रिया में आत्मा कोई नवीन रूप धारण नहीं करता अथवा उसका कोई भौतिक रूपान्तरण नहीं होता जैसे दूध से दही बनना एक भौतिक रूपान्तरण है। आत्मा का तो वास्तविक स्वरूप शुद्ध चैतन्य रूप ही है। इस प्रक्रिया में केवल आत्मा के ऊपर पड़ा हुआ अविद्या रागादि रूप मल का आवरण हटाया जाता है। इस आवरण के हटते ही वह आत्मा शुद्ध चैतन्य रूप को प्राप्त होकर प्रकाशित होने लगती है। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा एक अवस्था परिवर्तन है जो अशुद्ध से शुद्ध या अपूर्ण से पूर्ण होने की है। प्रत्यभिज्ञा द्वारा मलावरण दूर करने से तात्पर्य है अपूर्ण ज्ञान को पूर्ण ज्ञान में परिवर्तित करना इसलिए प्रत्यभिज्ञा वस्तुतः ज्ञान है।

शिव और आत्मा की अद्वैत अनुभूति ही प्रत्यभिंज्ञा है। काश्मीरशैवदर्शन में तो इन दोनों को वस्तुत: एक ही तत्त्व माना गया है। शिव ही अपनी इच्छा से पशु भाव स्वीकार करता है किन्तु अज्ञानता के कारण आत्मा इस सत्य को भूल जाता है। लेकिन आत्मा जब इस सत्य को जान जाता है तो पुन: शिव रूप में प्रकाशित हो जाता है। अद्वैत वेदोन्त ही आत्मा को ब्रह्म मानता है।

आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार प्रत्यभिज्ञा में 'प्रति' उपसर्ग प्रतीत अर्थ में 'अभि' उपसर्ग आभिमुख्य अर्थ में तथा 'ज्ञा' धातु अवबोधन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[९] साथ ही 'प्रति' व 'अभि' उपसर्गों के साथ कार्यकारण भाव तथा आनन्तर्य सम्बन्ध भी है। 'उपसर्गों के प्रति की व्याख्या करते हुए उसके प्रतिफल की विवेचना करता है। भास्करकण्ठ ने चिन्तानुबोधशास्त्र'[१०] की अपनी टीका में 'प्रति' उपसर्ग का चार विशिष्ट अभिप्रायों में प्रयोग किया है-१. प्रतीप, २. अनुसंधान, ३. अभिमुख, ४. आन्तर्य। किन्तु प्रत्यभिज्ञा का निरूपण करते समय प्रथम दो अध्यायों में प्रति शब्द की व्याख्या हुई है। यदि प्रति शब्द का अर्थ

अभिमुख ले तो व्युत्पत्ति होगी। 'अभिमुखं आभिमुख्येन ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्। किन्तु तब हमें प्रत्यभिज्ञान न होकर प्रत्यक्षात्मक बोध ही होगा, साथ ही 'आभिमुख्य' की अनावश्यक पुनरावृत्ति होगी। यदि इस पुनरावृत्ति के परिहारार्थ प्रत्यभिज्ञा की व्युत्पत्ति अन्य दर्शनवत् 'प्रति+अभिज्ञा' मान ली जाये तो यह सम्प्रदाय के विरुद्ध होगी, क्योंकि न केवल भास्कर अपितु अभिनवगुप्त स्वयं प्रत्यभिज्ञा की व्युत्पत्ति **'प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा'** तथा **'प्रतिसंधानेन अभिमुखीभूते वस्तुनि ज्ञानम्'** क़हकर, 'प्रति+अभि+ज्ञा' इस रूप में ही स्वीकार करते हैं। अतः प्रति की 'अभिमुख' अर्थ में व्याख्या न किये जाने का कारण तो स्पष्ट हो जाता है। किन्तु आन्तर्य अर्थ में व्याख्या न करने का प्रयोजन अव्याख्येय ही रखता है। क्योंकि यदि हम प्रति का अर्थ 'आन्तर्य' बतालाते है, तो व्युत्पत्ति होगा **'आन्तरत्वं आभिमुख्येन ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्'** और आन्तरिकता है-'प्रमाता से एकात्मता तथा तदात्मता यानि कि प्रमाता से तादात्म्य का अभिमुखीभूत रूप में ज्ञान करना ही प्रत्यभिज्ञान है। यदि प्रत्यभिज्ञा की इस रूप में व्याख्या की गयी होती, तो वह अपने आप में परिपूर्ण व्याख्या होती और अपनी व्युत्पत्ति से ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन में स्वीकृत चरम प्रत्यभिज्ञान को भी स्पष्ट कर देती। इसका एक मात्र प्रयोजन यही हो सकता है कि भास्कर ने यहाँ प्रत्यभिज्ञा की संरचनात्मक व्याख्या की है स्तर विशेष के सन्दर्भ में इसकी विवेचना नहीं की हैं।

'प्रति' शब्द का तात्पर्य है कि कोई वस्तु पलट जाती है। 'अभि' पद का तात्पर्य है कि पलट जाने के पश्चात वह वस्तु सामने आ जाती है तथा 'ज्ञा' पद से तात्पर्य है कि जो वस्तु पलटकर सामने आयी उसी का ज्ञान करना।[११] अर्थात् पूर्व घटित का सन्मुख उपस्थित रूप में ज्ञान करना ही प्रत्यभिज्ञान है। जिसको काश्मीरशैवदर्शन की शैली में 'भात ओर भासमान के अनुसंधान' के रूप में परिभाषित किया गया है-**'पूर्व भातमद्यभासमानतयोर्यतदनुसंधानम् -एकीकरणम्, तदात्मा यस्याः तादृशी।'**[१२]

मनोविज्ञान तथा पाश्चात्य दर्शन में प्रत्यभिज्ञा के अभिप्राय में 'रिकॅग्नीशन' (Recognition) शब्द का प्रयोग प्राप्त है– The Knowledge of an object along with the realisation that same object has been previously known.[13]

प्रत्यभिज्ञा के दार्शनिक सिद्धान्त का निरुपण भारतीय दर्शन में दो रूपों में मिलता है।

(१) प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग करते हुए उसके दार्शनिक अभिप्राय का निरूपण।

(२) प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग किये बिना उसके दार्शनिक अभिप्राय का निरूपण।

उपनिषद् तथा वेदान्त आदि दर्शन में प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग नहीं मिलता लेकिन सिद्धान्त पूर्ण रूप से व्याप्त है। 'अपरोक्षानुभूति' प्रत्यभिज्ञा शब्द की व्याख्या है जिसका निरूपण वेदान्त में है। जीव-ब्रह्म के ऐक्य हेतु उपनिषद् वाक्यों जैसे- **तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, सर्व खल्विदं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि** का प्रयोग हुआ है।

सांख्यदर्शन में भी कैवल्य प्राप्ति और उसके अस्तित्व का बीज बिना प्रत्यभिज्ञा शब्द के प्रयोग के मिलता है।[१४]

प्रत्यभिज्ञा-शास्त्र शैवदर्शन का शास्त्र है। इसमें आगम के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन हुआ है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में ही सर्वप्रथम कश्मीर के अद्वैत शैवमत का दार्शनिक शैली से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दर्शन-शास्त्र की एक विशिष्ट शैली यह होती है कि पहले अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों का तर्क, वाद-प्रतिवाद के आधार पर खण्डन करके शास्त्रानुमोदित प्रबल तर्कों के आधार पर अपने पक्ष की स्थापना की जाती है। काश्मीरशैवदर्शन में इस शैली से विचार प्रतिपादन का अनुसरण सर्वप्रथम आचार्य सोमानन्द ने अपने ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' के माध्यम से किया। शिवदृष्टि इस शास्त्र का मूल ग्रन्थ है। इसमें 'दृष्टि' पद दर्शन का द्योतक है। शिवदृष्टि पर सोमानन्द के शिष्य उत्पल देव ने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' की रचना की। इस ग्रन्थ पर स्वयं उत्पलदेव ने वृत्ति लिखी इसके साथ ही अन्य आचार्यों ने भी टीका लिखी है जिसमें प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का सार समाहित हो गया है। इसकी प्रमुख टीकाएँ है-आचार्य अभिनवगुप्त प्रणीत प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी तथा प्रत्यभिज्ञाविवृतविमर्शिनी। आचार्य क्षेमराज ने इस पर 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' नामक टीका की रचना की है। अभिनवगुप्त ने १२ खण्डों में तन्त्रालोक और एक ग्रन्थ तन्त्रालोकसार लिखा जिसमें शैवदर्शन के सभी सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। जिसके मुख्य बिन्दु निम्नलिखित है-

१. परमार्थ या चरम तत्त्व ४. जगत ६. जीव

२. स्वातन्त्र्यवाद और आभासवाद ५. बन्ध ७. मोक्ष

३. शांकरअद्वैतवाद के साथ तुलना

प्रत्यभिज्ञादर्शन में छत्तीस तत्त्वों का विवेचन किया गया है। इसमें परमशिव के गर्भ में 'मयूराण्डवत्' सदाशिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थतत्त्व समाहित है जिनके नाम इस प्रकार से है–

१. शिव	२. शक्ति	३. सदाशिव	४. ईश्वर	५. शुद्धविद्या	६. माया
७. कला	८. विद्या	९. राग	१०. नियति	११. काल	१२. पुरुष
१३. प्रकृति	१४. बृद्धि	१५. अहंकार	१६. मन	१७. श्रोत्र	१८. त्वक्
१९. चक्षु	२०. रसना	२१. घ्राण	२२. वाक्	२३. पाणि	२४. पाद
२५. पायु	२६. उपस्थ	२७. शब्द	२८. स्पर्श	२९. रूप	३०. रस
३१. गन्ध	३२. आकाश	३३. वायु	३४. तेज	३५. जल	३६. पृथिवी।

त्रिकदर्शन इसी प्रत्यभिज्ञादर्शन का दूसरा नाम है। त्रिकदर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन की तत्त्वमीमांसा और साधनापक्ष से विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

अभिनवगुप्त के सुयोग्य शिष्य क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त को व्यापक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवसूत्रविमर्शिनी, स्वच्छन्दतन्त्र, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, स्पन्दसन्दोह, शिवस्तोत्रावली की टीका इत्यादि है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के प्रतिष्ठित ग्रन्थों में परमार्थसार की टीका तथा जयरथ प्रणीत तन्त्रालोक टीका, भास्कर रचित ईश्वरप्रत्यभिज्ञा टीका महेश्वरानन्द विरचित परिमल टीका, भास्कर रचित ईश्वरप्रत्यभिज्ञा टीका महेश्वरानन्द विरचित परिमल टीका सहित महार्थ-मञ्जरी आदि प्रमुख है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र की इस प्रतिष्ठित आचार्य परम्परा से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस दर्शन का साहित्य भी समृद्ध रहा होगा।

संक्षेप में प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त के सन्दर्भ में कह सकते हैं कि परमशिव अपनी स्वतन्त्रचेतना या इच्छा के माध्यम से ज्ञान शक्ति तथा क्रिया के सम्मिश्रण से विश्वोन्मेष करता है। इस विस्तारण में पृथिवी पर्यन्त कुल ३६ तत्त्वों की कल्पना की गयी है। जिस शिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त विशेष क्रम में दर्शाया गया है। इनमें परमशिव अपनी शक्ति से पृथक होकर विश्वसृष्टि का सृजन करता है ओर ये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वस्तुएँ उसमें प्रतिभासित होती रहती है।

शिव शक्ति के संयोग से शिव के आन्तरिक स्पन्दन के परिणाम स्वरूप सदाशिव, ईश्वरतत्त्व तथा शुद्धविद्या उद्भूत होते हैं। इसके पश्चात प्रकृति पर्यन्त जो

अशुद्ध तत्त्व अविद्या, कला, राग, काल और नियति आदि उत्पन्न होते हैं वे शिव के बहिरुन्मेष के रूप में माने जाते हैं। सांख्य के २५ तत्त्व भी प्रत्यभिज्ञा शास्त्र को मान्य है। सांख्यदर्शन में प्रकृति से पुरुष का संयोग विच्छिन्न हो जाने पर पुरुष 'कैवल्य' प्राप्त करता है। इस प्रकार पुरुष का अपने वास्तविक स्वरूप को जानना तथा समस्त क्रियाओं का स्वयं में निषेध करना ही प्रत्यभिज्ञा की प्रतिपादन है।[१५] इस दर्शन में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि पुरुष सृष्टि व्यापार से पूर्व तथा सृष्टि के बाद भी निष्क्रिय अकर्त्ता तथा दृष्टा ही रहा। लेकिन अज्ञानवश अपने को सृष्टि का कर्ता भोक्तादि समझ रहा । विवेक प्राप्ति ही जिसके प्रत्यभिज्ञान का आधार हुआ। इसके साथ ही महदादि तत्त्वों से लेकर पृथिवी पर्यन्त प्रकृति का विस्तार प्रत्यभिज्ञान का परिणाम है। अथवा प्रत्यभिज्ञानात्मक है।[१६]

प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग बौद्धदर्शन में भी मिलता है जिसके दो कारक है- प्रथम कारक है- विशेष प्रकार के संकेत के द्वारा पहचाने जाने पर तथा द्वितीय किसी वस्तु के आकारों के संग्रह के कारण। जैसे बरफी या मोदक के आकार व रंग को देखकर हमें उसके स्वाद का स्मरण हो जाता है जो प्रत्यभिज्ञा को जन्म देती है। यह कुछ विचित्र सी है लेकिन न्यायशास्त्र की ज्ञान लक्षण-प्रत्यासत्ति से इसकी समता प्रतीत होती है। न्यायदर्शन के अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति है। इसके अनुसार एक ही इन्द्रिय दूसरे इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान का भी अनुभव करने में समर्थ हो जाती है जैसे-चन्दन को देखकर उसके सुगन्ध की भी अनुभूति हो जाती है यहाँ नेत्रेन्द्रिय के द्वारा ही घ्राणेन्द्रिय का कार्य भी हो जाता है। इसमें सुगन्ध की अनुभूति का कारण भी पूर्वकाल में अनुभूति की गई सुगन्ध की स्मृति है। इस उदाहरण में चन्दन प्रत्यक्ष वस्तु है पर स्मृति सुगन्ध की हो रही है जबकि सामान्य सिद्धान्त में प्रत्यभिज्ञा में एक ही वस्तु होती है वही प्रत्यक्ष तथा स्मृति दोनों का विषय बनती है। जैसे यह वहीं चन्दन है। इस उदाहरण में चन्दन ही भूतकालिक स्मृति व वर्तमानकालिक अनुभव का विषय है। न्यायदर्शन का ज्ञानलक्षण-प्रत्यासत्ति 'यह चन्दन है।' यह अंश प्रत्यक्षात्मक है तथा 'यह सुगन्धि है' यह अंश स्मरणात्मक है। इस व्याख्या में वस्तु के पूर्ण स्वरूप के अवबोधन को प्रत्यभिज्ञा स्वीकार किया गया इस दृष्टि से काश्मीरशैवदर्शन के साथ इसकी साम्यता भी दिखाई देती है। बौद्धदर्शन में भात और भासमान के मध्य सादृश्य प्रतीति को प्रत्यभिज्ञा मानते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में सभी कुछ क्षणिक

है। इस कारण वे स्मृति के आधार अनुभूत पदार्थों में समानता स्वीकार नहीं करते इसी कारण सादृश्य मानते हैं।[१७] प्रत्यभिज्ञान से सन्निहित वस्तु में सादृश्य बोध नहीं होता क्योंकि वह ज्ञान क्षणिकवाद के कारण वस्तु विषयक नहीं हो सकता।[१८] अतः उनकी प्रत्यभिज्ञा मात्र सविकल्पक रूप में ही सम्भव है। और प्रत्यभिज्ञान ही सविकल्पना का निर्धारक है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन में भ्रान्तिजन्य प्रत्यभिज्ञा-'सोऽयं देवदत्तः तथा कल्पनाजन्य प्रत्यभिज्ञा-'देवदत्तोऽयम् ये दो प्रकार की प्रत्यभिज्ञा मिलती है!

वाक्‌दर्शन का मीमांसा दर्शन से निकट का सम्बन्ध होने से वाच्य-वाचक के मध्य भी प्रत्यभिज्ञान जनक अनुभूति होती है। अतः इसमें निरूपित प्रत्यभिज्ञा भी शब्द और अर्थ से सम्बद्ध है। जो सविकल्पक अर्थ की संज्ञा द्वारा होता है।'[१९] भर्तृहरि के वाक्-दर्शन में भी यही सिद्धान्त मिलता है-

सोऽयमित्यभिसम्बन्धाद् रूपमेकीकृतं यदा।
शब्दास्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते।।[२०]

न्याय दर्शन के प्रमाण मीमांसा में प्रत्यभिज्ञा 'प्रत्यक्ष प्रमाण' के विषय को जाता है जो कि प्रत्यक्ष का एक प्रकार होता है। क्योंकि न्यायदर्शन में कही-कहीं लौकिक प्रत्यक्ष के तीन रूप है-निर्विकल्पक, सविकल्पक तथा प्रत्यभिज्ञा।[२१] जिसका ज्ञान संस्कार और इन्द्रियसन्निकर्ष के संयोजन से होता है न्यायकोश में उद्धृत है-

तल्लक्षणं तु इन्द्रियसहकृतसंस्कारजन्यज्ञानत्वम्।[२२]

यह एक विशिष्ट ज्ञान होता है क्योंकि यह भूतकाल के विशेषण से युक्त वर्तमान काल से अवच्छिन्न रहता है-

अतीतकालविशिष्टोवर्तमान कालावछिन्नश्चार्थ एतस्यामवभासते।[२३]

जैनदर्शन में भी प्रत्यभिज्ञा की व्याख्या मिलती है। जो कि काश्मीरशैवदर्शन के समकक्ष है। जैन भी प्रत्यभिज्ञा के दो स्वरूप बताते हैं-पहला 'किसी वस्तु को उसके समस्त धर्मों के साथ जानना,' दूसरा 'यह वही वस्तु है जिसे पहले जाना जा चुका है।' दोनों वाक्य प्रत्यभिज्ञान को ही परिभाषित करते हैं। जैन दर्शन प्रत्यभिज्ञा को एक प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। जैन दर्शन प्रमाण के दो भेद हैं-पहला प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष। परोक्ष प्रमाण के ५ भेद है। १. स्मृति, २. प्रत्यभिज्ञा, ३. तर्क या ऊह, ४. अनुमान तथा ५. आगम।[२४]

जैन दर्शनिकों के लौकिक ज्ञान के अन्तर्गत भी प्रत्यभिज्ञा का वर्णन किया गया है।[२५] भारतीय दर्शन में प्रत्यभिज्ञा निम्नलिखित रूपों में परिलक्षित होती है।

१. एक स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में
२. अपरोक्ष अनुभूति के रूप में
३. वस्तु के पूर्ण स्वरूप के अवबोधन के रूप में
४. वाच्य और वाचक के मध्य ऐक्यानुभूति रूप में
५. समाधिकरण प्रतीति के रूप में
६. भात और भासमान के मध्य सादृश्य अनुभूति रूप में
७. सविकल्पता तथा अन्योन्याभावादि के रूप में।

काश्मीररशैवदर्शन भी पहले, छठे और सातवें को छोड़कर अन्य मतों को स्वीकार कर लेता है। और शेष मतों का विवेचन करते हुए भी अपनी मौलिकता को बनाये रखता है इससे प्रत्यभिज्ञा के क्षेत्र मे विस्तार के साथ ही इसकी व्यावहारिक प्रक्रिया में भी नवीनता का दर्शन होता है। तथा भूतकालिक और वर्तमान कालिक ज्ञान के एकीकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है।[२६]

२. स्पन्द

काश्मीरशैवदर्शन के साधना पक्ष से स्पन्दशास्त्र का सम्बन्ध है। इसका मूल ग्रन्थ स्पन्दकारिका है। इसमें कुल ५० कारिकायें है। आचार्य क्षेमराज ने ५१ कारिकाओं में निबद्ध सिद्धान्तों को ही स्पन्दशास्त्र कहा है।[२७] स्पन्दकारिका के रचयिता के सम्बन्ध में शैवाचार्यो में मतभेद दिखाई पड़ता है। भास्कराचार्य[२८] और उत्पलवैष्णव[२९] भट्टकल्लट को स्पन्दकारिका का रचयिता मानते हैं। क्षेमराज[३०] के स्पन्दनिर्णय के अनुसार 'स्पन्दकारिका' ग्रन्थ के रचयिता वसुगुप्त को माना जाता है। डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय[३१] के मतानुसार स्पन्दकारिका के रचयिता वसुगुप्त ही है। विज्ञानभैरव के टीकाकार आचार्य शिवोपाध्याय के अनुसार स्पष्ट रूप से स्पन्दकारिका ग्रन्थ की रचना वसुगुप्त ने ही किया है-

यदुक्तं वसुगुप्तपादैः-एक चिन्ता प्रसक्तस्य यतः स्यादपरोदयः।[३२]

इस प्रकार अन्तःसाक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि निश्चित रूप से स्पन्दकारिका के रचयिता वस्तुगुप्त ही है। क्षेमराज[३३] ने अपने स्पन्दनिर्णय ग्रन्थ में स्पन्दशास्त्र की चर्चा करते समय वसुगुप्त के लिए 'महागुरु' जैसी उपाधिपरक

शब्द का प्रयोग किया है। जिससे यह ध्वनित होता है कि वसुगुप्त ही 'स्पन्दकारिका' के रचनाकार है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक जीव स्पन्दशक्ति सम्पन्न शंकरात्मक स्वभाव की अनुभूति प्राप्त करें इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वसुगुप्त ने इस शास्त्र को 'स्पन्द' नाम दिया होगा।[३४] यह स्पन्द परमशिव का नित्य स्वभाव है।

स्पन्द शब्द का प्रयोग आगम शास्त्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया है। काश्मीरशैवदर्शन में शिव की इच्छा रूपी शक्ति को ही 'स्पन्द' कहा गया है। परमशिव की इच्छा स्वयं से अव्यतिरिक्त अशेष सृष्टि संहारादि रूपों को दर्पणनगरन्याय से अपने भीतर ही अपने से भिन्न के समान प्रकाशित करती है। आचार्य क्षेमराज ने स्पन्दनिर्णय में इसकी व्याख्या इस प्रकार की है-

"श्री भगवतः स्वातन्त्र्यशक्तिरविभक्ताप्यशेष सर्गसंहारादिपरम्परां दर्पण नगरवत्सभित्तावेव भावियुक्तानधिकामप्यधिकामिव दर्शयन्ती 'स्पन्द' इत्यभिहिता।"[३५]

एक साथ अपने भीतर विश्व का उन्मेष और निमेष करने वाली इस इच्छा शक्ति को 'स्पन्द' कहा गया है।[३६] अर्थात् शुद्ध प्रकाश ज्ञान स्वरूप शिव जब अपनी प्रकाशात्मकता का विमर्श करता है वह विमर्श ही 'स्पन्द' शब्द से वाच्य होता है। यह एक होते हुए भी उपाधि और कार्य भेद से अनेक रूपों को धारण करती है तथापि यह स्पन्दशक्ति अद्वयरूप ही रहती है। इसी विचार के आधार पर तन्त्रसार में परमेश्वर की असंख्य शक्तियाँ बतायी गयी है।

शक्तयश्च अस्य असंख्येयाः।[३७]

इनमें से उस परमेश्वर की पाँच शक्तियों को प्रमुख माना गया है। जो चित् आनन्द, इच्छा, ज्ञान क्रिया रूप है-

तत्र परमेश्वरः पञ्चभिः शक्तभिः निर्भरः।[३८]

शैवाचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि परमेश्वर की प्रकाशरूपता उसकी चित् शक्ति है।

प्रकाशरूपता चिच्छक्तिः।[३९]

अपने इस प्रकाशरूपता से समस्त विश्व को प्रकाशित करता है—

प्रकाशात्मा प्रकाश्योऽर्थो।[४०]

अप्रकाशरूपता की कहीं कोई सत्ता नहीं है।[४१] क्योंकि परम शिव के अप्रकाशमान होने पर सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो जायेगा और सर्वत्र अज्ञानता व्याप्त हो जायेगी-

'प्रकाशमानतापि अस्य सर्वान् प्रति न किञ्चित् वा प्रति अपितु स्वात्मन्येव, स्वात्मन्यपि वा न स्यात् इति अन्धता जगतः।

शिव चित् अंश और शक्ति आनन्द रूप है इसका सामरस्य ही परमभाव है। प्रकाशविमर्श रूप चित् आनन्द के इस सामरस्य में इच्छा ज्ञान और क्रिया का पूर्ण सामरस्सय होता है। और यह निर्विभाग रूप से ही है-

सुसूक्ष्मशक्ति त्रितयसामरस्येन वर्तते।
चिद्रूपाह्लादपरमो निर्विभागः परस्तदा।[४२]

शैवदर्शन में चैतन्य शिव की इस आनन्दरूप गतिशीलता को स्पन्द कहा गया है। स्पन्दात्मक आनन्द एक चंचल लहर का रूप लेता है, जो इच्छा कहीं जाती है। यह इच्छा न तो किसी अप्राप्य को प्राप्त करके होती है और न ही किसी कमी को पूरा करने की होती है बल्कि यह केवल अपने स्वभाव को अभिव्यक्त करने की एक उमंग मात्र होती है। अतः इच्छा के द्वारा शिव जैसे चाहता है वैसा अभिव्यक्त हो जाता है।

आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन् निवृतचिद्विभुः।
अनिरूद्धेच्छाप्रसरः प्रसरदृक्क्रियः शिवः।।[४३]

विश्वरूप कार्यों के प्रकाशन के कारण शिव की यह इच्छा-शक्ति ज्ञान-शक्ति कही जाती है-

'परतस्तस्मिन् विश्वलक्षणे कार्ये यज्ज्ञानं, तत्प्रकाशनशक्तिरूपता सा ज्ञानशक्तिः।'[४४]

तन्त्रसार के अनुसार चिदात्मा की इच्छाशक्ति जब वेद की ओर उन्मुख होती है तब वह ज्ञान शक्ति कहलाती है।[४५]

जिस शक्ति के द्वारा परमशिव विश्वात्मा भाव से भिन्न-भिन्न पदार्थों के भेद का अवभासन करता है। वह क्रियाशक्ति कहलाती है।

भासना च क्रियाशक्तिरिति शास्त्रेषु कथ्यते।
यथा विचित्रतत्त्वादिकलया प्रविभज्यते।।[४६]

तन्त्रसार में भी आया है कि परमेश्वर की क्रियाशक्ति इच्छानुसार सृष्टि करने के लिए नानारूप धारण करके असंख्य आभास रूपों को अपने अन्तर्गत प्रकाशित करती है।[४७] समस्त विश्व क्रियाशक्ति का ही विस्फुरित रूप है—

क्रियाशक्तेरेव अयं सर्वो विस्फारः।[४८]

तन्त्रसार में उल्लेख है कि शिव की पाँच शक्तियों में तीन शक्तियाँ इच्छा, ज्ञान और क्रिया की ही प्रमुखता है-

'एवं मुख्याभिः शक्तिभिः युक्तोऽपि वस्तुतः इच्छाज्ञानक्रियाशक्तियुक्तः अनवच्छिन्न प्रकाशो निजानन्दविश्रान्तः शिवरूपः ।''[४९]

अभिनवगुप्त के प्रधान शिष्य आचार्य क्षेमराज ने अपने 'स्पन्दनिर्णय' ग्रन्थ में 'स्पन्दकारिका' के अनेक टीकाओं तथा वृत्तियों का उल्लेख किया है इनमें से कुछ उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध टीकाओं के नाम है-

१. भट्टकल्लट की स्पन्दकारिकावृत्ति

२. क्षेमराज का स्पन्दसन्दोह तथा स्पन्दनिर्णय

३. रामकण्ठ की स्पन्दकारिका वृत्ति

४. उत्पल की स्पन्दप्रदीपिका।

इन टीकाकारों में पारस्परिक मतभेद रहा। इन्होंने अपने-अपने ग्रन्थों की रचना अपने-अपने धार्मिक दृष्टिकोण के आधार पर की।

जब शिव शक्त्युन्मुख होते हैं और शक्ति शिवोन्मुख होती है तब उस अवस्था को तन्त्र की भाषा में 'यामल' कहते हैं।[५०] इस अवस्था में शिव शक्तिसम्पन्न तथा शक्ति शिवसम्पन्न होती है। और यही अवस्था 'स्पन्द' कहलाती है।

प्रत्यभिज्ञाशास्त्र तथा स्पन्दशास्त्र के सिद्धान्तों में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है और न ही कोई विरोध है। आचार्य उत्पलदेव ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ में जिस प्रत्यभिज्ञा का निरूपण किया है उसी के साधनभूत स्पन्दकारिका और शिवसूत्रों के कहे गये तीन उपाय है।[५१] तीसरा अर्थात् शाम्भवोपाय जब परिपक्व हो जाता है तब वही तन्त्रालोक के 'अनुपाय' नाम से कहा जाता है। शाम्भवोपाय का साधन शाक्तोपाय है और शाक्तोपाय का साधन आणवोपाय है आणवोपाय भी अपने भेद-प्रभेद से पूर्व-पूर्व क्रम तथा उत्तर-उत्तर क्रम का साधन होते हैं। ये उपायत्रय मल प्रक्षालन के साधन होते है। मलरहित आत्मा स्वमेव प्रकाश से चमक उठती है। अनुपाय में गुरुवचनमात्र से ही परम ऐश्वर्य के उत्कर्ष का परामर्श हो जाता है। इस अनुपाय को ही पूर्ण प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है।[५२]

त्रिक दर्शन में परमशिव के चलनात्मक स्वभाव को स्पन्द कहा गया है। साधारणतः स्पन्द शब्द का अर्थ हलचल, गति अथवा धड़कन होता है। परमेश्वर

का स्वरूप प्रकाशविमर्शात्मक है। प्रकाश तथा विमर्श दोनों ही उसके स्वभाव है। प्रकाश रूप होने के कारण वह शिव कहा जाता है तथा विमर्श रूप द्वारा सृष्टि की क्रिया में प्रवृत्त होने के कारण वह शक्ति रूप कहा जाता है। प्रकाश और विमर्श ही चित् और आनन्द है। एक ही समय में शिव स्थिर भी है और क्रियाशील भी है। इसमें चित् ज्ञानात्मक है और आनन्द क्रियात्मक होता है। चेतना में ज्ञान तथा क्रिया की हलचल सदा रहती है आनन्द कभी शान्त नहीं रहता। क्योंकि लोकव्यवहार में भी ऐसा ही देखने को मिलता है। योगियों के प्रशान्त चित्त में भी आनन्द की लहरें हिलोरे लेती रहती है। इसी आनन्द के कारण ही परमशिव गतिशील है। और यदि आनन्द का स्वभाव गतिशीलता न हो तो शिव पाषाण के समान जड़ हो जायेगा। शांकर-वेदान्त तो ब्रह्म को प्रशान्त और गतिशून्य मानता है। लेकिन त्रिकदर्शन तो ब्रह्म को प्रशान्त तथा गतिशील दोनो रूपों में निरूपित करता है। और यह चेतना की क्रियाशीलता ही त्रिकदर्शन में 'स्पन्द' है। और यह स्पन्द के स्वातन्त्र्यमय विलास का बीज है।

इस गतिशील क्रियाशील स्पन्द से परमशिव में कोई परिणाम या विकृति नहीं आती है। शांकर-वेदान्त विकृति के भय से ही ब्रह्म को स्पन्द रहित मानता है। त्रिकदरर्शन को सर्वाधिक पराद्वैतवादी दर्शन माना गया है। इस दर्शन में परमशिव ही जीव और जगत है। यह उसका विश्वमय रूप है इसी कारण यहाँ द्वैत और विकृति की कोई सम्भावना नहीं है। इसके विपरीत शांकरवेदान्ती जीव और जगत को अविद्या-कल्पित कह कर पर-ब्रह्म से उनका भेद मानते हैं। परमशिव आनन्द का एक समुद्र है जो सर्वथा परिपूर्ण है। जब उसमें स्पन्द होता है, आनन्द की कुछ बूँदे जो छलकती है तब वह अनन्त लोकों और ब्रह्माण्डों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। आचार्य उत्पल ने इस स्पन्दन को परमेष्ठा का स्फुरण रूप हृदय कहा है—

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालविशेषणी।
सैषा सातया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।।[५३]

परमशिव के स्पन्दात्मक स्वभाव तथा अचल स्वभाव में विरोध सा प्रतिभासित होता है किन्तु परमार्थतः यह विरोध यहाँ दूषण न होकर भूषण है। स्पन्द अचल शिव मानो चल स्वभाव वाला है। जो कि स्वातन्त्र्य की महिमा से युक्त है। जो यह विरोध की प्रतीति है वह प्रतीति भी शिव ही है—

'स्पन्दनं च किंचिच्चलनम्। यदचलमपि चलमाभासते इति। प्रकाश

स्वरूपं हि मनागपि नातिरिच्यते, अतिरिच्यते इवेति तदचलमेवाभास भेदयुक्तमिव च भाति।'[५४]

३. त्रिक

त्रिक का अर्थ है तीन का समूह। ये तीन है–

१. नर, अर्थात् बद्ध जीव

२. शक्ति, अर्थात शिव का तेज या पराक्रम

३. शिव, जो नित्य पञ्चकृत्य करते रहते हैं।

भारत भूमि अनादिकाल से आध्यात्मिक दर्शन-विद्या का केन्द्र रहा है जिसके कारण सम्पूर्ण विश्व का विद्या गुरु कहलाता था। दर्शन-विद्या का विकास तीन धाराओं में हुआ-वैदिक, अवैदिक तथा तान्त्रिक। इनमें पाशुपत, शैव, शाक्तादि दर्शन तान्त्रिक कहलाते हैं इनकी मान्यताएँ मालिनीविजयोत्तर तन्त्र, स्वच्छन्दतन्त्र, रुद्रयामल, परात्रिंशिका आदि तान्त्रिक आगमों पर आधारित है। तान्त्रिक दार्शनिकों के चिन्तन का पर्यवसान शिवाद्वैतवाद अथवा स्वातन्त्र्य सिद्धान्त में होता है। त्रिक-दर्शन उसी शिवाद्वैत का प्रतिपादक दर्शन है।

शिवाद्वैत के प्रतिपादक त्रिक दर्शन को अद्वैत शैवदर्शन, पराद्वैतदर्शन भी कहते है। समस्त शैव-दर्शन को त्रिकदर्शन नहीं कहा जाता है। दर्शन-विद्या के दो पक्ष है— सिद्धान्त-पक्ष तथा साधना पक्ष। साधना के द्वारा ही सिद्धान्त के ज्ञान का अनुभव होता है। तभी साधक पूर्णज्ञान को प्राप्त होकर जीवनमुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। अतः निःश्रेयस के लिए सिद्धान्त-ज्ञान और साधना दोनों की परमाश्वयकता है। तान्त्रिक-आगमों में साधन की आचार-परम्परा का वर्णन आया है। इस आचार-परम्परा को 'क्रम' कहा जाता है। इनके नाम है-दक्षिणाचार, वामाचार, कौलाचार तथा त्रिकाचार। इनमें त्रिक आचार सर्वश्रेष्ठ आचार है।[५५] त्रिक आचार का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों में तन्त्रसार, तन्त्रालोक, शिवसूत्र, स्पन्दकारिकादि प्रमुख है। त्रिकाचार का प्रतिपादन करने के कारण यह शास्त्र 'त्रिकदर्शन' कहलाता है। इस प्रकार त्रिकदर्शन शैवदर्शन के साधना पक्ष से सम्बन्धित है।

त्रिकदर्शन या त्रिकशास्त्र किसी एक ग्रन्थ का नाम नहीं है। बल्कि यह कौल वाम प्रत्यभिज्ञा तथा स्पन्दादि सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले विभिन्न शैवगमों की मिली-जुली सम्पत्ति है। जैसे दधि का मन्थन करके मक्खन निकाला जाता है

वैसे ही अनेक शैव-ग्रन्थों का आडोलन करके शैवाचार्यों ने त्रिकदर्शन का आविष्कार किया है। इसके प्रथम आविष्कारक आचार्य 'त्र्यम्बक' है। जिन्होंने अद्वैतवादी त्रिकशास्त्र का अविष्कार किया। इसके पश्चात् सोमानन्द, वसुगुप्त, उत्पल, अभिनवगुप्तादि शैवदर्शन के प्रतिष्ठित विद्वानों ने शिवदृष्टि, स्पन्दकारिका, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा कारिका तथा तन्त्रालोकादि ग्रन्थों की रचना कर इसका पोषण तथा संवर्धन किया। इसी कारण इस त्रिकशास्त्र को त्र्यम्बकदर्शन, अद्वैतशैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, पराद्वैतदर्शन, स्पन्दशास्त्र, कुलशास्त्र आदि नामों से जाना जाता है। महर्षि दुर्वासा ने भगवान शिव के आदेश से त्र्यम्बकादित्य के द्वारा कश्मीर में इसकी स्थापना की थी। इसी कारण इस शास्त्र का नाम शिवाद्वैतदर्शन तथा त्र्यम्बकशास्त्र पड़ा।

प्रत्यभिज्ञा त्रिकदर्शन का महत्वपूर्ण तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्त है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है पहचान करना। इसका विवेचन इसी अध्याय के प्रत्यभिज्ञा शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से किया गया है। त्रिकशास्त्र षडर्धशास्त्र के रूप में भी जाना जाता है—

इह यावत्तु मुख्येयं षडात्मा शास्त्रसन्ततिः।
एतत्पूर्वार्ध भागीनि त्रिकशास्त्राणि यानि तु।।
षडर्धसंज्ञया तानि गुरुभिर्तापितान्यलम्।[५६]

षडर्ध का तात्पर्य है छः का आधा, अर्थात् तीन तत्त्वों को प्रतिपादित करने वाला शास्त्र। इस शास्त्र में 'छ' मात्राएं छः तत्त्वों का प्रकाशन करती है। ये है- अ-अनुत्तर, आ-आनन्द, इ-इच्छा, ई-ईशान, उ-उन्मेष तथा ऊ-ऊर्मि इसमें पूर्व-पूर्व वाला तत्त्व उत्तर उत्तर का कारण है। जैसे आनन्द अनुत्तर पर, ईशान इच्छा पर और ऊर्मि उन्मेष पर आधारित है। अनुत्तर का अर्थ है चित् तथा उन्मेष का अर्थ है ज्ञान। इस प्रकार अनुत्तर, इच्छा और उन्मेष अर्थात् चित्, इच्छा और ज्ञान तत्त्व की प्रधान है ये तीनों तत्त्व शिव की स्वातन्त्रय शक्ति के अनुकूल व्यापार करते है।

इस प्रकार ऊपर बताये गये छ; में से तीन तत्त्वों को स्वीकार करने के कारण त्रिकशास्त्र को षडर्धशास्त्र भी कहा जाता है। काश्मीरशैवदर्शन का यह परामर्शक्रमविज्ञान महर्षि पाणिनि से प्रभावित दिखता है क्योंकि पाणिनि ने अपने माहेश्वर सूत्रो में अ इ उ को सर्वप्रथम लिखा है।[५७] त्रिकशास्त्र का एक अन्य नाम कुलागम या कुलशास्त्र भी है। आचार्य अभिनवगुप्त कुल तथा त्रिक को पर्यायवाची

शब्द मानते हैं। शैवदर्शन में शिव की एक संज्ञा कुल भी है। शैवागम विश्व में एक ही आगम है और उस शैवागम का साररूप है 'त्रिक'। कुल भी त्रिक का अपर नाम है क्योंकि इस कुल में समस्त भेदों का लय हो जाता है।

'तस्य यत्तत् परं प्राप्यं धाम तत् त्रिक संज्ञितम्।
सर्वाविभेदानुच्छेदात् तदेव कुलमुच्यते।।'[५८]

जिस प्रकार पुष्प में गन्ध, तिल में तेल, देह में जीवात्मा व्याप्त है उसी प्रकार विश्व में शैवागमों में प्रतिपादित कुल-तत्त्व प्रतिष्ठा प्राप्त है।

'पुष्पे गन्धस्तिले तैलं देहे जीवो जलेऽमृतम्।
यथा तथैव शास्त्राणां कुलमन्तः प्रतिष्ठितम्।।[५९]
एकं प्राणितनेवं स्यात् त्रिक सर्वेषु शास्त्रतः।।[६०]

यह अद्वैत शास्त्र परमशिव के अनुग्रह के बिना ज्ञान का विषय नहीं बन पाता क्योंकि इसका सम्पूर्ण ज्ञान तो योगियों के लिए भी अगम्य है।

यह दर्शन जो कि अद्वैत तत्त्व में पूर्ण आस्था रखने वाला है तो इसका नाम त्रिक क्यों रखा गया। इसका रहस्य क्या है? त्रिक शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ इस प्रकार है-अष्टाध्यायी सूत्र-'संख्यायाः संज्ञा संघ सूत्राध्ययनेषु' (५-१-५८) से संघ अर्थ में कन् प्रत्यय जोड़कर त्रिक शब्द बना जिसका अर्थ के तीन तत्त्वों का समूह।

काश्मीरशैवदर्शन में चक्रपूजा के सन्दर्भ में १२ चक्रों में तीन प्रकार की शक्तियों की पूजा शैवाचार्यों के द्वारा की जाती है। ये तीन शक्तियाँ-परा, परापरा तथा अपरा है।[६१] ये परा, परापरा तथा अपरा शक्तियाँ ही क्रमशः पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी वाणी कहलाती है।[६२] यही इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति के नाम से भी निरूपित हैं।[६३] त्रिकदर्शन में सिद्धतन्त्र, नामकतन्त्र तथा मालिनीविजयोत्तरतन्त्र के सिद्धातों का संग्रह किया गया है।[६४]

सिद्धतन्त्र क्रिया प्रधान होने के कारण उसमें त्रिक-दर्शन की आचार्य पद्धतियों का निरूपण है, नामकतन्त्र में ज्ञान की प्रधानता है। इसमें भगवान शिव के स्वरूप का विवेचन है। मालिनी विजयोन्तरतन्त्र में क्रिया तथा ज्ञान दोनों की प्रधानता है।

'तत्र क्रिया-प्रधानं सिद्धातन्त्रम् ज्ञान प्रधानं नामकं तन्त्रम् तदुभयमर्थ मालिनीमतम्।'[६५]

उपर्युक्त तीनों तन्त्रों में मालिनीविजयोत्तरतन्त्र प्रधान है और यह इस समय उपलब्ध भी है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस पर मालिनी-विजय-वार्तिक नाम टीका लिखी है।

तन्त्रालोक में मालिनीविजयोत्तर की प्रशंसा अभिनवगुप्त ने की है। अभिनवगुप्त कहते हैं कि शैवागम का प्रतिपाद्य ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसका निर्देश मालिनीविजयोत्तर में भगवान शिव ने न किया हो। यह निर्देश कहीं शब्दरूप में है तो कहीं संकेत रूप में है-

न तदस्तीह यन्त्र श्री मालिनी विजयोत्तरः।
देव देवेन निर्दिष्टं स्व शब्देनाथ लिंगतः।।[६६]

आचार्य जयरथ ने तन्त्रालोक विवेक में इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि नकार से लेकर फकार पर्यन्त बीज मंत्र रूपिणी मालिनी शक्ति पर साधक विजय प्राप्त करके समस्त बन्धनों को पार कर लेता है। इसीलिए इस तन्त्र का नाम मालिनीविजयोत्तर है यह समस्त शास्त्रों का सार है-

''श्रीमालिनीविजयोत्तरे'' इति नादिफान्ताया मालिन्या विजयेन सर्वोत्कर्षेण उत्तरति सर्वस्त्रोतोभ्यः प्लवते सारभूतत्वात् सर्वशास्त्राणाम्।''[६७]

अभिनवगुप्त ने भी यह स्वीकार किया है कि त्रिक-शास्त्र का सार मालिनीविजयोत्तर में है।[६८]

काश्मीरशैवदर्शन में बी० एम० पण्डित ने भी यह कहा है कि सम्भवतः यह शास्त्र मालिनीविजयतन्त्र का उत्तर भाग है।[६९]

इस प्रकार परा, परापरा, अपरा इससे सम्बद्ध पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी, अनुत्तर, इच्छा, उन्मेष तथा चित्, इच्छा, ज्ञान त्रिकों को स्वीकार करने व इनका निरूपण करने के कारण काश्मीरशैवदर्शन त्रिक नाम में प्रसिद्ध है।

'त्रिकं परादिशक्ति त्रयाभिधायकं शास्त्रम्।'[७०]

इस दर्शन के त्रिक नाभकरण का तृतीय हेतु यह माना जाता है कि भगवान शिव का नाम 'त्रिक' है। यह अनुत्तर, इच्छा और उन्मेष तीन तत्त्वों से मिलकर बना है। अनुत्तर चित रूप होने के कारण शिव का स्वरूपहै। इच्छा तथा उन्मेष शिव की शक्ति है। इसी से शिव का ज्ञान होता है। इस सन्दर्भ में परात्रिंशिका शास्त्र में वर्णन आया है कि जिस प्रकार दीपक के आलोक से दिशादि का ज्ञान होता है और सूर्य का ज्ञान उसकी किरणों से होता है उसी प्रकार इच्छा और उन्मेष

रूप शक्ति से शिव का ज्ञान होता है। इस प्रकार तीन अंशों का प्रतिपादन करने के कारण इस शास्त्र का नाम त्रिक दर्शन पड़ा।

यथा लोकेन दीपस्य किरणैर्भास्करस्य वा।
ज्ञायते दिग्विभागा दितद्वच्छक्त्या शिवः प्रिये।।[७१]

तन्त्रालोक में आया है कि दश शिवागम १८ रुद्रागम तथा ६४ भैरवागम का सार त्रिक माना गया है-

दशाष्टा दशवस्वष्ट भिन्नं यच्छासनं विभौः।
तत्सारं त्रिक शास्त्र हि............।[७२]

इसमें तीन त्रिकों का विवेचन इस प्रकार से है- पर-त्रिक, अपर-त्रिक, परापर-त्रिक।

१. परत्रिक के अन्तर्गत शिव, शक्ति और संघट्ट आते हैं।
२. अपरत्रिक के अन्तर्गत शिव, शक्ति और नर आते हैं।
३. परा, परापरा और अपरा इन तीन देवियों का समूह परापर त्रिक कहलाता है। वीरभद्र, आग्नेय, मुखबिम्ब, सन्तान सिद्ध, रौरव, विमल, विजय, निःश्वास, स्वयंभु, ललित, किरण, सौरभेय आदि अठारह रुद्रागम है जो भेदाभेद दृष्टि है।

यामल, भैरव, मंगल, चक्र, मत, शिखा, बहुरूप तथा वागीश में आठ भैरवागम है। इनके प्रत्येक के आठ-आठ भेद होते हैं। कुल चौंसठ भेद भैरवागम के हो जाते हैं। भैरवागम अभेद दृष्टि प्रधान शास्त्र है। इसमें त्रिक तत्त्व प्रधान है। परात्रिंशिका में उल्लेख है कि 'वेद' श्रेष्ठ आगम है। वेदों से उत्तम वामागम है। वामागम से श्रेष्ठ दक्षिणागम है तथा इससे कुलागम श्रेष्ठ है। कुलागम से मतागम तथा इससे त्रिक शास्त्र श्रेष्ठ है। इस प्रकार त्रिकशास्त्र सर्वोत्तम है।

परत्रिक जो शिव-शक्ति और संघट्ट से युक्त है वहीं संसार के वैचित्र्य का कारण है। परत्रिक शास्त्र सामान्य रूप से बोधगम्य न होने के कारण इसे अनाख्येय भी कहा जाता है।[७३] परापर त्रिक के अन्तर्गत परादेवी भैरवयोगिनी कहलाती है तथा चित्प्रतिभा भी कहलाती है-

नौमि चित्प्रतिभां देविं परां भैरव योगिनीम्।
मातृमान प्रमयांश शूलाम्बुज कृतास्पदम्।।[७४]

यह परा देवी प्रमाता प्रमाण और प्रमेय तीन अंशो वाले त्रिशूल रूपी कमल पर निवास करती हैं। उल्लसित स्वभाव से युक्त है। भैरव अर्थात् शिव से सदैव (योग) रहने के कारण इसका नाम भैरवयोगिनी है।[७५]

दूसरी 'अपरा' देवी नृत्य करते हुए शिव के शरीर में रहती है। नृत्य करने वाले शिव के शरीर में यह वर्षाकाल में मेघों में चमकती हुई बिजली के समान कान्तियुक्त रहती है।

नौमि देवीं शरीरस्या नृत्यतो भैरवाकृते।
प्रवृमेध घनव्योम विद्युल्लेखा विलासिनीम्।[७६]

तीसरी देवी अपने ज्ञान रूप प्रकाश के जीव के मलों को दूर करके उनमें त्रिविध बन्धों को काट देती है। यह ज्ञान से युक्त होती है साथ ही इच्छा और क्रिया को भी धारण करती है। ज्ञान उसका पर रूप है। इच्छा और क्रिया उसका अपर रूप है इसीलिए इसे परापरा कहा जाता है।[७७] अपर त्रिक में स्वातन्त्र्य क्रमात्मकता का आशय भेद दृष्टि से है यह भेद लोक में नर रूप में ही दिखाई देता है।[७८]

त्रिक नामकरण का एक अन्य हेतु शैवागम भी है। शैवागमों में त्रिक का आशय केवल तीन तत्त्वों का समूह नहीं है बल्कि वहाँ पर परमतत्त्व के रूप में भी उसे स्वीकार किया गया है। जिसे कुल की संज्ञा भी प्राप्त है।[७९] त्रिक और कुल दोनों पर्याय है।

त्रिक दर्शन पूर्णरूप से अद्वैतवादी है अतः भेदवाचक त्रिक शब्द भी परमार्थ रूप से परमतत्त्वरूप परमशिव में ही पर्यवसित होकर अभेद का बोध कराता है। इस दर्शन के त्रिक नाम होने का यह भी एक रहस्य है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने त्रिक शब्द को एक अन्य अर्थ में परिभाषित किया है। उन्होंने त्रिक का अर्थ किया है 'सौः'[८०] स्, औ और विसर्ग इन वर्णों से निर्मित होने के कारण यह मन्त्र त्रिक कहलाता है। यह मन्त्र **'मन्त्रमहेश'** से भी श्रेष्ठ है। योगी जन भी इस मन्त्र के रहस्य को नहीं जान पाये। इसके रहस्य को या तो शिव जानते हैं या जिन्हें परमगुरु से शक्तिपात से ज्ञान प्राप्त हुआ हो। इस मन्त्र का साक्षात्कार करने वाला योगाभ्यास के बिना परतत्त्व के साथ एकत्व को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं त्रिकदर्शन के त्रिक शब्द में तीन संख्या का उपयोग तो अवश्य है। किन्तु त्रिकदर्शन में भेदभाव के लिए कोई अवसर नहीं है।

यह पूर्णतः अद्वैतवादी दर्शन है। त्रिक दर्शन के अनुसार जगत भी वास्तविक शिव ही है। छत्तीस तत्त्वों के रूप में विस्फारित यह विश्वप्रपञ्च साक्षात् शिवस्वरूप ही है।

त्रिकदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त- किसी भी दर्शन के तीन आधार स्तम्भ होते है। क्रमशः नाम इस प्रकार से है।

१. तत्त्व-मीमांसा (Conception Of Metaphysics)

२. ज्ञान-मीमांसा (Epistemology)

३. आचार-मीमांसा (Path of Salvation)

१. तत्त्व-मीमांसा

तत्त्वमीमांसा से तात्पर्य उस चिन्तन से है जिसमें पदार्थों की संख्या उसकी सत्यता तथा असत्यता पर विचार किया जाता है। तत्त्व शब्द के लौकिक तथा दार्शनिक साहित्य में अर्थ मिलते है। तत् पद परोक्ष अर्थ की ओर संकेत करने वाला शब्द है। इसमें भाववाचक 'त्व' प्रत्यय से 'तत्त्व' शब्द की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार 'तत्त्व' शब्द का सामान्य अर्थ ये हुआ कि तत्त्व अर्थात् वह वस्तु जिसकी सत्ता किसी न किसी रूप में लोक में सिद्ध है और जिसमें भाव तथा क्रिया शक्ति दोनों का सामर्थ्य निहित है।

दर्शनशास्त्र में मूलकारण को तत्त्व कहा जाता है। तत्त्वविद् का अर्थ होता है आत्मज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी। किसी वस्तु का सार अथवा रहस्य भी तत्त्व ही कहा जाता है। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को सन्यास का तत्त्व अर्थात् रहस्य बताने की इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं-

'सन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।' (श्रीमद्भगवत्गीता)

दर्शन शास्त्र में तत्त्व-मीमांसा का विशिष्ट अर्थ होता है। है। इस ब्रह्ममाण्ड में हम जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं सूँघते हैं आदि क्रियाओं और उन पदार्थों के पीछे कौन सा कारण कार्य कर रहा है। इसकी खोज करना तथा तार्किक दृष्टि से उस पर विचार करना ही 'तत्त्वमीमांसा' है।

तत्त्व पर दार्शनिकों ने अपने-अपने ढंग से खोज की है किसी ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल एक ही तत्त्व माना किसी ने दो किसी ने तीन, किसी ने सोलह किसी ने २५ तथा किसी ने छत्तीस तक तत्त्वों को स्वीकार किया है।

भारतीयदर्शन ने सृष्टि के समस्त तत्त्वों पर विचार किया है। प्रत्येक दर्शन का तत्त्वों कें सन्दर्भ में अपना मौलिक दृष्टिकोण है।

वैशेषिकदर्शन के प्रवर्तक ऋषि कणाद है। विशेष पदार्थों का विवेचन करने के कारण इस दर्शन का नाम वैशषिक दर्शन रखा गया है। कणाद ने भावात्मक और अभावात्मक पदार्थों का निरूपण किया है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय ये छः भावात्मक पदार्थ हैं। प्रागभाव, अन्योन्याभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव से चार अभावात्मक पदार्थ है।

द्रव्य-द्रव्य नित्य स्वतन्त्र सत्ता वाला होता है। यह गुण तथा कर्म का आश्रयभूत अपने कार्य का समवायी कारण होता है। पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु सावयव होने से अनित्य द्रव्य है। आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन निरवयव होने से नित्य द्रव्य है। कुल नौ द्रव्य है।

गुण-गुण स्वतन्त्र सत्ता वाला नहीं होता वह द्रव्य पर आश्रित होता है। कणाद ने सत्रह गुण माने है।

कर्म-कर्म भी स्वतन्त्र सत्ता वाला नहीं है यह द्रव्य के आश्रित होता है। यह संयोग-विभाग का हेतु होने के कारण मूर्त द्रव्यों में रहता है। कर्म पाँच प्रकार के है-उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसरण तथा गमन।

सामान्य-सामान्य एक नित्य पदार्थ है। किसी वर्ग विशेष के सभी व्यक्तियों में समवाय सम्बन्ध से विद्यमान तत्त्व ही सामान्य है। सामान्य को जाति भी कहा जाता है। वैशेषिक दर्शन वस्तुवादी होने से सामान्य की वस्तुगत सत्ता स्वीकार करता है।

विशेष– गुण कर्म के आधार पर सावयव पदार्थों में भेद किया जा सकता है किन्तु निरवयव नित्य पदार्थों में भेद नहीं किया जा सकता। अत: उससे विशेष पदार्थ की कल्पना की गयी है। प्रत्येक नित्य द्रव्य में एक विशेष होता है। नित्य द्रव्यस्थ होने के कारण विशेष भी नित्य होता है।

समवाय–समवाय नित्य सम्बन्ध को कहते हैं। यह दो अयुत सिद्ध पदार्थो जैसे-गुण और गुणी, क्रिया और क्रियावान समवाय होता है। समवाय नित्य होने के कारण एक पदार्थ माना जाता है।

न्यायदर्शन वैशेषिक द्वारा निरुपित तत्त्व-विचार स्वीकार तो करता है। किन्तु न्याय मुख्यत: तर्क और ज्ञान की मीमांसा करता है। न्याय-दर्शन में सोलह पदार्थो का निरूपण किया गया है। जिसके नाम इस प्रकार से है-१. प्रमाण २. प्रमेय ३. संशय ४. प्रयोजन ५. दृष्टान्त ६. सिद्धान्त ७. अवयव ८. तर्क ९. निर्णय १०.

वाद ११. जल्प १२. वितण्डा १३. हेत्वाभास १४. छल १५. जाति १६. निग्रह स्थान।

न्याय अपने प्रमेय नामक पदार्थ में वैशेषिक के साथ पदार्थों का अन्तर्भाव कर देता है।

न्याय-दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। वह सर्वज्ञ है तथा तत्त्वज्ञान अवबोध में सहायक होता है। न्यायकुसुमाञ्जलि में ईश्वर की सत्ता को सिद्ध किया है। वहाँ वर्णन आता है।

'कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।

वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः।'[८१]

कार्य से, आयोजन से, धृत्यादि से, पद से, प्रत्यय से, पद से, प्रत्यय से, श्रुतियों से, वाक्यों से तथा विशिष्ट संख्या से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।

सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्त्वों का निरूपण किया गया है। इनका विवरण इस प्रकार है-

ज्ञानेद्रियाँ	-५	कुल ११ इन्द्रियाँ है। मन को भी एक इन्द्रिय माना है।
कर्मेद्रियाँ	-५	
मन	-१	
तन्मात्रायें	-५	
महाभूत	-५	
महद्तत्त्व	-१	
अहंकार	-१	
प्रकृति	-१	
पुरुष	-१	
	२५ कुल पच्चीस तत्त्व है।	

इन पच्चीस तत्त्वों को ४ वर्गों में विभाजित किया गया है।

१.प्रकृत्यात्मक २. विकृत्यात्मक ३. उभयात्मक ४. अनुभयात्मक

'मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।

षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिर्पुरुष।।[८२]

'प्रकृति तत्त्व प्रकृत्यात्मक है। यह न तो किसी की विकृति है और न ही इसका कोई अन्य कारण है। इसे भूल प्रकृति भी कहा जाता है।

महद्तत्त्व, पञ्चतन्मात्राएँ और अहंकार उभयात्मक तत्त्व है। ग्यारह इन्द्रियाँ तथा आकाशादि पञ्चमहाभूत विकृत्यात्मक तत्त्व है। 'पुरुष' अनुभयात्मक तत्त्व है वह न तो प्रकृति है न ही विकृति है। पुरुष समस्त प्राणियों का चेतन तत्त्व है यही चेतनतत्त्व ही उसका स्वरूप है। यह उसका गुणधर्म नहीं है। सांख्य द्वैतवादी दर्शन है।

योग-दर्शन में भी सांख्य के समान पच्चीस तत्त्वों की गणना की गयी है। योग एक और तत्त्व ईश्वर को भी मानता है इसीलिए योग को सेश्वर सांख्य कहा जाता है। योगदर्शन का ईश्वर एक पुरुष विशेष है। वह नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव वाला दिशाओं और काल की सीमा से परे है। वेद का प्रथम उपदेष्टा होने के कारण ही वह गुरुओं का भी गुरु है।

योगदर्शन का ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक और कर्माशयों से सर्वथा अस्पृष्ट है। योग दर्शन में उल्लेख है-

'क्लेशकर्मविपाकाशैर्परामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः।'[८३]

उस ईश्वर का वाचक प्रणव है।[८४]

वेदान्त अद्वैतवादी दर्शन है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार परमतत्त्व एक मात्र ब्रह्म ही है। उसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु सत् नहीं है। शेष सभी मिथ्या है-

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

मीमांसादर्शन वाक्यार्थ-विचार-प्रधान शास्त्र है। इसमें तत्त्व-विचार नहीं होता है फिर भी पदार्थों का खण्डन आदि किये जाने के कारण कुछ पदार्थ माने जाते हैं। प्रभाकर गुरु आठ पदार्थों को स्वीकार करते है। ये है-द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, समवाय, शक्ति, सादृश्य और संख्या। यहाँ द्रव्य, गुण और कर्म वैशेषिकदर्शन के ही समान है।

कुमारिलभट्ट द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और अभाव पाँच पदार्थों को मानते हैं। इन्होंने विशेष पदार्थ को गुण माना है।

जैनदर्शन के अनुसार चेतन जीव और अचेतन अजीव ये दो स्वतन्त्र तत्त्व हैं। इन दोनों तत्त्वों को द्रव्य कहते हैं। जैनदर्शन के अनुसार जिसमें पर्याय और गुण नामक धर्म हो वह द्रव्य है।[८५]

जैनदर्शन के कुछ आचार्य सात प्रकार के तत्त्वों का निरूपण करते हैं। ये है-जीव, अजीव, बन्ध, संवर, निर्जरा, आस्रव, तथा मोक्ष।[८६] जीव चेतन तत्त्व है सांसारिक अवस्था में आत्म जीव कहलाता है। अजीव अचेतन-तत्त्व है। जीव में कर्मों का योगिक-क्रिया के द्वारा प्रविष्ट होना आस्रव कहलाता है। शरीर-मन और वाणी की क्रियाशीलता ही जैन दर्शन में योग है। इन्हीं क्रियाओं से जीव कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। आस्रव के कारण जीव अपने आत्मस्वरूप से च्युत होकर कर्मबन्धन में पड़ता है तब उसे 'बन्ध' कहते हैं। कर्मबन्ध के कारणों का जीव द्वारा जब विरोध किया जाता है तब वहीं 'संवर' कहलाता है। यही संवर ही मोक्ष का कारण होता है। 'निर्जरा' तप, ध्यान जपादि साधना द्वारा संचित कर्मों को नष्ट कर देना है। निर्जरा से कर्मों के विनष्ट होने से समस्त कर्मों की जो आत्यन्तिक मुक्ति होती है वही मोक्ष है। जैन-दर्शन के कुछ विद्वान् पाप और पुण्य ये दो और तत्त्व स्वीकार करते है।

चार्वाक-दर्शन केवल 'प्रत्यक्ष' प्रमाण को मानने के कारण पृथ्वी, जल अग्नि और वायु इन चार महाभूत को ही तत्त्व मानता है। चार्वाक केवल जड-तत्त्व की ही सत्ता को स्वीकार करता है। वह ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा स्वर्ग नरक जैसे विषयों में विश्वास नहीं करता है। क्योंकि इनका प्रत्यक्ष नहीं होता। चार्वाक चैतन्यविशिष्ट शरीर को ही आत्मा मानता है। शरीर के जीवित न रहने पर चैतन्य भीं उसमें नहीं रहता। केवल शरीर के जीवित रहते ही चैतन्य की स्थिति है। इस प्रकार अन्वय और व्यतिरेक से शरीर से पृथक चैतन्य की सिद्धि चर्वाक के मत में नहीं है।

बौद्धदर्शन में चार आर्य सत्यों का ही उपदेश किया गया है। ये है-दुःख, दुःख समुदाय, दुःख निरोध और दुःखनिरोध के उपाय। इसके आत्मा-परमात्मा तथा जगत आदि तत्त्वों का विवेचन नहीं किया गया है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में तत्त्व शब्द का अर्थ व उसकी परिभाषा की है। उसके मतानुसार "**तनोति सर्वमिति 'तत्' परं रूपं सत्य भावस्तत्त्वम्।**"[८७]

अर्थात जो सबका विस्तारण करता है पर परमशिव तत् पद का वाचक है उस तत् का भाव तत्त्व या शिवत्त्व कहलाता है।

त्रिकदर्शन में केवल ब्रह्माण्ड में फैले घटक पदार्थ ही तत्त्व नहीं है बल्कि शक्ति से विकसित रूपों को भी तत्त्व कहा गया है। इस दर्शन में शक्ति से विकसित छत्तीस-तत्त्वों को तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इन छत्तीस तत्त्वों की सत्यता तथा यथार्थता उतनी ही स्वीकार की गयी है जितनी परमशिव

की। अन्य दर्शनों में विचार इससे भिन्न है। इसलिए त्रिकशास्त्र में तत्त्व का एक विशिष्ट अर्थ है।

आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार चाहे किसी भेद से जो रूप सर्वत्र अन्वित हो वह रूप तत्त्व कहलाता है। और वह रूप शिव ही है उसी के स्वातन्त्र्य से शिवानुगत छत्तीस तत्त्व है। अत: पृथिवी आदि छत्तीस रूप भी शिव है अत: वे तत्त्व है।[८८] धृति, काठिन्य, गरिमा, स्थूलता आदि धर्मों से सर्वत्र अनुगत पृथिवी एक तत्त्व हो। जहाँ-जहाँ धृति काठिन्यादि धर्म होगे वहाँ-वहाँ पृथिवीत्व होगा। होगा। अत: पृथ्वी एक तत्त्व है।-

'यन्तु कतिपय भेदानुगतं रूप तत्त्वत्वम् यथा पृथिवी नाम धृति काठिन्य स्थौल्यादिरूपा कालाग्निप्रभृति वीर भडान्त भवनेशाधि तिष्ठति ब्रह्माण्डानुगता।।'[८९]

तत्त्व वस्तु रूप होता है। कल्पित नहीं होता है उसमें अपने धर्मों को प्रकट करने की योग्यता होती है वह अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होता। जगत उसके आधीन होता है तत्त्व से ही जगत रचित होता है। यह तत्त्व किसी अन्य से तत् नहीं होता।[९०] यही तत्त्व का संक्षिप्त स्वरूप है।

काश्मीरशैवदर्शन में छत्तीस तत्त्व का निरूपण किया गया है जिसकी संख्या सभी दर्शनों से सबसे अधिक है। ये छत्तीस तत्त्व इस प्रकार से है-शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, नियति, काल, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वक् चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी।

उपर्युक्त तत्त्वों को तीन भागों में विभाजित किया गया है-

१. शिवतत्त्व-इसमें शिव तथा शक्तितत्त्व आता है।

२. विद्यातत्त्व-इसके अन्तर्गत सदाशिव, ईश्वर तथा सद्विद्या आता है।

३. आत्म तत्त्व-कला, विद्या, राग, नियति, माया, काल, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पञ्च ज्ञानेद्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा पञ्चमहाभूत का विवेचन इसके अन्तर्गत होता है।

सृष्टि-क्रम के शिवतत्त्व से लेकर माया तत्त्व तक ये पाँच बिना किसी

सहायक अथवा किसी अन्य वस्तु के माध्यम से सीधे अभिव्यक्त होते हैं। शिवतत्त्व से लेकर शुद्ध, विद्या तक की सृष्टि को शुद्ध सृष्टि कहते हैं।

'शक्ति' यह प्रकाशात्मक शिव का विमर्श स्वरूप है। तथा उससे अभिन्न है शिव तथा शक्ति में अविनाभाव सम्बन्ध है।[९१] इस शक्ति तत्त्व में सम्पूर्ण चराचर विश्व उसी प्रकार समाया रहता है जिस प्रकार एक बीज के अन्दर विशाल वृक्ष बीजावस्था में विद्यमान रहता है। तन्त्रालोक में उद्धृत् है कि 'बाह्योन्मुख परमशिव की उन्मुखता रूप क्रिया ही शक्ति तत्त्व है।'[९२] महार्थमञ्जरी में भी ऐसा ही वर्णन आता है कि परमेश्वर जब अपने प्रकाश रूप अर्थ तत्त्व को बाहर प्रकाशित करने के लिए उन्मुख होता है तब वह शक्ति कहलाती है।[९३] शिव और शक्ति दोनों अभिन्न है। अतः काश्मीरशैवदर्शन में कहीं शिवतत्त्व को परमशिव का प्रथम स्पन्द तो कहीं शक्ति तत्त्व को प्रथम स्पन्द कहा गया है। आचार्य क्षेमराज ने विश्व सृजन की ईच्छा वाले परमेश्वर के प्रथम स्पन्द को शक्ति तत्त्व कहा है।[९४] शक्ति के अनन्त स्वरूपों में पाँच महत्वपूर्ण है। ये है-चित् शक्ति, इच्छाशक्ति, आनन्दशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति।

आत्मतत्त्व के अन्तर्गत इक्कीस तत्त्व आते हैं। इसे अशुद्ध सृष्टि या मायीय सृष्टि भी कहा जाता है। माया के मलों का समावेश हाने के कारण ही इस अध्वा को अशुद्ध सृष्टि या अध्वा कहते हैं। काश्मीरशैवदर्शन में माया को भेद बुद्धि कहा गया है।[९५]

विद्या ज्ञान की सीमित शक्ति है। परिमित ज्ञान का प्रमुख कारण होने के कारण इसे विद्या कहा जाता है।[९६] जीव में कुछ ही वेद्यों का ज्ञान उत्पन्न करने के कारण इसे '**किञ्चिज्ज्ञत्वोन्मीलनरूपा**' कहा गया है।[९७] यह पुरुषों में विवेकशक्ति के रूप में स्थित है। यह अवचेतन बुद्धितत्त्व से भिन्न है। बुद्धि स्वरूपा होते हुए भी गुणों का कार्य होने के कारण जड़ है।

काश्मीरशैवदर्शन और सांख्य में २४ तत्त्वों के विषय में सहमति है। सांख्य में प्रकृति आदि तत्त्व है। काश्मीरशैवदर्शन में प्रकृति स्वयं सृष्टि विकास का एक तत्त्व होते हुए भी परमशिव की ही अभिव्यक्ति है इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है।

२. ज्ञान-मीमांसा

ज्ञान-मीमांसा में उन प्रमाणों का विवेचन किया जाता है जिनके आधार पर

तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय दर्शन में ज्ञान का व्यापक अर्थ चेतना माना जाता है। पदार्थ के यथार्थस्वरूप का ज्ञान जिसके द्वारा होता है, उसे प्रमाण कहते है। यथार्थ अनुभव अर्थात् प्रमा का करण (साधक) ही प्रमाण है।[९८]

बौद्धदर्शन के विद्वान् सारूप्य रूप प्रमितिकरण को प्रमाण मानते हैं। सांख्य योग में विषयाकार अन्तःकरण की वृत्ति ही प्रमाण है। मीमांसा दर्शन में ज्ञाता की अनुभूति तथा व्यापार को प्रमाण माना गया है।[९९]

अद्वैतवेदान्त प्रमाण के विषय में दो मत प्रस्तुत करता है। प्रथम मत के अनुसार अनधिगत विषय का अबाधित तथा यथार्थ ज्ञान प्रमा है। उसका प्रकृष्ट साधन प्रमाण है। द्वितीय मत के अनुसार अबाधित विषयक ज्ञान ही प्रमा है। इसमें अनधिगत विषय को नहीं लिया गया है। जिसके कारण स्मृति ज्ञान को भी प्रमा के रूप में स्वीकार किया गया है।

वैशेषिक-दर्शन में न्याय-दर्शन के समान ही विवेचन मिलता है। केवल प्रमा के स्वरूप निर्धारण करने में वैमत्य है।

चार्वाक-दर्शन तो केवल प्रत्यक्ष-प्रमाण ही मानता है केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानने वाले का ज्ञान अपूर्व माना जाता है क्योंकि ज्ञान का एक विस्तृत क्षेत्र प्रत्यक्ष से इतर प्रमाणों पर आधारित है। जैन, बौद्ध तथा वैशेषिकदर्शन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान रूप दो ही प्रमाण मान्य है। सांख्य तथा योग दर्शन में प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द प्रमाण ही स्वीकार है। रामानुजवेदान्तदरर्शन भी यही तीन प्रमाण स्वीकार करता है। न्याय दर्शन में चार प्रमाणों-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द की गणना हुई है। मीमांसक प्रभाकर मतावलम्बी उपर्युक्त चारों प्रमाणों के अतिरिक्त अर्थापत्ति नामक एक और प्रमाण को स्वीकार करते है। कुमारिलभट्ट इन पाँच प्रमाणों के साथ एक और अनुपलब्धि नामक प्रमाण भी स्वीकार करते हैं।

पौराणिक ग्रन्थों में उपर्युक्त छः प्रमाणों के अतिरिक्त सम्भव तथा ऐतिह्य नामक दो और प्रमाणों का उल्लेख मिलता है। तन्त्रशास्त्र में पौराणिकों के आठ प्रमाणों के अतिरिक्त एक और 'चेष्टा' नामक प्रमाण माना जाता है।

बुद्धि अपने सहज भाव से निरन्तर ज्ञान प्राप्त करती रहती है। प्राप्त ज्ञान की प्रमाणिकता को सिद्ध करने के लिए यदि किसी अन्य प्रमाण या साधन की आवश्यकता न हो तो वह ज्ञान स्वतः प्रमाण माना जायेगा यदि उपलब्ध ज्ञान के प्रामाण्य हेतु किसी साधन या प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है तो यह परतः

प्रमाण माना जायेगा। स्वतः प्रामाण्यवादियों के अनुसार सभी ज्ञान स्वयं में प्रमाणिक होते हैं।

काश्मीरशैवदर्शन में तीन प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम (शब्द) को स्वीकार किया गया है तथा अन्य प्रमाणों में इन तीन प्रमाणों में ही समाविष्ट कर दिया गया है। प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि प्रमाण को समाहित किया गया है। जबकि न्याय वैशेषिक दर्शनाचार्यों ने अर्थापत्ति का अर्न्तभाव अनुमान में किया है।

काश्मीरशैवदर्शन में अन्योपलभ्य के रूप में अभाव को स्वीकार किया गया है।[१००] इस दर्शन में अन्योपलब्धि के रूप में अनुपलब्धि को स्वीकार किया गया है। घटाशून्य घटाभावादि इसके उदाहरण दिये गये है। यह ही प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत स्वीकृत है।

प्रमाण विचार के सन्दर्भ में काश्मीरशैवदर्शन की मान्यता है कि जिन साधनों से यथार्थ ज्ञान होता है उन साधनों से ही ज्ञान का प्रामाण्य तथा जिन साधनों से अयथार्य ज्ञान उत्पन्न होता है। उन्हीं से ज्ञान का अप्रामाण्य सिद्ध होता है।

शैवमत के प्रमा तथा अप्रमा स्वरूप यथार्थ ज्ञान का स्वभाव ही प्रामाण्य तथा अयथार्थ ज्ञान का स्वभाव अप्रामाण्य है।

३. आचार-मीमांसा

आचार मीमांसा में मोक्ष प्राप्ति तथा उसके उपायों पर विचार किया जाता है। इनके सन्दर्भ में त्रिक-दर्शन की मान्यताएँ, विचार अन्य दर्शनों से भिन्न हैं, परिचय संक्षेप में इस प्रकार से हैं-

(क) यथार्थवादी आभासवाद

जगत् की स्थिति को त्रिक-दर्शन की दार्शनिक दृष्टि में आभासवाद कहा जाता है। जगत की नित्यता, सत्यता, असत्यता आदि के विषय में विभिन्न दर्शनों के विचार भिन्न-भिन्न होते हैं। अन्य दर्शन आभास का अर्थ अवास्तविक मानते हैं कहते हैं-'जगत आभास मात्र है।' अर्थात् संसार असत्य है, मिथ्या है। यह केवल प्रतीति मात्र है।

बौद्धदर्शन जगत को सर्वथा असत्य मानते है केवल अज्ञानपरक वासनाओं के कारण जगत का आभास होता है। वस्तुतः जगत की सत्ता कहीं नहीं है बौद्धों की यह दृष्टि विज्ञानवाद या आभासवाद के नाम से जानी जाती है।

अद्वैत वेदान्त आभास का अर्थ मिथ्या प्रतीति मानता है। बौद्धों से इनका अन्तर यह है कि यह जगत की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करते हैं और बौद्ध तो जगत को स्वप्न के समान असत्य मानते है। जगत की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करने के कारण अद्वैत वेदान्तियों के इस मत को अद्वैतीय आभासवाद (Monistic Idalism) कहा जाता है।

न्याय दर्शन में जगत की सत्ता यथार्थ रूप में मानी जाती है। उनके अनुसार जगतरूप कार्य का कर्ता परमेश्वर है। किन्तु यहाँ ईश्वर और जगत के गुणों में समानता न मानकर महान विषमता मानी गयी है। इनका मानना है कि जगत जड़, ज्ञानरहित तथा शक्तिहीन है किन्तु ईश्वर चेतन सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। न्यायदर्शन में तर्क के आधार पर जगत की यथार्थता को प्रमाणित किया गया है। इसलिए यहाँ पर तार्कित यथार्थवाद (Logical Realism) है।

वैशेषिक दर्शन परमाणुओं को और परमाणु में रहने वाले विशेषों को जगत का उत्पादन कारण मानते हैं। इनके मतानुसार जगत की सत्ता यथार्थ है। यह मत परमाणु बहुत्ववाद (Atomic Plurism) के नाम से प्रसिद्ध है।

किन्तु त्रिकदर्शन का आभासवाद इन सभी से भिन्न है। त्रिकदर्शन जगत को पूर्णतः यथार्थ मानता है। मिथ्या नहीं। अन्य दर्शनों में कार्य और उसके कर्त्ता के मध्य बड़ी खाई है। अन्धकार और प्रकाश के समान दोनों में गहरा भेद है उनमें सम्बन्ध नहीं बनता। जबकि कार्य और कारण में सम्बन्ध होना अनिवार्य है। त्रिक दर्शन इस दोष से मुक्त है। इसके मतानुसार परमशिव समस्त जगत को अपने में अवभासित करता है और यह जगत अभिन्न भाव से शिव के अन्दर स्थित रहता है। किन्तु अपने स्वातन्त्र्य शक्ति से उसे भिन्न रूप में अवभासित करता रहता है।

इस प्रकार दर्पण में बिम्ब के समान यह सम्पूर्ण चराचर जगत शुद्ध स्वरूप परमशिव में प्रतिबिम्बित होता रहता है और अभिन्न होते हुए भी भिन्नवत् प्रतीत होता रहता है-

निर्मले मुकुरे यदवत् भान्ति भूमि जलादयः।
अभिन्नास्तद् वदेकस्मिन् चिन्नायं विश्ववृत्तिता।।[१०१]

त्रिकदर्शन का यह बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव लोक के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से विलक्षण है। त्रिक-दर्शन में बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों शिव हैं किन्तु लोक का प्रतिबिम्बित पदार्थ बिम्ब से पृथक होता है। विश्व तथा विश्वोत्तीर्ण दोनों रूपों में एक ही तत्त्व केवल शिव है। परमशिव की स्वातन्त्र्य शक्ति से जगत स्वतः प्रतिबिम्बभूत हो जाता है। संसार पारमार्थिक सत्य है। संसार की सत्ता भी शुद्ध संवित रूप में है न कि संसाररूपता में यह अविद्या के समान मिथ्या है।

इस प्रकार त्रिकदर्शन का जगत के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त यथार्थवादी आभासवाद (Realstic Idalism) कहलाता है। यथार्थवाद कहने का आशय यह है कि जगत शिव रूप होने के कारण वास्तविक है और आभास कहने का तात्पर्य यह है कि भिन्न सा अवभासित होता है। जो कि परमशिव की इच्छा से ही होता है। क्योंकि यह परमशिव का स्वभाव है उसका कोई स्वार्थ या परार्थ नहीं है। जिस प्रकार से अग्नि के जलने के क्या कारण हो सकते हैं? मेरे विचार से कुछ भी नहीं क्योंकि जलना तो अग्नि का स्वभाव है। इसी प्रकार जगत का अवभासन भी शिव का स्वभाव है।[१०२]

(ख) परिपूर्णता का सिद्धान्त

परमशिव सदैव सभी अवस्थाओं, स्थितियों से परिपूर्ण रहता है वह कभी छोटा-बड़ा नहीं होता न ही घटता बढ़ता है न ही शुद्ध-अशुद्ध होता है। देश काल परिस्थिति का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जड़चेतनादि सभी जीवों के रूप में वह व्याप्त है। विश्वोतीर्ण और विश्वमय अवस्थाओं में भी उसमें कोई अन्तर नहीं आता। श्रुति भी यही कहती है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।-(ईशा०-१)

परमात्मा परमतत्त्व है जो असीम और अखण्ड रूप है। उसी में प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय सभी समाये है। सब प्रपञ्च उसी में है, उसी में क्रिया भी है, लय भी है। ईश्वर ही अपनी इच्छा से अपने स्वरूप को जगत रूप में अवभासित करता है। इस बात को उत्पलाचार्य ने भी कहा है-

तदेवं व्यवहारेऽपि प्रभुर्देहादिमा विशन्।
भान्तमेवान्तरर्थौघामिच्छया भासयेद् बहिः।।[१०३]

महान शैव दार्शनिक बी० एन० पण्डित ने कहा है 'जिस प्रकार से दूध में

मक्खन, मलाई पनीर, घी आदि रहते है वैसे ही यह संसार भी परमशिव में रहता है। ये चीजें अपने-अपने व्यक्तिगत रूप में अलग-अलग नहीं रहती अपितु दूध की बनी हुई कोई चीज एक मात्र दूध की ही दशा में वहाँ रहती है। उसी तरह से सारा संसार उस शुद्ध संवित में संवित बना हुआ संवित के ही रूप में सदैव रहता है इस तरह से वह परा अनुत्तरसंवित परिपूर्ण है।'[१०४]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि परमतत्त्व सदा परिपूर्ण शुद्ध और असीम तत्त्व है। त्रिक-दर्शन के आचार्यों के मतानुसार व्याहारिक सत्ता रूप में जगत भी साक्षात् परमशिव ही है। वह जगत को स्वेच्छा से भिन्न रूप में प्रकट करता है।[१०५] जगत भी परमशिव के समान सत्, संविद् और परिपूर्ण है।

(ग) सत्कार्यवाद

सत्कार्यवाद का अर्थ है कि यह संसार अभिव्यक्ति से पूर्व भी सत् था और लय के बाद भी सत् ही रहेगा। न ही इसकी अपूर्व उत्पत्ति होती है नहीं इसका अत्यन्त विनाश ही होता है। त्रिक दर्शन जगत की सत्ता के सम्बन्ध में सत्कार्यवादी है। वो कहते हैं कि जगत पहले भी सत् था तभी तो प्रकाश में आया अर्थात् व्यवहार में आया और प्रलयकाल में भी यह परमशिव में संविद्रूप में ज्ञान व प्रकाश रूप में रहेगा। अतः इसका अभाव कभी नहीं होगा। यह त्रिकदर्शन का सत्कार्यवाद के सम्बन्ध में विचार है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी में इस तथ्य को अभिव्यक्त किया है।[१०६]

(घ) सामरस्य सिद्धान्त

परमतत्त्व प्रकाश और विमर्श का एक सामरस्य रूप है। यह त्रिकदर्शन का सिद्धान्त है। प्रकाश चेतना का अवभासन रूप है और विमर्श उसका स्वभाव है। प्रकाश ज्ञान है और विमर्श ज्ञान की क्रिया है। जहाँ प्रकाश होता है वही विमर्श भी होता है जीव में 'मैं' की प्रतीति 'मैं' के प्रकाश के साथ होती रहती है। इस प्रकार प्रकाश एक ज्ञान है और विमर्श उस ज्ञान की क्रिया है। परमेश्वर भी प्रकाश विमर्शात्मक रूप है। प्रकाश इसलिए प्रकाश होता है क्योंकि उसका स्वभाव विमर्श है।[१०७] इसलिए प्रकाश और विमर्श एक दूसरे से भिन्न वस्तु नहीं है।

परमशिव शुद्ध प्रकाश स्वरूप है वह सदा सर्वत्र प्रकाशित होता रहता है। क्योंकि वह चेतन है। सूर्याग्नि इत्यादि स्वयं प्रकाशित नहीं होते उसे प्रकाशित करने के लिए चेतना के प्रकाश की आवश्यकता होती है। किन्तु जीवों की चेतना

स्वयं प्रकाश है। यह प्रकाश अहम् के रूप में सदैव भासित होता रहता है। शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि प्राणादि भी चेतना के प्रकाश से ही प्रकाशित होती है। अत: जीव और जगत के रूप में परमशिव ही प्रकाशित हो रहा है। सब कुछ यही है यही एक तत्त्व है इससे भिन्न कुछ नहीं है सभी रूपों में यहीं अभासित होता है और सब आभासों में इसी का विमर्श होता है।

(ङ) शिवाद्वयवाद

त्रिकदर्शन पूर्णत: अद्वैत वाद के सिद्धान्त पर आधारित है। इसका अद्वैतवाद दर्शन की अन्य धाराओं के अद्वैतवाद से कुछ विशिष्ट प्रकार का है। त्रिकदर्शन के अनुसार शिव ही एक तत्त्व (Supreme Absolute) है। यह शिव द्विव्यशक्ति सम्पन्न है। संसार पूर्ण सत्य है। बन्धन व मोक्ष, संकोच तथा विकास, विद्या और अविद्या सभी कुछ शिव है। यहाँ कोई तत्त्व ऐसा नहीं है जो शिव से रहित हो और जहाँ शिव हैं वहाँ परमशिव है।[१०८]

निरन्तर शैवीसाधना से योगियों में इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण दृष्टि उत्पन्न होती है जिससे वह प्रत्येक तत्त्व में शिव के ही दर्शन करते हैं। उन्हें कोई भेद बुद्धि के त्याग की भी आवशकता नहीं पड़ती। इस स्थिति में घट भी शिव हो जाता है और जीव भी परमशिव रूप दिखाई देता है।[१०९] मालिनीविजयवार्तिक में इस भाव स्थिति को 'पराद्वैत' कहा गया है-

'इदं हि पराद्वैतं भेद त्याग ग्रहौ न यत्।'[११०]

शैवागम में द्वैत, द्वैताद्वैत तथा अद्वैत प्रतिपादन सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाता है। भगवान शिव ने त्र्यम्बक को अद्वैत शैव का, अमर्दक द्वैतशैव का तथा श्रीनाथ को द्वैताद्वैत का प्रतिष्ठापक आचार्य के रूप में प्रकट किया। आजकल कश्मीर में केवल त्र्यम्बक शाखा ही प्रचलित है। शेष नामशेष रह गये है। आचार्य सोमानन्द, वसुगुप्त, उत्पल तथा अभिनवगुप्त इसी शाखा में विद्वान् आचार्य रहे।

(च) स्पन्द-सिद्धान्त

त्रिकदर्शन के परमशिव के चंचलात्मक या चलनात्मक स्वभाव को स्पन्द कहा गया है। जिसका विस्तार से विवेचन इसी अध्याय के 'स्पन्द' नामक बिन्दु में किया गया है।

(छ) स्वातन्त्र्य-सिद्धान्त

त्रिकदर्शन में परमशिव की इच्छा ही स्वातन्त्र्य इच्छा शक्ति कहीं जाती है।

जो कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त कहा जाता है। परमशिव का यह स्वातन्त्र्य ही स्थूल जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार का मूल कारण है। यह जगत परमेश्वर का स्वातन्त्र्य रूप है न कि उसका विवर्त या परिणाम रूप, जो कि अन्य दर्शन मानते रहे है। परमेश्वर इसी स्वातन्त्र्य के प्रभाव से अपने को ही अपनी ही शक्ति से इस विचित्र जड़ चेतन संसार के रूप में अभिव्यक्त करता रहता है। इस कार्य के लिए उसे अपने से भिन्न किसी भी उपादान कारण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। न ही उसे किसी माया तत्त्व की या अविद्या-तत्त्व की ही आवश्यकता पड़ती है। और नहीं किसी प्रकृति की अपेक्षा होती है। क्योंकि इस सम्पूर्ण विश्व और विश्व से इतर में परमशिव के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। इसीलिए सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा लयादि में अन्य किसी साधन की अपेक्षा नहीं होती। केवल उसका स्वातन्त्र्य ही कारण है जो कि उसका स्वभाव है। क्योंकि यदि किसी उपादानादि कारण की अपेक्षा होती तो परमेश्वर का स्वातन्त्र्य बाधित हो सकता था जब कि ऐसा नहीं है। प्रकृति, अहंकार, बुद्धि आदि विभिन्न तत्त्वों के रूप में परमेश्वर की शक्तियाँ ही उससे अपृथक रहते हुए प्रकट हो जाती है।

संसार की सृष्टि स्थिति और संहार यह परमेश्वर की स्वाभाविक क्रिया है औपाधिक नहीं है। यह परमेश्वर की परमेश्वरता है यही उसका स्वातन्त्रय है। दृश्यमान सम्पूर्ण अर्थ समूह शिवात्मक होने के कारण निरूपादान रूप ही है।[१११] विश्वमय होना और विश्वोतीर्ण होना दोनो ही उसके आत्मभूत स्वभाव है।

विश्वोतीर्ण विश्वमयं चेति त्रिकादि दर्शन विदः।[११२]

यदि परमेश्वर सदैव एक रूप में ही रहे तो वह घट के समान जड़ और अनीश्वर कहलाने लगेगा।

परमशिव की इच्छा से जब विभिन्न शक्तियाँ उसके भीतर प्रतिबिम्बित हो जाती है तब शिव-तत्त्व से लेकर पृथिवी पर्यन्त अनन्त देह, लोक और भावों की सृष्टि हो जाती है। यह उस परमशिव का स्वातन्त्र्य ही है। यह परिणाम या विवर्त नहीं है। क्योंकि दही के रूप में दूध जब परिणाम को प्राप्त हो जाता है तो उसका स्वरूप, गुण, धर्म सब कुछ बदल जाता है। वह दूध रहता ही नहीं है। अंकुरित होने पर बीज अपना स्वरूप खो देता है। इसी प्रकार सांख्यदर्शन में परिणाम सिद्धान्त के अनुसार सृष्टिचरना काल में प्रकृति विकृति हो कर अदृश्य हो जाती है। पुनः प्रलयकाल में विकृति प्रकृति में लीन हो जाती है।

किन्तु स्वातन्त्रय सिद्धान्त में यह दोष नहीं दिखाई देता। सृष्टि और संहार

दोनों ही कालों में परमशिव अदृश्य नहीं होता बल्कि वह स्फुट रूप से चमक उठता है। समस्त विश्व उस परमेश्वर के प्रकाश के भीतर अवभासित होने लगता है।[११३] और परमशिव अपने स्वरूप में वैसे का वैसा ही रहता है। यह उसके स्वातन्त्र्य की महिमा है। परमेश्वर के लिए पृथक बिम्ब की अपेक्षा नहीं होती है जिस प्रकार लोक में होती है। वह अपने प्रकाश के भीतर अपनी विमर्शात्मक शक्ति के अनेकों प्रतिबिम्ब को धारण करता हुआ विश्व का उन्मीलन करता है। स्वातन्त्र्य शक्ति ही उस प्रतिबिम्ब के धारण में हेतु होता है।

हेतुश्च परमेश्वर शक्तिरेव स्वातन्त्र्यापरपर्यार्या भविष्यति।
बिम्ब प्रतिबिम्बधारित्वाच्च विश्वात्मकत्वं भगवतः।।[११४]

परमेश्वर की इस स्वातन्त्र्य शक्ति से प्रकृति, जीव, माया, अविद्या, वासना, कर्माशय, विद्या, परमाणु, विवेक, यथार्थज्ञान, अविवेक मिथ्याज्ञान नैष्कर्म्यादि सभी उसके प्रकाश में प्रतिबिम्बित हो जाता है। क्योंकि यह उसका स्वभाव है। जिस प्रकार वायु का स्वभाव है कि वह बहती है, अग्नि उष्ण होती है, जल नीचे की ओर बहता है।

इस सम्बन्ध में यदि यह प्रश्न किया जाये कि ऐसा क्यों होता है क्यों अग्नि उष्ण है? तो ये प्रश्न अविवेकपूर्ण कहे जायेगे। क्योंकि यह तो इनका स्वभाव ही है। इसी प्रकार शिव भी अपने स्वभावानुसार ही कार्य करता है कभी अपने भाव को भूलकर जीव बन जाता है, कभी जीव भाव को त्यागकर अपने शिव रूप में हो जाता है। यह उसका स्वभाव है। इसी प्रकार परमशिव का भी स्वातन्त्र्य इच्छा शक्ति यह स्वभाव है। स्वभाव के विषय में अविवेकपूर्ण प्रश्न नहीं होना चाहिए। क्योंकि यदि अग्नि उष्णता छोड़ दे तो उसे अग्नि कौन कहेगा? उसका तो अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। इसकी प्रकार परमशिव अपने स्वातन्त्र्य ईच्छा शक्ति का प्रयोग न करें तो उसे परम शिव कौन कहेगा? अतः यह स्वातन्त्र्य ही उसका स्वभाव है।

४. क्रमदर्शन

क्रमदर्शन अद्वैतवादी दर्शन है। यह शक्तिदर्शन के अन्तर्गत एक विशिष्ट विचारधारा है। इस दर्शन का विस्तृत विवेचन 'महार्थमञ्जरी' में किया गया है। महार्थमञ्जरी के रचयिता आचार्य महेश्वरानन्द हैं। महेश्वरानन्द चोल देश के प्रसिद्ध तान्त्रिक थे। 'तन्त्रालोक' में अभिनवगुप्त ने भी क्रमदर्शन का उल्लेख करते हुए

उसका विवेचन किया है। अभिनवगुप्त ने 'क्रमस्तोत्र' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है।

क्रम (Grade or step) से क्रमदर्शन का सम्बन्ध है। क्रमदर्शन के मतानुसार मुक्ति सहसा प्राप्त नहीं होती है उसे उपायों के द्वारा क्रमशः प्राप्त किया जाता है। क्रमदर्शन में क्रम का सम्बन्ध मुक्ति से नहीं है बल्कि उसे प्राप्त करने के उपायों से है।

क्रमदर्शन में परमतत्त्व का नाम 'काली' है इसलिए इस दर्शन को कालीनय, देवीनय तथा औत्तराम्नाय इत्यादि कहा जाता है। काली का नाम 'देवी' होने के कारण देवीनय नाम इस दर्शन का सार्थक नाम है। दक्षिणमार्ग का विरोधी होने के कारण इसे औत्तराम्नाय कहा गया है। इसके अतिरिक्त शिव के उत्तरमुख से कहे जाने के कारण भी यह औत्तराम्नाय नाम से जाना जाता है।

तत्त्वों को पाँच-पाँच समूहों में विभक्त करने के कारण इसे पञ्चक दर्शन भी कहा गया है। क्रमदर्शन में पञ्चकों का विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है–

१. पञ्चवाह–परतत्त्व के पाँच रूपों में स्फुरण होने के कारण पञ्वाह कहलाते हैं। पञ्वाहों के नाम है-व्योमवामेश्वरी, खेचरी, दिकचरी, भूचरी तथा गोचरी।

२. कार्यशक्ति-पञ्चक–परतत्त्व पाँच प्रकार के कार्य करने का सामर्थ्य रखता है। ये पाँच कार्य है-सृष्टि, स्थिति संहार भास (स्वप्रकाशत्व) तथा अनाख्य अर्थात् अकथनीय कार्य।

३. कृत्य-पञ्चक-क्रमदर्शन में 'काली; को परमतत्त्व माना गया है यह काली पाँच कार्यों का सम्पादन करती है। ये कार्य है- ज्ञान, प्रसंख्यान, क्षेप, गति तथा नाद। अन्य पञ्चक इन पाँच कृत्यों से सम्बन्धित है।

४. निजशक्ति-पञ्चक–परमेश्वर की निजी अर्थात् अपनी शक्तियाँ भी पाँच प्रकार की क्रम-दर्शन में मानी गयी है। ये हैं-चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। परमेश्वर की ये अपनी शक्तियाँ उसका आत्मीय स्वरूप है।

५. वाक्-पञ्चचक–क्रमदर्शन में वाणी के पाँच प्रकार माने गये हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी तथा सूक्ष्म। व्याकरणशास्त्र में चार प्रकार ही वाणी का प्रयोग शास्त्रसम्मत है। वहाँ वाणी का सूक्ष्म भेद नहीं माना गया है।

६. ध्येय-पञ्चक–साधक को जिन विषयों पर अपने चित्त को केन्द्रित

करना है वे स्थान भी पाँच है-श्रीपीठ, नेत्रत्रय, वृन्दचक्र, पञ्वाह तथा गुरुपंक्ति। क्रमदर्शन में निदिध्यासन का महत्वपूर्ण स्थान है।

क्रमदर्शन का विपुल साहित्य होने पर भी वर्तमान स्थिति में वह प्राप्य नहीं है। अभिनवगुप्त ने अपने तन्त्रालोक में विशेष रूप से कुल और त्रिक दर्शन के साथ ही क्रमदर्शन का भी विस्तार से विवेचन किया है। यह विवरण तन्त्रालोक के चतुर्थ आह्निक में मिलता है। क्रमस्तोत्र तो अभिनगुप्त की पृथक से रचना है ही लेकिन इस दर्शन पर महार्थमञ्जरी से यह ज्ञात होता है कि आचार्य क्षेमराज ने भी इस पर टीका लिखी है। चोल देश के महान तान्त्रिक विद्वान् महेश्वरानन्द का क्रमदर्शन में विशिष्ट स्थान है। इन्हें भी अभिनवगुप्त का अनुयायी कहा जाता है। ये क्रमदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् थे। 'क्रमसद्भाव' तथा 'क्रमसिद्धि' नाम से प्राचीन क्रमदर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों के नाम प्रायश; उपलब्ध होते हैं। क्रमदर्शन के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यो जैसे-सोमराज, शिवानन्दनाथ आदि के मतों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इस दर्शन के क्रमसूत्र, पाञ्चरात्रिक, महानयप्रकाशादि ग्रन्थ भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ की श्रेणी में आते हैं। आज यह सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों का ज्ञान तो केवल उद्धरण मात्र से ही हो पाता है यह बड़ी निराशा का विषय है। पंचम के रूप में जो क्रमदर्शन का सिद्धान्त मिलता है उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि परमेश्वर पाँच रूपों में अपने को स्फुरित करता है। तथा क्रमदर्शन का मूलतत्त्व जो 'काली' नामक है यह पाँच कृत्यों-ज्ञान, क्षेम, गति, नाद तथा प्रसंख्यान का सम्पादन करता है। इसीलिए इस दर्शन में 'काली' को ही परमतत्त्व माना गया है।

क्रमदर्शन का मूल तत्त्व काली है। सामान्यतः काल अर्थात् शिव की पत्नी का नाम काली है ऐसी धारणा जन सामान्य की है। इस दर्शन में काली का अर्थ यही नहीं है। व्याकरण की दृष्टि से 'काली' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ इससे भिन्न है।

काली शब्द 'कल्' धातु से निष्पन्न है जो स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय करने पर 'काली' बना। व्याकरण शास्त्र में कल धातु के पाँच अर्थ है-कल विक्षेपे, कल ज्ञाने, कल गतौ, कल संख्याने तथा कल शब्दे। इस दृष्टि से काली में पाँच व्युत्पत्ति परक अर्थ होते हैं-विक्षेप करने वाली,[११५] ज्ञान देने वाली,[११६] गति देने वाली,[११७] पदार्थो को एक दूसरे से पृथक करने वाली[११८] तथा सभी पदार्थो का

अपने में संकोच करके आत्मचैतन्य रूप से शेष रहने वाली।[११९] क्रमदर्शन के ये पारिभाषिक शब्द है जिसका विस्तार से विवेचन तन्त्रालोक में किया गया है।

काली वह परमतत्त्व है जो स्वात्मभाव से समस्त जगत तथा उसके पदार्थों को अपने से बाहर उल्लसित करती है। तथा फिर उनमें परस्पर भेद उत्पन्न करती है और उन्हें अपने प्रतिबिम्बि का विषय बनाती है फिर अपने से अभेद रूप से समस्त जगत तथा उसके पदार्थों को ग्रहण करती है। इस प्रकार सभी को अपने भीतर विलीन करके आत्मचैतन्य के रूप में प्रकाशित होती है।

काली को तीन नामों से जाना जाता है-कालकर्षिणी, व्योमवामेश्वरी तथा भातृसद्भाव। यह नाम काली के गुणों के आधार पर भी है। ये सभी काली की स्वातन्त्रय शक्तियाँ है जो अवसरानुकूल स्वयं ही प्रकट होती रहती है। मातृसद्भाव शक्ति के रूप में काली स्वयं को द्वादश रूपों में प्रकट करती है। और उन द्वादश रूपों का ज्ञान जीव को कराती है जिससे उनके बन्धन कट सके और उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो सके। जिसके कारण काली का मातृसद्भाव नाम सार्थक प्रतीत होता है। काली के द्वादश नाम है-

१. सृष्टि काली	७. मृत्युकाली
२. रक्त काली	८. मार्तण्ड काली
३. स्थितिरक्तविनाश काली	९. महाकाल काली
४. यम काली	१०. महाभैरव काली
५. संहार काली	११. कालानलरुद्र काली
६. रुद्र काली	१२. चन्द्रोग्रघोर काली।

इस सृष्टि में सभी काल के प्रभाव से प्रभावित होते हैं लेकिन काली काल से किसी भी प्रकार से अवच्छिन्न नहीं है। वह सदा स्वातन्त्र्य शक्ति से युक्त है। वह काल का भी कलन करती उसका भी कर्षण करती है। इसी कारण इसका नाम कालकर्षिणी सिद्धि होता है जिससे काली परमतत्त्व की नित्यता भी सिद्ध होती है।

काली का एक नाम व्योमवामेश्वरी भी आया है। इस नामगुण के अनुसार काली अपनी इच्छा से समस्त जगत का, समस्त पदार्थों का आकाश में वमन कर देती है। इसी कारण इसका यह नाम भी सार्थक है। उसके नामकरण का रहस्य भी यही है।

तान्त्रिक आगमों में साधना की आचार्य परम्परा का विस्तार से वर्णन हुआ है। इस आचार परम्परा को 'क्रम' के नाम से जाना जाता है।

ये आचार्य पाँच प्रकार के होते है- १. वामाचार २. दक्षिणाचार ३. कौलाचार ४. मताचार ५. त्रिकाचार

इन समस्त आचारों में 'त्रिक आचार को ही श्रेष्ठ माना गया है। जिसका उल्लेख शिवसूत्रस्पन्दकारिका तन्त्रालोक, तन्त्रसार आदि आचार के प्रतिपादक ग्रन्थों में किया गया है। इसी कारण इन शास्त्रों को त्रिकदर्शन भी कहा गया है-

वेदाच्छैवं ततो वामं ततो दक्षं ततः कुलम्।
ततो मतं ततश्चापि त्रिक सर्वोत्तमं परम्।।[१२०]

क्रमदर्शन में साधना की आचार मीमांसा विशिष्ट है। इसमें अभ्यास, प्रणव जय, वैराग्य रूप राजयोग जैसे साधना पद्धतियों को प्रमुखता प्राप्त है जिसका विवेचन पातञ्जल-योगसूत्र में निर्दिष्ट है।

इस दर्शन की आचार मीमांसा में काली की बाह्य पूजा का विधान नहीं है। पूर्णतः आन्तर्योग से ही काली प्रसन्न होती है ऐसा वर्णन है। स्वरूप की प्रत्त्यभिज्ञा अथवा स्वरूप का परामर्श ही वास्तविक पूजा है। महार्थमञ्जरी में इसके सम्बन्ध में उद्धृत है-

तस्मात् स्वरूप रूप परामर्श एक परमा पूजा।[१२१]

तन्त्रालोक में अभिनवगुप्त ने भी पुष्पनैवेद्यादि वाह्योपचार से काली पूजा का विधान नहीं बताया है। उनके मतानुसार भी आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही वास्तविक पूजा है। अर्थात् प्रकाशरूप उस काली के साथ तादात्म्य रूप अवस्थित होना ही काली की वास्तविक पूजा है-

सविदैकात्म्येनावस्थानं पूजा[१२२]

अभिनवगुप्त ने क्रमस्तोत्र में लिखा है कि यद्यपि काली क्रम से ही प्राप्त होती है लेकिन स्वयं काली क्रम से रहित है।

प्रकाशाख्या संवित् क्रम विरहिता शून्य पद्धतो,
बर्हिर्लीनात्यन्तं प्रसरति मसाच्छादकतया।
ततोऽप्यन्तः सारे गलित रभसादक्रमतयाः।
महाकाली सेय मम कलयतां कालमखिलम्।।[१२३]

महेश्वरानन्द महार्थमञ्जरी में कहते हैं कि "मेरी चेतना में स्वातन्त्र्य से परिपूर्ण स्वच्छन्दस्वरूप शिव ही सदा स्फुरित होता रहता है। पराशक्ति ही मेरे

इन्द्रियों के प्रान्त में क्रीड़ा करती रहती है। और यह समस्त जगत शुद्ध अहं-चेतना के चमत्कार से स्फुरित होता रहता है। परन्तु न जाने कहाँ से संसृति (संसार) की ध्वनि मेरे कानों में पड़ती है।''

> स्वतन्त्रः स्वच्छात्मा स्फुरित सततं चेतसि शिवः।
> पराशक्तिश्चेयं करणसरणिप्रान्तमुदिता।
> तदा भोगेकात्मा स्फुरित च समस्तं जगदिदम्।
> न जाने कुत्रायं ध्वनिरनुपतेत् संसृतिरिति।[१२४]

इस प्रकार शुद्ध चेतना अथवा विमर्श ही सारी सृष्टि-प्रक्रिया का मूल अथवा उद्गम स्थल है।

सन्दर्भ

१. वाचस्पत्यम् पृ० ४४६
२. प्रत्यभिपूर्वो जानाति। - ई० प्र० वि० विं०, भाग १, पृ० ३१
३. इ० प्र० वि०-१/१/१ पृ० १२
४. वही, पृ० १२-१३
५. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा भाग-२-३/२/४
६. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-१/१/१ की व्याख्या पृ० १२
७. वही, पृ० १४
८. पौरुष पुनर्ज्ञानमुदितं सत् अन्यनिरपेक्षमेव मोक्षकारणम्।-तन्त्रालोक विवेक १/२४
९. प्रतिशब्दस्य प्रतीपमित्यर्थः। अभिशब्दस्याभिमुख्यम। ज्ञा शब्दस्य ज्ञानम्। तेन पूर्वज्ञानस्यमध्ये विस्मृतस्य पुनराभिमुख्येन ज्ञानं प्रत्यभिज्ञेति। यथा सोऽयं देवदत्तः। -भा० भा० १-पृ० ३६
१०. भास्करकण्ठ, चिन्तानुबोध, सम्पा० सुषमा पाण्डेय, वाराणसी, १९९०-उद्धृत् 'काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल आवधारणायें-डॉ० नवजीवन रस्तोगी पृ० १७७-१७८
११. ई० प्र० वि० (भा०) भगा० १/पृ० ३६-३७
१२. भास्करी, भाग १, पृ० ३६
१३. Dictionary of Philosophy-page 265
१४. तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नाऽपि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते न नानाश्रया प्रकृतिः। -सांख्यकारिका ६२
१५. सांख्यकारिका-६४

१६. ई० प्र० वि० (भा०) भाग-२ पृ० १९५-१९६
१७. भा० भा०, १, पृ० ११२
१८. न्यायबिन्दु, पृ० ४६-४७
१९. शास्त्र दीपिका, पृ० ४२
२०. वाक्यपदीय, वाक्यकाण्ड कारिका-१२८
२१. भारतीयदर्शन, दत्ता व चटर्जी, पृ० १८८
२२. न्यायकोश, पृ० ५४३
२३. न्यायमञ्जरी, पृ० ४५९
२४. परोक्षमितरत् -प्रत्यक्षादिनिमित्तस्मृतिप्रत्यभिज्ञा तर्कानुमानागम भेदम्-परीक्षामुखसूत्रम्-३/१/२
२५. भारतीय दर्शन-दत्ता एंव चटर्जी, पृ० ८०
२६. पूर्वदेशकालादियोगेन स्मर्यमाणतया वर्तमान देश कालादि योगेन अनुभूयमानतया तद्द्वययोगेन प्रत्यभिज्ञायमानतया...। ई० प्र० वि० वि० भा०।, पृ० १४८
२७. स्पन्दनिर्णय, पृ० २
२८. शिवसूत्रवार्तिक, पृ० २-३
२९. स्पन्द प्रदीपिका, श्लोक, ७,८
३०. स्पन्द निर्णय, ४/२
३१. अभिनव गुप्त हिस्टारिकल एव फिलोसाफिकल स्टडी, पृ० ९३
३२. विज्ञानभैरवटीका, पृ० ८४
३३. स्पन्दनिर्णय, पृ० ३
३४. वही, पृ. ३
३५. वही, पृ. ३
३६. 'सा चैषा स्पन्दशक्ति-युगपदेवोन्मेषनिमेषमयी।' -स्पन्दनिर्णय, पृ० ३-४
३७. तन्त्रसार, अभिनवगुप्त, परमहंसमिश्र भाष्यकार, वाराणसी १९८५ आह्निक-४, पृ० १३१
३८. वही,
३९. वही,
४०. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, १/५/३
४१. न प्रकाशश्च सिद्धयति-ई० प्र० वि०-१/५/३
४२. शिवदृष्टि: १/४
४३. वही, १/२
४४. वही, वृत्ति
४५. अमर्शात्मकता ज्ञानशक्ति:। (आमर्ष-वेद्योन्मुखता), त० सा० पृ० २

४६. मालिनीविजयोत्तरतन्त्र वार्तिक-१/९०
४७. सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः। तन्त्रसार पृ० २१
४८. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग २, पृ० ४२
४९. तन्त्रसार, पृ० २१
५०. विज्ञानभैरव, पृ०-१
५१. स्पन्दनिर्णय, पृ० २३
५२. इदमुक्तं तथा श्रीमत्सोमानन्दादिदेशिकैः।
सकृज्ज्ञाते सुवर्णे किं भावना करणं व्रजेत्।
एकवारं प्रमाणेन शास्त्राद्वा गुरुवाक्यतः।
ज्ञाते शिवत्वे सर्वस्थे प्रतिपत्या दृढात्मना।
करणेन नास्ति कृत्यं क्वापि भावनयापि वा।।-तन्त्रालोक टीका भ०-१, आ०-२ पृ० ४०
५३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी-१, २०७-२०८
५४. वही, विमर्श १/५/१४
५५. वेदाच्छैवं ततो वामं ततो दक्षं ततः कुलम्।
ततोमतं ततश्चापि त्रिकं सर्वोत्तमं परम्।।-तन्त्रालोक
५६. मालिनीविजय वार्तिक-१/१६४
५७. 'अइउण्'-अष्टाध्यायी, माहेश्वर सूत्र-१
५८. तन्त्रालोक-३/३१
५९. त० लो० ३५/३४
६०. वही, पृ० ३५/
६१. वही, विवेक १/१०८,१०९
६२. वही, १/२७२
६३. वही, १/२७३
६४. वही, १/१८
६५. वही,
६६. तन्त्रालोक, १/१७
६७. वही, विवेक-१/१७
६८. तन्त्रालोक, १/१८
६९. काश्मीरशैवदर्शन, पृ० २३-२४
७०. तन्त्रालोक १/१०६
७१. परात्रिंशिका
७२. तन्त्रालोक १/१८

७३. त्रिक शब्दावाच्यम्, अनाख्यम्....। तन्त्रालोकविवेक १/१
७४. तन्त्रालोक-१/२
७५. "भैरव योगिनीम्" नित्यमेव परप्रमात्र वियुक्तत्वात् मदात्मभूताम्-तन्त्रालोक विवेक १/२
७६. तन्त्रालोक १/३
७७. वही, १/३ १/४
७८. वही, १/५
७९. वही, ३७३
८०. परात्रिंशिका-१८कारिका
८१. न्यायकुसुमाञ्जलि-५.१
८२. सांख्यकारिका-३
८३. योगदर्शन -१-२४
८४. तस्यवाचकः प्रणवः। योगदर्शन १-२८
८५. 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्' -तत्त्वार्थाधिगमसूत्र ५-३८
८६. जीवाजीवास्रबन्धसंवरनिर्जरमोक्षस्तत्त्वानि। -तत्त्वार्थ सूत्र १-४
८७. तन्त्रालोक ९/१
८८. रूप भाति पर प्रकाशं निबिडं देवः स एकः शिवः।
तत्स्वातन्त्र्यरसात्पुनः शिवपदात् भेदे विभाते परं
यदरूपं बहुधाऽनुगामि तदिदं तत्त्वं विमोः शासने।।-तंत्रालोक-९/१
८९. तन्त्रसार, आ० ८, पृ० ६९
९०. तत्त्वं यद् वस्तुरूपं स्यात्स्वधर्म प्रकटात्मकम्।
तत्त्व वस्तु पदं व्यक्तं स्फुटमाम्नाय दर्शनात्।। -तन्त्रालोक विवेक ९/६
९१. शिवदृष्टि ३/२३
९२. तस्य (परमशिवस्य) बहिरौन्मुख्येनं व्यापारः शक्तितत्त्वम्। -तन्त्रालोक भाग-६
९३. यदा स्वहृदयवर्त्तिनुमुक्त रूपमर्थतत्त्वं बहिः कर्तुमुन्मुखी भवति, तदा शक्तिरिति व्यवह्रियते। -महार्थमजञ्जरी टीका, पृ० ४०
९४. अस्य जगत स्रष्टुमिच्छा, परिगृहीतवतः परमेश्वस्य प्रथमस्पदे स्वेच्छा शक्तितत्त्वम्। -प्रत्यभिज्ञाहृदय पृ० ६
९५. मायाविभेदबुद्धिर्निजाशजातेषु निखिलजीवेषु-षट्त्रिंशत् तत्त्वसन्दोह, श्लोक-५
९६. सर्वज्ञातस्य शक्ति परिमिततनुरल्प वेद्यमात्र परा....। श्लोक-९
९७. ई० प्र० विम० भाग-२, पृ० २०८
९८. यथार्थानुभवः प्रमा, प्रमाकरणं प्रमाणम्। तर्कभाषा
९९. शास्त्रदीपिका, पृ० १२३
१००. अनपलापोऽपि [illegible] आभासमात्रविश्रान्त एव, इस भास एव भावन्तरस्य

१०१. तन्त्रालोक-३/४
१०२. शिवदृष्टि १/३७/३८
१०३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
१०४. काश्मीरशैवदर्शन-बी० एन० पण्डित पृ० ५८ उद्धृत्-त्रिक दर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन डॉ० विजयपाल शास्त्री, नई दिल्ली १९९६, पृ० ५३
१०५. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र-२
१०६. ई० प्र० वि० २/२/४
१०७. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा १/५/११
१०८. एतौ बन्ध विमोक्षो च परमेश स्वरूपत:।
न भिद्यते न भेदो हि तत्त्वत: परमेश्वरे।। बोधपञ्चाशिका-४
१०९. सर्वोभावा: स्वमात्मानं जानत: सर्वत: स्थिता।
मदात्मना घटोवेत्ति वेदमहं च घटात्मना। -शिवदृष्टि ५/१०५-१०९
११०. मालिनीविजयवार्तिक-१/१२३
१११. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका १/५/७
११२. प्रत्याभिज्ञा हृदय-८
११३. परमार्थ चर्चा-५
११४. तन्त्रसार-पृ० ११
११५. स्वात्मनों भेदनं क्षेप:
११६. भेदितस्या विकल्पसम्
११७. गति: स्वरूपारोहित्वं प्रतिबिम्बवदेव यत्
११८. संख्यानमन्यतो व्यक्तिभेदनात्।
११९. नाद: स्वात्मपरामर्श शेषता तद्विलोपनात्।-तन्त्रालोक २/२०४/२७५ (सन्दर्भ ११५-११९ तक)
१२०. तन्त्रालोक
१२१. महार्थमञ्जरी
१२२. तन्त्रालोक-३/२११
१२३. क्रमस्तोत्र-२५
१२४. महार्थमञ्जरी पृ० २५

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. अभिनवगुप्त, तन्त्रालोक, भाग १-२ (अपूर्ण) राजानक जयरथ कृत विवेक व्याख्यासहित, परमहंस मिश्र (हिन्दी भाषा एवं संपादक) वाराणसी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९९२-९३

२. अभिनवगुप्त, तन्त्रसार, परमहंस (अनुवादक एवं संपादक) वाराणसी, शक्ति प्रकाशन, १९८५

३. अभिनवगुप्त, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग १-२, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर सीरीज आफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, १९२१

४. अभिनवगुप्त, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, (भास्करी सहित), के० एल० एस० अय्यर तथा के० सी० पाण्डेय (संपादक) दिल्ली, मोतीलाल बनासीदास, १९८६ (पुर्नमुद्रित)

५. अभिनवगुप्त, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, आचार्य कृष्णानन्द सागर (हिन्दी टीकाकार, शिवरञ्जिनी सहित) गुजरात, धर्मजा खेड़ा, १९८१

६. अभिनवगुप्त, तन्त्रालोक, भाग १-१२ मुकुन्दराम शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर सीरिज ऑफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, १९१८-३८

७. अभिनवगुप्त, परात्रिंशिका, मुकुन्दराम शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर सीरिज, ऑफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, १९१८

८. उत्पलदेव, सिद्धित्रयी, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) जम्मू कश्मीर, काश्मीर संस्कृत सीरिज, १९२१

९. उत्पलदेव, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत सीरिज, १९२१

१०. उत्पलदेव, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका विवृत्ति, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर सीरीज ऑफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, १९३८-४३

११. उत्पलदेव, शिवदृष्टिवृत्तिः .मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९३४

१२. भट्टकल्लट, स्पन्दकारिका, नीलकण्ठ गुरुटू (अुनवाद एंव व्याख्याकार) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, १९८१

१३. भट्टभास्कर, शिवसूत्रवार्तिक, श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९१६

१४. मनुस्मृति

१५. मिश्र, कैलाशपति, काश्मीरशैवदर्शन—मूल सिद्धान्त, प्रथम भाग १-२, वाराणसी, अर्द्धनारीश्वर प्रकाशन, १९८१
१६. मिश्र, कैलाशपति, षट्त्रिंशतत्त्वसंदोह (एक दार्शनिक अध्ययन) वाराणसी, कला प्रकाशन, १९९६
१७. रामकण्ठ, स्पन्दकारिकाविवृत्तिः, जे० सी० चटर्जी (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९६९
१८. वसुगुप्त, शिवसूत्रम्, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९२५
१९. वसुगुप्त, शिवसूत्रम्, भट्टकल्लट कृत शिवसूत्र वृत्तिं, भट्टभास्कर कृत शिवसूत्र-वार्तिक, क्षेमराज कृत शिवसूत्रविमर्शिनी, कृष्णानन्द सागर कृत शिवसूत्र रञ्जिनी टीका सहित, गुजरात, कृष्णानन्द सागर, १९८४
२०. शास्त्री बलजिन नाथ, काश्मीरशैवदर्शन, जम्मू, श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, १९७३
२१. सोमानन्द, शिवदृष्टिः, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९३४
२२. सोमानन्द, शिवदृष्टिः राधेश्याम चतुर्वेदी (हिन्दी व्याख्याकार) वाराणसी, संस्कृत संस्थान, १९८६
२३. क्षेमराज, शिवसूत्रविमर्शिनी, श्रीनगर काश्मीर संस्कृत ग्रन्थवाली, १९११
२४. क्षेमराज, स्पन्दकारिकानिर्णयः मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९२५
२५. क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदय, श्रीनगर काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९११
२६. क्षेमराज, प्रत्यभिज्ञाहृदय, जयदेवसिंह (संपादक) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, १९६३
२७. क्षेमराज, विज्ञानभैरवविवृत्तिः, मुकुन्दराम शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९१८
२८. क्षेमराज, स्पन्दसंदोहः, मुकुन्दराम शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९१७
२९. क्षेमराज, स्वच्छन्दतन्त्रम्, भाग १-७, मधुसूदन कौल शास्त्री (संपादक) श्रीनगर, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९२१-३५
३०. ईशावस्योपनिषद्
३१. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, ब्रजमोहन चतुर्वेदी (संपादक) हिन्दी व्याख्या सहित दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९८८ (पंचम संस्करण)

३२. उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, वाराणसी, शारदा मन्दिर, नवीनतम सं०, १९९१
३३. कठोपनिषद्
३४. कविराज, गोपीनाथ, तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पटना, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद्, १९६३
३५. कविराज, गोपीनाथ, तन्त्र और आगम शास्त्रों का दिग्दर्शन, हंस कुमार तिवारी (अनुवादक) पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, १९७७
३६. गंगेश, तत्त्वचिन्तामणि (मथुरानाथ कृत टीका सहित) दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास, १९७४ (पुनमुद्रित)
३७. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय दर्शन, इलाहाबाद, लोकभारतीय प्रकाशन, १९८३ (चतुर्थ संस्करण)
३८. जे० सी० चटर्जी, काश्मीरशैविज्म, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, १९८७
३९. जोशी, भँवर लाल, काश्मीरशैवदर्शन और कामायनी, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, ऑफिस, १९६८
४०. द्विवेदी, ब्रजवल्लभ, आगम और तन्त्रशास्त्र, दिल्ली, परिमल पब्लिकेशन, १९८४
४१. द्विवेदी, पारसनाथ, भारतीय दर्शन, आगरा, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, १९९२
४२. द्विवेदी, रामचन्द्र, काश्मीर की शैव परम्परा, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९९०
४३. द्विवेदी, कमला, परमार्थसार
४४. पतञ्जलि, योगसूत्र, सांख्ययोगदर्शनम् के अन्तर्गत पातञ्जलरहस्यतत्त्ववैशारदी योगवार्तिक भास्वती सहित, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, १९९० (पुनर्मुद्रित)
४५. पाणिनि, अष्टाध्यायी
४६. पाण्डेय, कान्तिचन्द्र, शैवदर्शनबिन्दुः, वाराणसी, संस्कृत विश्वविद्यालय, २०२१ (सं०)
४७. पाण्डेय, सुषमा (संपादक) भास्करकण्ठ, चिन्तानुबोध, वाराणसी १९९०
४८. भगवद्गीता
४९. मिश्र, केशव, तर्कभाषा, गजानन्द शास्त्री मुसलगाँवकर (व्याख्याकार), वाराणसी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, १९९०
५०. मिश्र, रमाशंकर, रुद्रयामलउत्तरतन्त्र धर्म और दर्शन, दिल्ली,
५१. मिश्र, उमेश, भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदशे, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हिन्दी भवन, १९७५ (चतुर्थ संस्करण)

५२. रस्तोगी, नवजीवन, काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणायें
५३. राधाकृष्णन्, एस०, भारतीय दर्शन भाग-२, नन्दकिशोर गोभिल (अनु०) दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, १९८९
५४. रामानुजाचार्य श्रीभाष्य (ब्रह्मसूत्र पर), श्रुतप्रकाशिका संहिता (चतु० सूत्री) दिल्ली, भारतीय विद्या प्रकाशन, १९८३
५५. शंकराचार्य ब्रह्मसूत्रभाष्यम्, परिमल कल्पतरू भामती सहित अन्तकृष्णशास्त्री (संपादक) वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, १९८२ (पुनर्मुद्रित),
५६. हिरियन्ना, एम, भारतीय दर्शन क़ी रूपरेखा गोवर्द्धन भट्ट मन्जु गुप्त सुखवीर चौथरी (अनु०) दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, १९६५
५७. वाचस्पत्यम्
५८. काप्यप्रकाश
५९. ध्वन्यालोक
६०. व्यक्तिविकेक
६१. वक्रोक्तिजीवितम्
६२. प्रो० अमरनाथ पाण्डेय, संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, चौखम्भा संस्कृति भवन, वाराणसी, २००९
६३. कुसुम भूरिया दत्ता, कश्मीर इतिहास और संस्कृति, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८

अंग्रेजी

1. Bhatta Jayanata] Nyayamanjari, S. N. Shukla (Ed.) Banaras, Kashi Sanskrit Series, 1936
2. Chatterjee, S. C., THe Nyaya Theory of Knowledge, Calcutta, University of Calcutta, 1978 (2nd Ed.)
3. Gopalakrishnan, R. Kashmir Saivism and Saiva Siddhanta: A comparative Study, Madras, JMU, 1989
4. Gautama, Nyayasutra, with Vatsyayanabhasya, Uddyotakara, Varttika, Vachaspati's Tatparyatika and Visvanatha's Vritti (Ed. Delhi, Munshiram Manoharlal, 1985 (2nd Edition)
5. Hiriyanna, M. Indian Philosophical studies, mysor, Kavyalaya Publisher, 1972
6. Pandey, K.C., The meaning of Sruti in the Philosophical Literature of Kashmir, Madras, Jor, 1939
7. Pandey, Rewati, The concept of cration in the Kasmira Saivism, Allahabad, JGJRI, 1981

8. Pandit. B. N., History of Kashmir saivism, Srinagar, Utapal Publication 1989
9. Rastogi, Navjivan, 'Theory of Error According to Abhinavagupta" Journal of Indian philosophy, 14, 1986
10. Rastogi Navjivan, The Krama Tantricism of Kashmir, Delhi, Motilal Barasidass, 1979
11. Sharma, Devabra sen, Man and his destiny according to the Trika philosophy of Kashimir (unpublished thesis), Varanasi, Bararas Hindu University. 1960

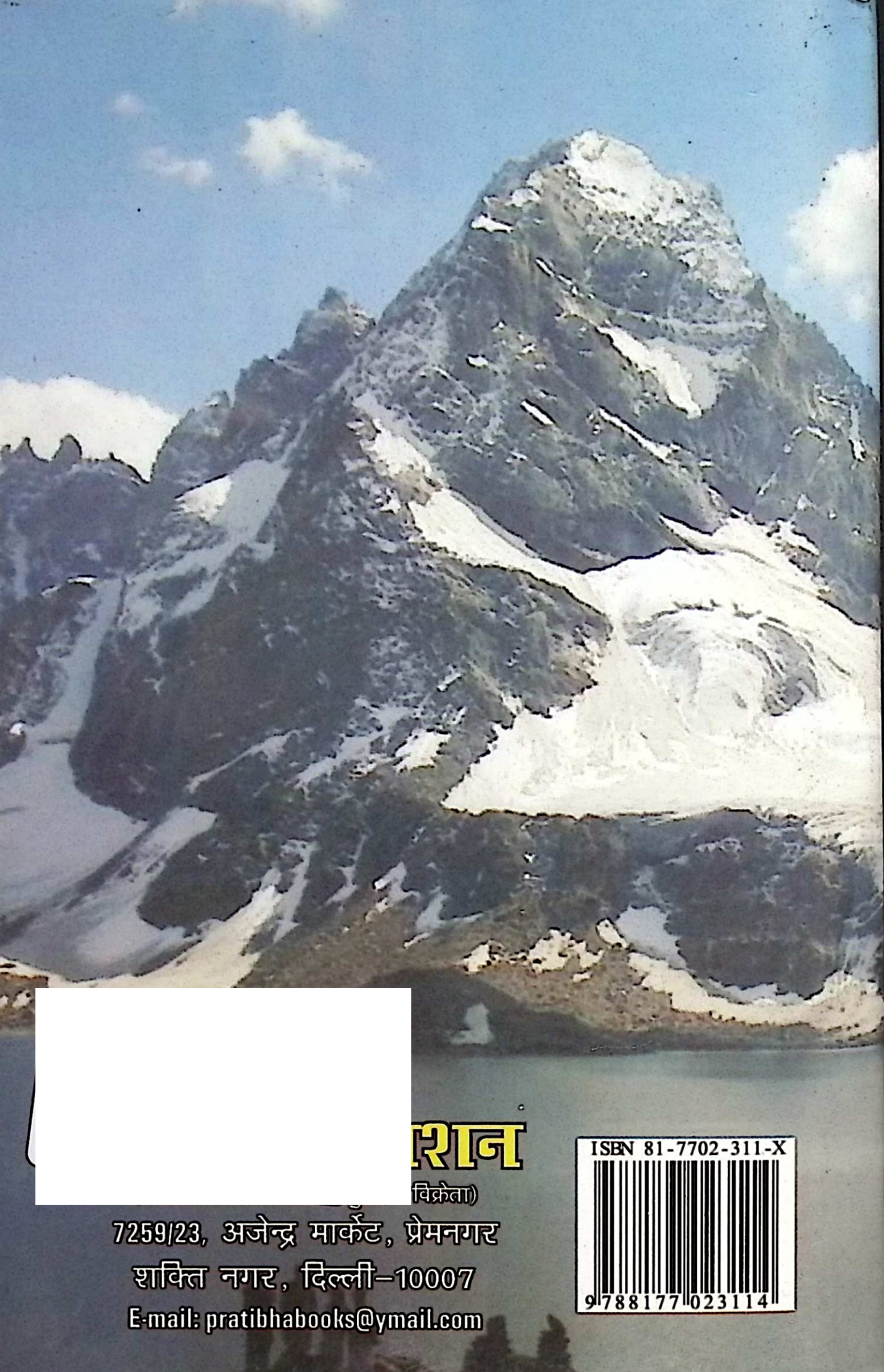

शान

विक्रेता)

7259/23, अजेन्द्र मार्केट, प्रेमनगर

शक्ति नगर, दिल्ली–10007

E-mail: pratibhabooks@ymail.com

ISBN 81-7702-311-X

9788177023114